ISSN : 2319-7137 **Volume : 11/Issue : 02**
January-June-2020

INTERNATIONAL
LITERARY QUEST

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Chief Editor

Prof. Ashok Singh
Hindi Department
Banaras Hindu University

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Surendra Pandey

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक
प्रो0 अशोक सिंह
सम्पादक
डॉ0 विकास कुमार
डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
उप सम्पादक
डॉ0 नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभागाध्यक्ष, रामानुजप्रतापसिंह देवशासकीय स्ना.महा.,बैकुण्ठपुर,कोरिया,छ.ग.)
सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)
कार्यकारी सम्पादक
डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (प्राचार्य, हंसराज राम लालदेई स्ना. महाविश्वविद्यालय, झुरिया, भगिनी, गोरखपुर)
मोहम्मद आदिल (असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भवन्स मेहता पी.जी. कालेज, कौशाम्बी, उ.प्र.)
आफताब आलम (शोध छात्र, प्रा.भा.इ.सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सह सम्पादक
डॉ0 अजीत कुमार राय (गाजीपुर)
डॉ0 नीतू टहलानी (पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
सुदर्शन चक्रधारी (शोध छात्र, प्रा.भा.इ. सं. पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
प्रबन्ध सम्पादक
डॉ0 रिपुंजय कुमार सिंह (पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
डॉ0 रविशंकर पाण्डेय (रोहतास, बिहार)
राणा अवद्यूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
विधि परामर्शदाता
डॉ0 रणजीत सिंह चौहान
अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय
ISSN : 2319-7137
मूल्य : रु0 250.00
सम्पादकीय पता
डॉ0 विकास कुमार
सिविल लाइन, तकिया रोड,
सासाराम, रोहतास (बिहार)
ई-मेल : internationalliteraryquest@gmail.com
मो0 : 09470828492, 9934468661
वेबसाइट- www.internationalliteraryquest.in
कम्पोजिंग
सुधीर कुमार, 7408996394
मुद्रक :
राजैरिया ऑफसेट
जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

संपादक मण्डल

प्रो0 अनीता सिंह

अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 रवीन्द्रनाथ सिंह

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 प्रभाकर सिंह

हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 एस0 आर0 जयश्री

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवन्तपुरम्, केरल

प्रो0 बी0 गनेशन

बैंगलोर विश्वविद्यालय, कर्नाटक

डॉ0 मिकी निशिओका

एसो0प्रो0 रिसर्च डिवीजन ऑफ एशियन, लैंग्वेजेज एण्ड कल्चर III रिसर्च इंस्टिच्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान

प्रो0 कीम उ जो

भारतीय अध्ययन विभाग, हाइकू यूनिवर्सिटी, दक्षिण कोरिया

प्रो0 आरिफ नजीर

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

डॉ0 सुनीता सिंह

शिक्षा संकाय, ली0 मोयने कॉलेज, सायराक्यूस, न्यूयार्क, अमेरिका

डॉ0 मृत्युंजय सिंह

एसो0 प्रो0, हिन्दी विभाग, एस0पी0 जैन कॉलेज, सासाराम, बिहार

डॉ0 सावित्री सिंह

संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास, बिहार

डॉ0 दिग्विजय सिंह

हिन्दी विभाग, के0डी0बी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया

डॉ0 प्रिया सिंह

राजनीतिशास्त्र विभाग, गुलाब देवी महिला, पी0जी0 कॉलेज, बलिया

डॉ0 विकास कुमार सिंह

असि0 प्रो0, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 राजकुमार उपाध्याय मणि

असि0 प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, प्रयोजनमूलक हिन्दी, सरगुजा विश्वविद्यालय, अंबिकापुर, छत्तीसगढ़

डॉ0 वर्षा सिंह

असि0प्रो0 अंग्रेजी विभाग, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

अनुक्रम

1.	Alienation and Isolation in Modern Poetry **Sana Asif**	**10-19**
2.	कपास की उत्पत्ति तथा निर्माण प्रक्रिया **मोनिका कुमारी**	**20-23**
3.	Representation of Culture in Victorian Literature **Sana Asif**	**24-31**
4.	Hope for Peace, Love and Fraternity in *Kashmir through Agha Shahid Ali* **Talat**	**32-37**
5.	बिहार के गरीबी निवारण में कृषि विकास की भूमिका **डा0 कृष्ण कुमार शर्मा**	**38-40**
6.	Postmodern perspective in Amitav Ghosh's *Ibis* Trilogy **Khurshid Fatehul Ikram**	**41-45**
7.	The Feminist Dimension in Anita Desai's *Cry, the Peacock* **Md. Abdur Rouf Siddiquee**	**46-50**
8.	Jane Austen's Art of Plot Construction in *Emma* **Subodh Kumar**	**51-57**
9.	भारतीय बुजुर्गों की समस्या एवं कल्याणकारी योजनाएँ **रीता कुमारी**	**58-62**

10.	Indo-Russia Relation After disintegration: A Study **Dr. Shashi Bhushan Prasad**	**63-67**
11.	लोक सेवकों में भ्रष्टाचार, राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं घोटाले **कुमार शम्भू शरण**	**68-71**
12.	ARSENIC TOXICITY IN THE FOOD CHAIN IN THE FLUVIAL PALINS OF BIHAR : IT'S SOCIO-ECONOMIC IMPLICATION **PRAKASH KUMAR PASWAN**	**72-75**
13.	The Political Allegory in Salman Rushdie's *Haroun and the Sea of Stories* : A Post-Colonial Analysis **Md. Chamsul Alom Sorowarthy**	**76-83**
14.	गुरु नानक के काव्य में दार्शनिक चिंतन **प्रियंका मिश्रा**	**84-89**
15.	सामाजिक पुनर्निर्माण में बुनियादी शिक्षा का महत्त्व **डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार**	**90-93**
16.	राजनीतिक बोध का प्रहसनः अंधेर नगरी **"शेखर सुमन"**	**94-98**
17.	Comparative analysis of etiquette as reflected in contemporary Russian and Hindi literature **PUSHPA KUMARI**	**99-103**
18.	The Prose Style of Sir Walter Scott : A Critical Analysis **Subhash Kumar**	**104-110**

19.	छायावाद कवियों की सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना **पंकज**	**111-113**
20.	Advertisement is essential for Marketing System of Agro-Industries in Bihar **Arti Jha**	**114-116**
21.	**Darama Kiya Hai?** ڈرامہ کیا ہے ؟ ڈاکٹر عابدہ نازؔ **Dr. Abda Naz**	**117-119**
22.	समकालीन कथा और आलोचना **डॉ. अमल सिंह "भिक्षुक"**	**120-123**
23.	Sir Walter Scott's Art of Historical Fiction **Subhash Kumar**	**124-128**
24.	कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा लिखित 'पारस' नामक कहानी संग्रह में नारी पात्रों की भूमिकाएँ **अनिता कुमारी**	**129-131**
25.	भारत में भ्रष्टाचार के कारणों की विवेचना **राजशेखर**	**132-134**
26.	Role of MNREGA in rural employment during Coron Epide **SANTOSH YADAV**	**135-138**
27.	महादेवी वर्मा : नीर भरी दुःख की बदली **दिवाकर कुमार**	**139-141**

28.	भारतीय अर्थ व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका **रण विजय सिंह**	**142-145**
29.	भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में **निशांत कुमार**	**146-154**
30.	**EXPRESSION OF SPIRITUALISM IN TAGORE'S POETRY** **Bikash Kumar Bhagat**	**155-157**
31.	रोहतास जिला के लघु एवम् कुटीर उद्योगों के विकास में आर्थिक संस्थानों की भूमिका **रणविजय सिंह**	**158-159**
32.	Confluence of Art & Philosophy in Raja Rao's *Kanthapura* **Degi Kumari**	**160-163**
33.	अल्पना मिश्र के कथा – साहित्य में समाज में महिलाओं की स्थिति **डॉ0 माया कुमारी**	**164-167**
34.	दलित महिलाओं पर बढ़ते हिंसा एवं निदान **डा0 सुधीर कुमार**	**168-170**
35.	भारत में औद्योगिक विवादों के कारण **डा0 विकास कुमार**	**171-175**
36.	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के प्रश्न राम चरण मीना	**176-183**
37.	Spiritual Vision in the Poetry of Kamala Das **Dr. Binay Kumar Vishwakarma**	**184-190**

38.	हिन्दी कथा आंदोलन और कथाकार गोविन्द मिश्र **डॉ० शबनम कुमारी**	**191-195**
39.	गाँधीवाद की प्रासंगिकता **डॉ० धृति**	**196-199**
40.	'Jane Austen' Art of fiction : Re-evaluation **Subodh Kumar**	**200-204**
41.	स्वराज्यदल का उदय – एक अध्ययन **डॉ0 बिरेन्द्र कुमार**	**205-207**
42.	कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में विवाह पूर्व नारी रूप **डॉ0 अनिता कुमारी**	**208-210**
43.	ऐतिहासिक स्रोत मुन्तखाब–उत्–तवारीखः एक विहंगम दृष्टि **डा0 मनोज सिंह यादव**	**211-213**
44.	मंजरी का चरित्र –चित्रण **डॉ0 कालिका प्रताप यादव**	**214-218**
45.	भारतीय समाज और संस्कृति में स्त्री **डॉ0 वन्दना कुमारी**	**219-226**
46.	भारतीय जाति व्यवस्था : ऐतिहासिक सर्वेक्षण **श्रीधर दयानिधि**	**227-230**
47.	श्रीमद्भागवत् पुराण में हरिश्चन्द्र **डॉ0 सुधा कुमारी**	**231-239**
48.	रमणिका गुप्ता की कविताओं में आदिवासी जीवन **अनिल कुमार**	**240-246**

49.	महावीरचरितम् के नारीपात्र (नायिका) का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण **डॉ0 सुधा कुमारी**	**247-251**
50.	DEVELOPMENT OF ENTERPRISES WITH WOMEN DEVELOPMENT TO CONTEXT WITH INDIAN ECONOMY PROLIFERATION **MANORMA SHUKLA*; DR. ANJLI SINGH**	**252-263**
51.	सरोगेसी **डॉ. सुमित कुमार शुक्ला**	**264-272**
52.	SCIENTIFIC SENSIBILITY IN JAWAHARLAL NEHRU'S LETTERS **RANDHIR KUMAR**	**273-275**
53.	आधुनिक भोजपुरी साहित्य आ ''पं0 अक्षयबर दीक्षित'' जी के रचना **रवीन्द्र यादव**	**276-280**
54.	चित्रा मुद्गल के साहित्य में स्त्री जीवन का यथार्थ **सुमन कुमारी**	**281-287**
55.	मीनाक्षी स्वामी के उपन्यासों 'भूभल' में स्त्री चेतना **विजय कुमार**	**288-293**
56.	शरद जोशी का व्यक्तित्व एवं एकांकी रचनाएँ **डॉ0 विकास कुमार**	**294-297**
57.	शरद जोशी का कृतित्व : एक संक्षिप्त परिचय **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	**298-301**
58.	Voices in the city : A Study in Psychic Instability **Dr. Shuchita Srivastava**	**302-308**

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Alienation and Isolation in Modern Poetry

Sana Asif

Research Scholar, NIT Patna

Abstract

Post-industralisation effect and World Wars led to fragmentation of society, and development of feeling of alienation, isolation and rootlessness in people which is reflected in the poetry of the period. This paper analyses the theme of alienation and isolation in Modern Poems by poets like W.B. Yeats, Ezra Pound, T.S. Eliot, W.H. Auden, Thom Gunn, Philip Larkin, Ted Hughes, Edwin Morgan, Stevie Smith etc.

Introduction

In *Economic and Philosophical Manuscripts* (1844), Karl Marx defines alienation as a specific historical condition in which man experiences a separation from nature, other human beings and especially the product of his labour. Since man creates himself through labour, all of these forms of alienation imply an alienation of man from himself. Marx regards alienation as a product of the evolution of division of labour, private property and the state and when this phenomena reach an advanced stage in capitalist society, the individual experiences the entire objective world as a cluster of alien forces standing over and above him. Max Weber describes alienation as recognition of the individual's feeling of helplessness in a 'disenchanted' world governed by rational, bureaucratic and impersonal institutions.

Insula in Latin means 'an island'. The word 'isolation' is derived from the Latin word *insulatus* which means 'made into an island'. *Cambridge English Dictionary* defines isolation as 'the condition of being alone, especially when this makes you feel unhappy'.

Factors

Culmination of various factors over a period of about half a century was responsible for the element of alienation, isolation and rootlessness in modern poetry. Industrialization, publication of Darwin's *Origin of Species*, Marxism, doubt over religious faith and the two world wars were some of the major reasons that led to the representation of these elements in poetry.

Industrialization and Alienation Effect

With the advent of Industrial Revolution in England, the household industry that produced hand-made goods was replaced by machine. The process which involved the family and community in producing the whole was now replaced by the individual producing only a part in the factories. The workers had no sense of achievement from realizing a finished product.

They felt a separation from all productive processes and lost control over them. This feeling of separation and loss was called as *alienation* by Karl Marx. He used it to describe the feelings of purposelessness that human beings have in depersonalized society.

Marx held that in the modern industrial world human beings are cut off from each other and become insecure. According to Derek Johnston, this state of isolation '*is our own making. We have created a technical world but cannot control it. We alienate ourselves from what we value most.'* This process was called by Marx as 'self-alienation'.

Post-Industrialization Effect

According to Ronald Carter and John McRae, by the end of the nineteenth century the pre-industrial economy and way of life had almost disappeared. In 1911 nearly seventy percent of England's fort-five million inhabitants lived in urban areas. The sense of 'local' community was being lost and as a result of which there was a greater anonymity of the individual in the urban context. Society became more fragmented and individual identities more fluid.

Darwin and Origin of Species

The publication of Charles Darwin's 'On the Origin of Species', in 1859 put the existence of God into question. In times of fast economic and social changes, there was expression of radical doubts over the stability of existing order.

The Death of the God

German philosopher Friedrich Nietzsche famously proclaimed in *Thus Spoke Zarathustra* about the non-existence of God and religious belief in the post-Darwinian world. He wrote-

But when Zarathustra was alone, he spoke thus to his heart: "Could it be possible! This old saint has not heard in his forest that God is Dead!"

This statement represents the crisis of the time when old order of faith and the idea of divinity were rejected and people didn't have anything to cling to in moments of despair. There was a feeling of alienation from the idea of God and the religion they practiced.

War

The first half of the twentieth century saw two great world wars which were seen as the destructive effect of the culmination of scientific achievements. Most of the nations of Europe and its colonies were directly or indirectly involved in the war. World War I and World War II caused unprecedented casualties and destruction across the globe. The effect of war and subsequent fragmentation of the structure of society impacted the art, literature and the world of cinema among other things.

Modernism

According to J.A. Cuddon in 'The Penguin Dictionary of Literary Terms and Literary Theory', '*Modernism is a comprehensive but vague term for a movement (or tendency) which began to get under way in the closing years of the nineteenth century and which had a wide*

influence internationally during much of the twentieth century. The term pertains to all the creative arts, especially poetry, fiction, drama, painting, architecture.'

Cuddon goes on to say that Modernism in literature '*reveals a breaking away from established rules, traditions and conventions, fresh ways for looking at man's position and function in the universe and many (in some cases remarkable) experiments in form and style. It is particularly concerned with language and how to use it (representationally or otherwise) and with writing itself.'*

Modernism, according to Carter and McRae, is essentially post Darwinian search to explain mankind's place in the modern world, where religion, social stability and ethics are all called into question which led to the emergence of sense of fragmentation in both – individuality and in concepts like space and time.

Avant-garde and Popular Culture

With the technological development in the later part of the nineteenth century, the beginning of the twentieth century saw broadening of artistic trends by extending itself to other cultural forms like radio, television, cinema, and popular music. The reaction to this situation was that some of the writers concentrated on a narrow, highly educated audience who would understand their alienation from this changing world and thus initiated the avant-garde era in writing. This is also known as 'intellectualisation' and was criticized as restricting literature to cultural and academic elite. While there were other group of writers who made use of popular forms in order to communicate with a wider audience and thus balanced the tendency of avant-garde writers.

However, according to Carter and McRae, a tension in writing between the popular and the esoteric, and the popular and specialized, the commercial and the avant-garde, became a feature of twentieth century literature. Isolation and alienation, together with experimental forms of expression, came to characterize serious literature, while cinematic techniques and the elaboration of popular genres came to dominate other forms of cultural expression. To some writers, the alienation they felt and depicted was an elaboration of the individual sensibility in a world which it was felt was becoming even more standardized and uniform, an age of masses.

Modern Poetry

Unlike Victorian and Georgian poetry, which focuses on the decorum of the language of poetry, Modern poetry initiated a movement from poetic diction to a new poetic language. It became closer to everyday speech and more diverse range of subject matter. Modern poetry employs dialect words, colloquial expressions, specialist terminology, poeticism, and foreign words. According to Carter and McRae, such a rich use of language expresses a view of reality which is more fluid, uneven, intertextual than before and less patterned and unified. He continues to assert that as poetry became more polyglot, the language mix reflected a sense that there was no longer a fixed language of poetry as there was no longer one English. Socio-cultural dislocation is reflected in stylistic mixing which occurs in the work both of modernist experimental poets and in many of the more traditional and conservative poets.

One of the distinguishing characteristics of Modern English Poetry is its centrality to human concern. Man was caught in an atmosphere of disillusionment, apathy, tension, guilt, anger and bitterness. The world that it portrays is the one that has gone through two World Wars, the Nazi concentration camps, economic crisis, depression, genocide, constant threat of nuclear war. These concerns of modern man are reflected in the poetry of Ezra Pound, T.S. Eliot, Wilfred Owen, W.H. Auden, Dylan Thomas, Philip Larkin, Thom Gunn, Ted Hughes, Sylvia Plath, Seamus Heaney, Geoffrey Hill, Charles Tomlinson, Douglas Dunn, Craig Raine, Peter Reading, Stevie Smith and Wendy Cope.

Representation of Alienation and Isolation in Poetry

Poetry in the Modern poetry reflected the mood of the age. The alienation of modern human from the pastoral world and its subsequent isolation from another human were reflected in the poetry of the age. Poems of Ezra Pound, T.S. Eliot, War poets, W.H. Auden, Louis MacNeice, Edwin Muir etc. showed the uncertainties, isolation, and spiritual desolation of the Modern period. The fragmentation in the language and diction of poetry represented the fragmentation of the world after the World Wars. Social alienation is a phenomenon which is the product of social, economic, technological, materialistic and secular conditions of the society. The fact of alienation is seen either in behavioural or cultural norms. Industrialization destroyed many of the traditional institutions which previously created in man a sense of belongingness. The anonymity and impersonality of human relations resulting from increased mechanization have accentuated individual isolation and frustration. Depersonalization and dehumanization result in the individual's loss of identity.

War Poetry

Above all, I am not concerned with Poetry.
My subject is War, and the pity of War.
The Poetry is in the pity.

-Wilfred Owen, Preface to *Poems*

At the beginning of war, the poetry was written in order to express a sense of honour and to celebrate the glories of war like *The Soldier* by Rupert Brooke. But as the war progressed, it caused a deep psychological wounds in the minds of the survivors thus creating a 'physical and metaphysical wasteland' across Europe. This desolation was increasingly reflected in the poetry of these poets. Wilfred Owen in his poem *Futility* writes-

Was it for this the clay grew tall?
O what makes fatuous sunbeams toil
To break earth's sleep at all.

The introduction of religious connotation, according to Carter and McRae, reinforces the poem's sense of spiritual emptiness. Owen's use of half-rhymes reinforces a sense of things not fitting and being incomplete.

William Butler Yeats

The second phase of Yeats's poetry reflects the mood of the time. The isolation of a modern man can be seen through his poems like *Sailing to Byzantium* (1928) in which he writes,

There is no country for old men. The young
In one another's arms, birds in the trees,
—Those dying generations—at their song,
The salmon-falls, the mackerel-crowded seas,
Fish, flesh, or fowl, commend all summer long
Whatever is begotten, born, and dies.
Caught in that sensual music all neglect
Monuments of unageing intellect.

His poem *The Second Coming* (1921), according to Carter and McRae, is a chilling vision of impending death and dissolution. It contains the famous lines:

Things fall apart; centre cannot hold;
Mere anarchy is loosed upon the world,
The blood-dimmed tide is loosed, and everywhere
The ceremony of innocence is drowned;
The best lack all conviction, while the worst
Are full of passionate intensity.

Yeats's poetry embodies his strong disliking of existing creeds, conventions and institutions leading to gloom and despair of man and disintegration of society as a whole.

Ezra Pound

Ezra Pound writes in *In a Station of the Metro,*

The apparition of these faces in the crowd:
Petals on a wet, black bough.

Charlotte Lai in her essay *'Alienation in the Modern World: A Comparative Analysis of Thirteen Ways of Looking at a Blackbird (Wallace Stevens) and In a Station of a Metro (Ezra Pound)'* writes that the theme of social alienation permeates Pound's poem. "Faces" are lost in the "crowd", where individuality of a man is de-emphasized and reduced to a fleeting "apparition". The detachment of parts from a whole, where human beings are reduced to "faces" and "petals" of a flower portrays the detachment of individual from the wider whole of society and at the same time, the use of such synecdoches exemplify the loss of self of a modern man. She continues to say that the social alienation in "Metro" is not merely characterized as an estrangement from society, but also as isolation from reality. Pound sees the people in the metro as "apparition", implying that they are unreal, vague and a fleeting reality.

T.S. Eliot

According to Carter and McRae, the ruins created across Europe as a result of First World War enter the world of T.S. Eliot's poetry indirectly. Eliot's major poem, *The Waste Land*, published in 1922, is not a land literally laid waste by war, a real wasteland which poets such as Owen and Rosenberg had graphically described. The poem depicts a cultural and spiritual waste land, a land populated by people who are, physically and emotionally, living a kind of death in the midst of their everyday lives.

Eliot writes in *The Waste Land* about London-

Unreal City,
Under the brown fog of a winter dawn,
A crowd flowed over London Bridge, so many,
I had not thought death had undone so many.

Carter and McRae continue to say that in Eliot's Wasteland, the people move across a desolate landscape of fragmented images; they do not relate to one another. The many different voices we hear in the poem speak not to each other but past each other. There is no uniting belief in one transcendent God. Eliot echoes the post-Darwinian concerns of an unstable world. The poem records the collapse in the values of Western civilization. The main examples of this collapse are sterile, unloving sexual relationships, cultural confusion, and spiritual desolation. Eliot sees the root of the modern world's unhappiness and alienation in the fact that people are unable to bring together the different areas of their experience to make a complete whole. Their social, sexual, and religious experiences are fragmentary and not unified. About the loveless sexual relationships, Eliot writes in *The Waste Land*-

He, the young man carbuncular, arrives,
A small house agent's clerk, with one bold stare,
One of the low on whom assurance sits
As a silk hat on a Bradford millionaire.
The time is now propitious, as he guesses,
The meal is ended, she is bored and tired,
Endeavours to engage her in caresses
Which still are unreproved, if undesired.
Flushed and decided, he assaults at once;
Exploring hands encounter no defence;
His vanity requires no response,
And makes a welcome of indifference.

-The Waste Land

In his earlier poem, *The Love Song of J. Alfred Prufrock* published in 1915, Eliot applies to poetry a technique similar to that of the stream of consciousness, giving fragments of the thoughts passing through the mind of the lonely Mr Prufrock, who seems to be a failed lover. Prufrock gives voice to feelings of disorientation.

Let us go then, you and I
When the evening is spread out against the sky
Like a patient etherized upon a table;
Let us go, through certain half-deserted streets,
The muttering retreats
Of restless nights in one-night cheap hotels
And sawdust restaurants with oyster shells:
Streets that follow like a tedious argument
Of insidious intent

-*Love Song of J. Alfred Prufrock,* T.S. Eliot

In his poems, Eliot effectively embodies the spirit of his times and uses the technique of fragmentation in order to depict a fragmented society and presents a socially responsible picture of the modern world. It can also be seen as Eliot's indulgement in his own personal view of the broken images of a modern world and an essentially private and personal piece of self-expression.

W.H. Auden

Auden in *Jazz Elegies* (1936) wrote,

The stars are not wanted now: put out every one;
Pack up the moon and dismantle the sun;
Pour away the ocean and sweep up the wood.
For nothing now can ever come to good.

It suggests the end of a world whose existence having been as temporary as a stage set which can be taken apart. It reinforces the sense of chaos and loss. *The Unknown Citizen* is a poem in which the epitaph of a man is identified only by a combination of letters and numbers somewhat like an American Social Security number-

(To JS/07 M 378
This Marble Monument
Is Erected by the State)

The person is described entirely in external terms, from the point of view of government organizations such as Bureau of Statistics. Auden describes a modern man with respect to his consumption of modern goods and facilities-

Both Producers Research and High-Grade Living declare
He was fully sensible to the advantages of the Installment Plan
And had everything necessary to the Modern Man,
A phonograph, a radio, a car and a frigidaire.
Our researchers into Public Opinion are content
That he held the proper opinions for the time of year

In the final lines of the poem Auden questions the outcome of modern life-

Was he free? Was he happy? The question is absurd:
Had anything been wrong, we should certainly have heard.

Thom Gunn

In his poem *In Time of Plague,* Gunn presents the rootlessness of the individual self in the Machine Age of the modern world. He juxtaposes the image of sex and death which seems to echo the sense of barrenness and futility of Eliot's Waste Land.

My thoughts are crowded with death
and it draws so oddly on the sexual
that I am confused
confused to be attracted
by, in effect, my own annihilation.

Gunn hints at homosexual relationship and euphoria from drugs that seems to be the only source of pleasure in the modern fragmented world.

They know it, and do not know it,
and they are like me in that
(I know it, and do not know it)
and like the flow of people through this bar.
Brad and John thirst heroically together
for euphoria--for a state of ardent life
in which we could all stretch ourselves
and lose our differences.

Philip Larkin

In his poem *Ambulances,* Larkin explores the pervading sense of death that occurs in constrained societies of metropolitan cities and the randomness, closeness, and inevitability of death. He writes,

And sense the solving emptiness
That lies just under all we do,
And for a second get it whole,
So permanent and blank and true.
The fastened doors recede. Poor soul,
They whisper at their own distress;

-Larkin, *Ambulances*

In his poem *Dawn,* Larkin reflects on estrangement from love:

To wake, and hear a cock
Out of the distance crying,
To pull the curtains back
And see the clouds flying-
How strange it is
For the heart to be loveless, and as cold as these.

-Dawn

Ted Hughes

In *The Thought Fox,* Hughes directly deals with the theme of loneliness in the first two stanzas. He implies loneliness and darkness as a life process.

I imagine this midnight's forest:
Something else is alive
Beside the clock's loneliness
And this blank page where my fingers move.

Through the window I see no star:
Something more near
Though deeper within darkness
Is entering the loneliness

-The Thought Fox

Edwin Morgan

In his poem '*The Welcome',* Morgan writes about the feeling of isolation, apathy and insufficiency in human relationships.

When love comes late, but fated,
the very ground seems on fire with tongues of running time
and conscious hearts are speaking
of the long vistas closed in clouds
by lonely waters, all goodbyes
where the swallow is a shadow
swooping back, like youth, to silence,

The Welcome

Stevie Smith

In *Not Waving, But Drowning,* Smith presents the society of alienated and isolated individuals who are apathetic towards each other. The sense of belonging to a community is lost and the individuals have become more selfish in the age of consumerism. She presents this tragic fragmentation of society in a sadistic humorous tone.

Nobody heard him, the dead man,
But still he lay moaning:
I was much further out than you thought
And not waving but drowning.

Poor chap, he always loved larking
And now he's dead
It must have been too cold for him his heart gave way,
They said.

Oh, no no no, it was too cold always
(Still the dead one lay moaning)
I was much too far out all my life
And not waving but drowning.

Conclusion

The spirit of the age is reflected through the literature of the period. In modern age, poetry seems to be more closely representing the true feeling and common experience of the time. Fragmentation of society, alienation, isolation and rootlessness are exhibited in the poetry of W.B. Yeats, Ezra Pound, T.S. Eliot, W.H. Auden, Thom Gunn, Philip Larkin, Ted Hughes, Dylan Thomas, Sylvia Plath, Edwin Morgan and Stevie Smith to name a few.

Works Cited

Abrams, M.H. *A Glossary of Literary Terms.* Cengage Learning, 2012.

Auden, W.H. *Selected Poems.* New York: Vintage Books, 2007.

Carter, Ronald, and John McRae. *The Routledge History of Literature in English.* New York: Routledge, 2017.

Cuddon, J.A. *Dictionary of Literary Terms and Literary Theory.* London: Penguin Books, n.d.

Durrell, Lawrence. *A Key to Modern British Poetry.* Norman: University of Oklahoma Press, 1952.

Fraser, G.S. *The Modern Writer and His World.* Harmondsworth: Penguin Books, 1953.

H.J.C. Grierson, J.C. Smith. *A Critical History of English Poetry.* New York: Oxford University Press, n.d.

Kumar, Kumud. *Theme of alienation In the poetry of W B Yeats.* 27 August 2014. http://hdl.handle.net/10603/24178 (accessed November 25, 2018).

Lai, Charlotte. "Alienation in the Modern World: A Comparative Analysis of Thirteen Ways of Looking at a Blackbird (Wallace Stevens) and In a Station of a Metro (Ezra Pound)." *Academia.* 24 October 2013. https://www.academia.edu/31171918/Alienation_in_the_Modern_World_A_Comparative_Analysis_of_Thirteen_Ways_of_Looking_at_a_Blackbird_Wallace_Stevens_and_In_a_Station_of_a_Metro_Ezra_Pound_ (accessed November 28, 2018).

Leavis, F.R. *New Bearings in English Poetry.* London: Penguin Books, 1932.

Rodrigues, Chris, and Chris Garratt. *Introducing Modernism- A Graphic Guide.* Icon Books, 2013.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

कपास की उत्पत्ति तथा निर्माण प्रक्रिया

मोनिका कुमारी

सामाजिक विज्ञान संकाय (गृहविज्ञान)
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय
मुजफ्फरपुर

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में जिस तंतु से बने वस्त्रों का प्रयोग सबसे अधिक करता है वह कपास है। कपास एक विश्वव्यापी रेशा है। कपास से बना वस्त्र हर घर की वस्तु है। पहनने के वस्त्र, ओढ़ने, बिछाने, तौलिया आदि के रूप में कापस रेशे से बने सूती वस्त्र का प्रयोग ही सबसे अधिक होता है। इसका कारण इस वस्त्र का टिकाऊपन, मजबूती तथा विभिन्न क्रियाओं के लिए इसकी कार्यक्षमता है। मजबूती में इसके बराबरी का कोई दूसरा वस्त्र नहीं होता है। अतः प्रति दिन पहनने के लिए ये सबसे उत्तम है।

कपास के इतिहास को देखने के लिए हम दृष्टि डाले तो पाते हैं कि ईसा से 100 वर्ष पूर्व सूती वस्त्र भारत में बनने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय यूनानियों द्वारा भारत के सूती वस्त्रों की प्रशंसा मिलती है। इतना ही नहीं उनके अनुसार – "यह कपास जंगली पेड़ से प्राप्त होती है और भेड़ के ऊन से अधिक सुंदर होती है।"

13वीं शताब्दी में भारत से बाहर इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों में भी कपास की खेती की जाने लगी तथा वस्त्र उत्पादन के नये तरीक ढूढे जाने लगे।

बौद्ध काल में बनारस तथा ढ़ाका अपने सुन्दर वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। ढ़ाका के वस्त्र शबनम तथा मलमल खास अपने सौन्दर्य की दृष्टि से अपूर्व और निराले थे। ये सूक्ष्म, बारीक एवं पारदर्शी होते थे। वस्त्र के पूरे थान को अंगूठी में से निकाला जा सकता था। उस समय के बुनकर एक पौण्ड कपास में 250 मील से भी लंबा धागा बुनते थे।

कपास सबसे अधिक उपयोग में आनेवाली वस्तु है। इसके उपयोग असीमित हैं।

सूती वस्त्र के निर्माण की प्रक्रिया :–

कपास के रेशों से बने हम जो वस्त्र देखते हैं, उन रेशों को वस्त्र रूप में बदलने के लिए एक विभिन्न प्रक्रियाओं की शृंखला है। वह शृंखला पूर्ण होने पर वस्त्र रेशे वस्त्र का रूप ले लेती है। इस शृंखला की प्रक्रिया अग्रलिखित है :–

1. **कोए एकत्र करना :–** जब वृक्ष पर लगे फूल पक कर झड़ते हैं तो कोए निकलते हैं, जिसमें चारो ओर चार हरी पत्तियाँ होती है जो देखने में गुलाब की बंद कली जैसी दिखती है। इसके अंदर कपास होता है। जब अन्दर कपास तैयार हो जाता है तो कोए पककर फटने लगते हैं। अनुकूल समय पर कोए को बीन लेना अनिवार्य है, अन्यथा धूप तथा धूलकणों से कपास के रेशे पीले तथा गन्दले हो जाते हैं।

2. **बिनौले अलग करना :** कोए के अन्दर ठोठ में कपास तथा बीज दोनों होते हैं। कपास से बीज अलग करने के लिए सिलाई ओटनी बिघी का प्रयोग किया जाता है।
3. **गाँठ बांधना :** कपास के रेशे तथा बीज अलग करने के बाद कपास की पट्टियों को दबा कर गाँठे बाँधी जाती है।
4. **गाँठे खोलना, मिलाना, गंदगी निकालना।**
5. **कंघी करना :** यह प्रक्रिया एक महंगी प्रक्रिया है। यह समस्त रेशों के साथ नहीं की जाती। लम्बे रेशे जिनमें उत्तम प्रकार के वस्त्र बनाए जाते हैं उन पर यह प्रक्रिया की जाती है।
6. **धुनाई :** धुनाई प्रक्रिया रेशों को अलग करने हेतु की जाती है। इस प्रक्रिया हेतु जिस मशीन का प्रयोग किया जाता है उसमें काँटेदार हूक लगे होते हैं।
7. **पूनी बनाना :** कपास की बोनिया 6)श्श.7श्श लम्बी तथा 1श्श मोटी बनाई जाती है। पूनी बनाने के लिए धुमने वाले फ्रेम का प्रयोग किया जाता है।
8. **कताई :** तैयार पोनियों की कताई की जाती है तथा धागा बनाया जाता है। कताई का काम चरखे के मशीन से होता है, जिसे कताई की मशीन कहते हैं।
9. **बुनाई :** कई बार बुनाई से पहले धागा रंग लिया जाता है। यदि धागा पहले नहीं रंगा जाता है तो कपड़ा बुनने के बाद रंगाई की जाती है।
10. **परिसज्जा :** बुनाई के बाद वस्त्र को आकर्षक एवं सुन्दर बनाने, उपयोगिता बढ़ाने के लिए आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार की परिसज्जा की जाती है। जैसे– ब्लीचिंग, रंगाई, माँड़ देना, रोएँ साफ करना, प्रिंटिंग आदि।

कपास की विशेषताएँ :–

रेशों की विभिन्न विशेषताओं को हम दो भागों में बाँटते हैं :–

(क) भौतिक विशेषताएँ :

1. **संगठन :** कपास एक ऐसा रेशा है जिसका मुख्य भाग सेल्युलोज का होता है। इसे सेल्युलोज फाइवर भी कहते हैं। इसका सूत्र $C_6H_{10}O_5$ है। अर्थात् एक अणु कपास में 6 अणु कार्बन + 10 अणु हाइड्रोजन + 5 अणु आक्सीजन होते हैं। कच्चे कपास के रेश में 40–49ः सेल्युलोज तथा 5–8ः अन्य अशुद्धियाँ। रंजित कपास रेशे में 88–99ः सेल्युलोज तथा 5–8ः पानी + अन्य अशुद्धियाँ पाई जाती है।
2. **लंबाई :** कपास के रेशे की लंबाई)श्श.2श्श तक होती है। प्राकृतिक तंतु में यह सबसे कम लम्बाई का होता है। कम लम्बाई के कारण इससे बने वस्त्रों में चमक तथा चिकनाहट की कमी होती है।
3. **अणुविक्षणीय रचना एवं रूप :–** कच्ची अवस्था में कपास के रेशे को यदि अणुवीक्षण यंत्र से देखा जाए तो यह एक पतले ट्यूब के समान प्रतीत होता है जिसमें रस भरे होते हैं। जब कोए खुल जाते हैं रेशा सुखता है तो कपास में प्राकृतिक ऐठन आ जाती है जिसे बखिलन कहते हैं। अब कपास चौड़े खिड़ा के समान लहड़दार दिखाई देता है।
4. **रंग एवं चमक :**कपास के रेशे में प्राकृतिक चमक नहीं रहती है। प्राकृतिक रेशों में सफेद रेशा कपास का होता है। किन्तु कच्ची कपास में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होने से यह रेग सा दिखाई देता है जो ब्लीच करने पर सफेद हो जाता है।
5. **नमी सोखने की क्षमता :** सूती वस्त्र नमी जल्दी सोखता है। नमी तथा आर्द्रता को शीघ्रता से सोखने के कारण वे गर्मी के लिए उत्तम और अनुकूल वस्त्र सिद्ध होते हैं।

6. **ऐठन** : यह विशेषता कपास के अपरिपक्व तंतुओं में नहीं पायी जाती है। इसकी विशेषता के कारण लंबाई में कमी होने पर भी यह रेशा मजबूत होता है। ऐठन की गिनती 150–300 प्रति इंच होती है।
7. **तनाव सामर्थ्य** : इसमें तनाव सार्म्थय कम होती है क्योंकि इसकी लंबाई कम होती है किंतु सूखी अवस्था की अपेक्षा गीली अवस्था में 30 प्रतिशत तनाव सामर्थ्य बढ़ जाती है।
8. **प्रत्यास्थता** : प्रत्यास्थता का अभाव होता है। अतः इनका आकार निर्धारित, निश्चित रहता है, फैलता नहीं है।
9. **प्रतिस्कंदता** : कपास के रेशे में प्रतिस्कंदता का पूरी तरह अभाव रहता है। एक बार फैला हुआ वस्त्र दोबारा अपने पूर्वाकार नहीं पाता है।
10. **सिल्वर आरोधक** : सूती वस्त्र में शिकन या सिल्वट जल्द ही पड़ जाती है। इसका कारण है कि कपास के रेशों में प्रत्यास्थता तथा प्रतिस्कंदता का अभाव रहता है।
11. **ताप संवाहकता** : कपास की रेशों में अन्य सभी रेशों की अपेक्षा ताप सहन क्षमता सबसे अधिक रहती है। यह ताप का संचालक है। यही कारण है कि उबलते पानी में खराब नहीं होते है। इनके लिए 300–320ह्य गर्म स्त्री की जाती है।
12. **संकूचन** : मौलिक रूप से कपास के रेशे सिकुड़ते नहीं हैं। वे स्थिर हैं। परंतु वस्त्र निर्माण के समय की खींच तान तथा परिस्कृत और परिसज्जा की विधियों के प्रभाव से कभी–कभी तैयार वस्त्र पानी में डालने पर सिकुड़ जाते हैं। सूती वस्त्रों में पूर्व अवस्था से संकुचन प्रतिरोधकता की वृद्धि की जाती है।

(ख) रसायनिक विशेषताएँ :

1. **अम्ल का प्रभाव** : अम्ल मंद तथा तीव्र घोल का प्रभाव अलग–अलग होता है। मंद अम्ल के घोल का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। रंग खराब हो जाते हैं। कार्बनिक अम्ल का हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता किंतु तीव्र अकार्बनिक तथा तंतु अकार्बनिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है।
2. **क्षार का प्रभाव** : हम सूती वस्त्र धोने के लिए हर प्रकार के साबून का प्रयोग करते हैं, जिनमें क्षार होता है। अर्थात् क्षार के मंद घोल का हानिकारक प्रभाव होता है।
3. **रंगो के प्रति सादृश्य** :कपास के रेशों में रंगों के प्रति प्राकृतिक सादृश्य नहीं रहती है। रंग इनपर शीघ्र नहीं चढ़ते हैं। प्रायः सूती वस्त्रों के रंग पक्के करने के लिए अन्य उपायों को काम में लाना अनिवार्य हो जाता है।
4. **विरंजक प्रभाव** : श्वेत सूती वस्त्रों में आसानी से बिना किसी प्रकार की ब्लीच प्रयोग की जा सकती है। सोडियम क्लोराईड जैसे घरेलू ब्लीच इनके लिए सर्वोत्तम रहती है।
5. **कीड़े और फफूँदी का प्रभाव** : कीड़ा आसने से लगता है। गीले, सीलन वाले स्थान पर रखे कपड़े, पसीने की बदबू बाले कपड़े तथा माड़ लगे कपड़ों में फंफूँदी जल्द ही लग जाती है।
6. **पसीने का प्रभाव** : पसीने का प्रभाव हानिकारक होता है। दाग पड़ जाता है। यदि पसीना क्षारीय है तो नुकसान अधिक नहीं होता है। अम्लीय प्रकृति का पसीना हानिकारक प्रभाव डालता है।

निष्कर्ष :

सूती वस्त्र बहुत ही लाभदायक तथा उपयोगी होते हैं। यह सभ्यता का प्रतीक भी माना जाता है। इससे मानव को सभ्य तथा प्रतिबिंब समझा जाता है। इसमें शुद्धता तथा गुणता भरी होती है। अतः हर दृष्टिकोण से यह वस्त्र उपयोगी होते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. K.C. Seal & N.R. Parthsarthy theory of Population Analysis & Demographic Development, Yojna, 15th June 1974.
2. Guilford, J.P. Fundamental Statistics in Psychology & Education, Tokyo, New Delhi, Mc Graw Hill Book Company, 1973.
3. My personal Observation.
4. H.H. Singh, Geography & Environment Concept Publication, New Delhi, Page No.68-70.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Representation of Culture in Victorian Literature

Sana Asif

Research Scholar, NIT Patna

Abstract

Victorian Period in England symbolizes the zenith of the Imperial rule of England over half the globe. The genre of novel was the most popular form of literature and showcased accurate representation of the age. The study of representation of cultural components like class, cities, clotheing, education, Empire, family, food, gender, religion, science and sex in novels of Victorian Age is particularly important to develop a complete understanding of the Age and its reflection in the literary work.

Introduction

Queen Victoria reigned England from 1837 to her death in 1901, and her name has become synonymous with the age. The term 'Victorian' suggests a quite specific historical juncture, tending to connote a peculiarly rigid set of ideas, circumstances, values and attitudes. These revolve around a number of concepts and themes which are frequently attributed to the Victorians, and they can be misleading. The Victorians are typically described as having lived rather dull lives that were little more than combinations of puritan ethics and repressions: several moral probity, restraint, reserve, family values, lack of humour, uncomfortable attitudes towards sex, stony faces in photographs, and black clothes. They are equally notorious for their intolerance towards social 'deviants' of all types. Criminals, lunatics, homosexuals and stray women were all treated severely or punished. Middle class norms and attitudes rose to dominance, the working classes were also approached with caution and contempt, and foreignness in any shape or form was treated with suspicion and hostility. Victorian literature is most distinctly characterized by the rise to prominence of the novel. Poetry was shadowed by the novel as the most popular form.

Class

The term 'class' became popular in the nineteenth century as it replaced the older 'orders' and 'estates'. The new division comprised three classes- upper class which included old aristocracy and gentry, middle class which comprises industrialists, manufacturers and professionals and working class which constituted more than half of the Britain's adult population. According to Karl Marx, the capitalist system exploited the working classes and this exploitation is often reflected in Victorian literature.

In the novel *'Great Expectations'* by Charles Dickens, class consciousness is depicted through the protagonist Pip's vaguely romantic fate with Estella, Miss Havisham's ward. From criminals like Magwitch, peasants like Joe and Biddy, middle class characters like Pumblechook and rich like Miss Havisham, Dickens presents a slice of all types of Victorian characters post Industrial Revolution.

Cities and Urbanization

After the Industrial Revolution, the nineteenth century saw a rapid growth in cities. The population in the cities grew as more and more people migrated to industrial centres to look for work from rural or agricultural districts. Massive problems in terms of health, sanitation and housing were visible in cities such as London. Poor condition of working class houses was a major concern.

The problem of urbanization is one of the central themes in Dickens's novels. In *Sketches by Boz*, Dickens describes 'Seven Dials', a notorious slum district in Victorian London:

'From the irregular square into which he has plunged, the streets and courts dart in all directions, until they are lost in the unwholesome vapour which hangs over the house-tops, and renders the dirty perspective, uncertain and confined; and lounging at every corner, as if they came there to take a few gasps of fresh air as has found its way so far,…are groups of people, whose appearance and dwellings would fill any mind but a regular Londoner's with astonishment.'

According to Sean Purchase, 'The Dial' suggests a degenerated area quarantined from the rest of the London, one which is sequestered, the reader supposes, from other more 'regular' and ordered, better-off areas.

Clothing

Before French Revolution, British men's clothing was as fine and elaborate as women. However, according to Sean Purchase, after the revolution, their clothing became more 'democratic' and less flamboyant. By the Victorian period, for the middle and upper classes at least, the change went hand-in-hand with the increasing divisions of labour in society. British men increasingly worked outside of the home, and women became more and more confined to the domestic spaces. Victorian clothes matched this division: dark, sober and functional for the men, leisurely, cumbersome and colourful for women. Clothing was an important signifier of status or class. In a society where discussing sex and sexuality was a taboo, even the humble trousers were often referred to as 'unmentionables' and 'unspeakables'. The women wore a variety of tight skirts, corsage, ruffles, petticoats, bustles, bodices, boleros and boas. These garments were cut from a wide range of fabrics and materials around the world, and in a range of styles.

Clothes also had ceremonial role to play. There were different codes of dress needed to be observed for breakfast and dinner and there were rules for the theatre, clubs, town, trips to the country etc. Textile industry such as Manchester ensured that clothing became cheaper however it was still a luxury for many.

Sean Purchase writes that the history of crinoline contains an entire sexual politics of its own. The wide bell of cloth and whale bone (or steel) was designed to prevent other bodies fom coming too close, and while the 'cage' protected the women's body, it also preserved the integrity of the individual. In 1881, a Rational Dress Society was created that championed the cause of loose and free clothes to promote liberty of women in all walks of life.

In Charlotte Bronte's novels, women's clothing is associated with repression of sexuality and restrictions placed on women by patriarchal sources. Jane Eyre wears lots of mournful and shapeless blacks. When Mrs. Fairfax asks her to change her frock before meeting Mr. Rochester, Jane asks:

'Is it necessary to change my frock?'

'Yes, you had better: I always dress for the evening when Mr. Rochester is here.'

This additional ceremony seemed somewhat stately; however, I repaired to my room, and, with Mrs. Fairfaix's aid, replaced my black stuff dress by one of black silk; the best and the only additional one I had, except one of light grey, which, in my Lowood notions of the toilette, I thought too fine to be worn, except on first-rate occasions.'

-Charlotte Bronte in *Jane Eyre*

Similarly, in George Eliot's *Middlemarch,* Dorotheas beauty is curiously enhanced by the dignity of her 'poor dress' and 'plain garments' as they make her more classical. She writes,

'Miss Brooke had that kind of beauty which seems to be thrown into relief by poor dress. Her hand and wrist were so finely formed that she could wear sleeves not less bare of style than those in which the Blessed Virgin appeared to Italian painters; and her profile as well as her stature and bearing seemed to gain the more dignity from her plain garments, which by the side of provincial fashion gave her the impressiveness of a fine quotation from the Bible — or from one of our elder poets — in a paragraph of to-day's newspaper.

-George Eliot in *Middlemarch, Ch. I*

The origin of Victorian garments and materials should also be held to account. Amelia Sedley in Thackeray's *Vanity Fair* is gifted a cashmere shawl. Victorians were fond of the colour and sensuousness associated with Oriental clothing.

Education

It is estimated that in 1850s almost a half of women and almost a third of men were illiterate in England and Wales. There were boarding and public schools for rich like Rugby, Eton and Harrow, and expensive Grammar Schools for less affluent. Richer girls received tuition from their governesses. While the boys were taught Latin and Ancient Greek, the girls were taught to sew, play piano, conversation, etiquette and other domestic subjects that would make them 'better wives' for their husband. Education Act of 1870 was passed by the Gladstone Parliament in the Victorian Period that provided state-funded primary education for all children throughout England and Wales. In the year 1880, elementary education for everyone under the age of ten became compulsory.

In Charles Dickens's novel *Nicholas Nickleby* (1839), Dotheboys Hall is an indictment of misery and violence endured by boys at one of the 'proprietary schools', which were run entirely on profit-making business.

In Thackeray's *Vanity Fair,* there is a reference to a episode in Swishtail Seminary where George Sedley Osborne developed friendship with the green-grocer's son Dobbin while Amelia Sedley with Rebecca Sharp attended Chiswick Mall.

The protagonist Jane of Charlotte Bronte's novel *Jane Eyre* attends Lowood School which was for the orphans and the pitiable condition under which the girls lived is vividly described in the novel.

Empire and Imperialism

During the reign of Queen Victoria, the British Empire grew to unprecedented proportions that comprised Canada, parts of West Indies, west Africa, Iraq, India, Burma, Malaysia, New Guinea, Australia, New Zealand as well as Ireland. After the Indian sepoy mutiny of 1857, British government took control of India from East India Company and Prime Minister Benjamin Disraeli designated Victoria 'Empress of India' in 1876. In 1851, the Great Exhibition took place that paraded Britain's economic success and imperial pre-eminence. It contained about 100,000 exhibits from around the world that glamourized Britain's domestic and colonial achievements. Exhibits like Bengal ivories and stuffed elephants were more emblematic of British Dominance rather than celebration of Indian culture.

The representation of this supremacy in British is evident in the literature of the era. In the novel *Vanity Fair* by W. M. Thackeray, the character Joseph Sedley was in the East India Company's Civil Service and worked as Collector of Boggley Wollah and brings a servant Sambo to England. He enjoys Indian curry and devours on pilau. The women of the household wear Cashmere shawl that he brings from India.

Similarly, in Charlotte Bronte's *Jane Eyre,* St. John Rivers leaves for missionary job in India. Mr. Brocklehurst insults the Hindu gods at Lowood School and Jane Eyre inherits money from her uncle that he earned from trade in colonies. In *Great Expectations,* the money Pip receives from the convict is earned from Australian colonies.

Family

Victorians are frequently attributed to the concept of 'family values' and at the public level the family ideal was promoted by the national figurehead Queen Victoria. Her marital life was held as a paragon of wifely virtues, and her royal family, with its nine children, was considered as an English domestic idyll. Important family-related legislations were passed during this period. The Infant Custody Bill of 1839 enabled divorced women to apply for access to their children while Divorce and Matrimonial Causes Act of 1857 enabled women to apply for divorce themselves. Married Woman's Property Acts of 1870 and 1882 allowed women to retain their own property and money, which was till then appropriated by their husbands.

In *Beeton's Book of Household Management* (1861), Isabella Beeton writes, '*there is no more fruitful source of family discontent than a housewife's badly-cooked dinners and untidy ways'.* She goes on to say that in order to keep their 'men' interested in the family home, 'mistresses' must also become '*perfectly conversant with all the other arts of making and keeping a comfortable home'.* She gives tips on how to manage servants, children, clothing, money, gossips, and light and cheerful subjects of conversation.

The idea of family values is heavily discussed in Victorian literature. *A Christmas Carol* by Charles Dickens is a story based on the ideal, cosy Victorian family Christmas and according to Sean Purchase, it reinforces the idea of family offering a refuge from the various economic and social problems.

Food and Famine

Grains were the staple diet of the working class. Corn Laws were passed in 1815 and grain prices went high due to shortage of food. The decade came to be known as 'hungry forties'. Those who were prosperous ate better food and treated themselves with tropical food like banana and chocolates. Diets for the poor largely consisted of meager, cereal based meals. There were important Victorian innovations in the preservation of foodstuffs, and early systems of mechanical refrigeration and canning were significant developments. Food swindlers adulterated their foodstuffs, for example, by adding chalk to bread, in order to create more bread and increase profits until the passage of the Adulteration of Food, Drink and Drugs Act in 1872, when it was criminalized.

The 'Condition of England' novels of the 1840s and 1850s contain numerous images of starvation. Sean Purchase writes that in Charlotte Bronte's *Shirley* (1849), Bronte's heroines, Shirley Keeldar and Caroline Helstone, are both middle-class English women who are sick with love for two brothers of Anglo-Belgian descent, Robert and Louis Moore. Both women undergo problems with food, which is indicated by their refusal to eat and the appearance of an unnamed wasting illness. Prior to her illness, Shirley Keeldar is bitten by what seems to be a rabid dog, but some commentators interpret both her and Caroline Helstone's illness as showing symptoms of anorexia nervosa. For some critics, the important point about the inscription of food in Bronte's novel is the extent to which her 'anorexic' women use their bodies as sites of protests against Victorian patriarchy. Anorexia and the refusal to eat becomes, in this respect, a physical reaction to the violence wrought on women's bodies throughout history. In the context of Ireland, the anorexic hunger of Bronte's women points towards a pathology of empire in the novel, where the unspeakable acts of British involvement in Ireland are projected onto the domestic context of 'English' problems.

Gender

Victorians constructed a hierarchy of gender relationships which they constructed to suit themselves. Men dominated every public space or social sphere. They were prominent in all areas associated with 'masculinity' and power like politics, government, law, economics, industry, commerce, engineering, education, sport, army, and the administration of the Victoria's growing world empire. Women of upper class and middle class of society were

less active in the public sector. *Edinburgh Review* famously described the domestic roles of women- ‘

[women] are the proper legislators for, as well as ministers of, the interior’.

Sean Purchase writes that the Victorian patriarch was dominant in the ‘interior’ sphere as well. Due to the man’s status as husband, father, breadwinner and owner of all family ‘property’, including his wife, he reigned supreme, to all intents and purposes, throughout Victorian society. Most Victorian men believed that women did not possess the intellectual capabilities which educated and industrious men were endowed with. These kind of opinions prevented women from entering the male-dominated fields of education, such as universities, scholarships and research.

The age of Victorian novel writing and its reception also created problems that arose from anxieties about gender. Although the novel form was dominated by male writers, there were huge numbers of women novelists writing for economic reasons. However, the readership of novel was considered to be made for women. The readership mostly consisted of middle class and upper class women who were encouraged by men to live a passive and sedentary life. Paradoxically, novel was also seen as corruptive source and women writers were seen as a threat to men and to other women.

When Charlotte Bronte sent some of her verse to Robert Southey, he accused her of ‘day dreams’ and discussed why literature is unsuitable for women, whose ‘proper duties’ are elsewhere. He wrote,

‘Literature cannot be the business of a woman’s life, and it ought not be. The more she is engaged in her proper duties, the less leisure will she have for it, even as an accomplishment and a recreation.’

Religion

Religion underpins many of the attitudes and anxieties associated with Victorians. There was no real decline in church attendance figures until the 1890s, and the Bible became cheaper and more widely available to everyone in the period. Church remained one of the major career options for Victorian gentlemen. By 1901, there were almost five-thousand women preachers in Britain. In 1829, Wellington’s government passed the Catholic Emancipation Edict, which enabled Catholics to take up seats in parliament. It led to a Catholic Revival throughout the Kingdom and Oxford Movement.

In 1843, Karl Marx famously described religion as the ‘opium’ of the people in *Contribution to the Critique of Hegelian Philosophy of Law.* Friederich Nietzsche claimed in ‘*The Gay Science’* that ‘God is Dead’. Victorian novelist William Thackeray, described his own work, *Vanity Fair* (1847), as ‘a set of people living without God in the world’. In poetry, Alfred Lord Tennyson wrote in *In Memoriam* (1850)-

Are God and Nature then at strife,

That Nature lends such evil dreams?

So careful of the type she seems,

So careless of the single life;

He goes on to say that-

I falter where I firmly trod,

And falling with my weight of cares

Upon the great world's altar-stairs

That slope thro' darkness up to God.

In another instance he writes,

Perplex in faith, but pure in deeds,

At last he beat his music out.

There lives more faith in honest doubt,

Believe me, than in half the creeds

Science

Victorians made huge advances in science throughout this period and it came to dominate the Victorian consciousness. There was a rise in middle-class professionalization and specialization and many organizations sprang up with the aim of promoting science as an academic discipline. Charles Darwin's *On the Origin of Species* changed the way Victorians perceived themselves.

Futuristic writings were published throughout the Victorian period such as Hermann Lang's *The Air Battle* (1859) and French writer Jules Verne's *Journey to the Centre of the Earth* (1864). Many more such works were published in the latter stages of the nineteenth century, in the decades more closely associated with Victorian anxieties about sexual and racial contamination, genetics, moral degeneration, decadence, class, national identity, empire and the threat of invasion by foreigners. In Robert Louis Stevenson's *The Strange Case of Dr Jekyll and Mr Hyde* (1886) and H.G. Wells's *The Island of Dr Moreau* (1896) illustrate the disastrous consequences which might occur when the chemical and biological sciences are misused. In Wells's *The Time Machine* (1895), according to Sean Purchase, the possibility of manipulating, not to say escaping, Darwin's logic of evolutionary time is evoked.

Sex and sexuality

Victorian Physician William Acton wrote in *The Functions and Disorders of the Reproductive Organs* (1857)-

'…much mischief would happen to sexually incontinent young men whose wanton ways produced only weakly, sickly children, that can with difficulty be reared.'

He went on to say that '*the majority of women are not very much troubled with sexual feeling of any kind at all*' and *'the best mothers, wives and managers of households know little or nothing of sexual indulgences'.*

Thomas Hardy's *Tess of D'urbervilles,* according to Sean Purchase, seems to underline the problem of sex and sexuality in Victorian discourse, in the silent or rather 'invisible' space between Hardy's paragraphs. It speaks volumes about Victorian anxieties relating to sex. Its violence inaugurates Tess's 'fall' at the hands of an exploitative upper-class man, Alec D'Urberville, and eventually her death by hanging for the vengeful murder of her antagonist.

Conclusion

Victorian literature dominated by the novel form, with its neat expositions, complications and resolutions provided some sort of structure for Victorians. It provided order and consolation against the chaos and contradictions of a changing world and reflected the change in culture and lifestyle of the people. Growing empire, urbanisation, class difference, rising middle-class, clothing, food, family structure, gender relations, doubt and faith etc. were exhibited in the literature of the period. The rise in scientific spirit and doubt over religion dominated over the Victorian period and consequently its literature.

Works Cited

Bronte, Charlotte. *Jane Eyre.* London: W.W. Norton & Company

Carter, Ronald, and John McRae. *The Routledge History of Literature in English.* New York: Routledge, 2017.

Dickens, Charles. *Great Expectations.* London: W.W. Norton & Company

Eliot, George. *Middlemarch.* London: Collins Classic

Foucault, Michel. *The Will To Knowledge.* London: Penguin Books , 1978.

Hardy, Thomas. *Tess of D'Urbervilles.* London: Penguin Books

Mukherjee, Suroopa. *Victorian Poets.* Delhi: Worldview Publications, 2015.

Purchase, Sean. *Key Concepts in Victorian Literature.* London: Palgrave Macmillan, 2006.

Tennyson, Alfred. *In Memoriam.* London: W.W. Norton & Company

Thackeray, W. M. *Vanity Fair.* London: W.W. Norton & Company

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Hope for Peace, Love and Fraternity in *Kashmir through Agha Shahid Ali*

Talat

MA in English, UGC NET

Abstract

Aga Shahid Ali's poetry mirrors the history of Indian subcontinent in general and Kashmir in particular through his literary writing-Bone Sculpture (2972), In Memory of Begun Akhtar(1979), Half Inch Himalaya (1987), The Country without a Post Offic(1997), Rooms are Never Finished(2001) and Call me Ishmael Tonight. Being a Kashmiri, he marks Kashmir, a place of receiving cultural eclecticism and hybridity, plural voices and identities coexisting togather. He has transformed his faculty of learning and knowledge of poetic practice from national, cultural, religious, mythical and literary genres into textual space. By passing time he is becoming more popular and relevant to the present scenario of Kashmir and is taught in almost all the Universities and discussed at literary public sphere everywhere in India and abroad as well. Now today when Kashmir is becoming the Test Bed for a New Model of Internal Colonialism, it is more important to look into the poetic writing of Agha Shahid Ali as message for a just society, who fought for peace, love and fraternity of Kashmir against military and militancy and has prayed for it to remain paradise.

The article is mainly concerned to have focus on Agha Shahid Ali's poetry for Kashmir and Kashmiriyat. His writing makes a centre around humanitarian values of lives where we dwell with liberty, freedom of expression, equality at a place called homeland rather military base and fraternity over all the oddities prevalent in the form of ideology and geopolitical extremism. The subject of Kashmir is known to Aga Shahid Ali better than other writers who write on Kashmir. Kashmiri people carry a rich tradition, culture, different literature and narratives and their specific mannerism, but their existence always come across certain impending dangers sponsored by nationalist or antinationalist forces due to identity and territorial politics. The work of Agha Shahid Ali *through his* poetry and Ghazals describes past, present and future of Kashmir revealing a long history of violence and demand for peace, love and humanity, it is documentation of some official and unofficial records of people words as witness to violence, wretchedness, rape and mass killing and many unreported incidents. He has a fundamental pursuit behind his book ,"The Country without a Post Office" is to have the inculcation of the aforesaid key words to the mainstream of the Indian political and national discourse so that people live their lives with love and fraternity and peace in their state and nation, he also makes advocacy to bring the literature of Kashmir and her voices for liberty and peace and wish to insulate the people of the state from all those forces that have been agential draconian laws that uses tentacles to grab innocents as victims and people of war zone.

The present research has main focus on Aga Shahid Ali that describes “Kashmir, Poetry and Politics” and includes the more larger narrative such as a long history of Kashmir when its civilization and culture begins there with plural meanings and matters. He nurtues the vastness of the state with its history, culture and civilization; so beautiful, and so amazing

that can not be limited in words at all; its beauty and lives of the land take readers to think from plural mind and to color it with full brim of beautification. But the politic and nationalist chaos of Kashmir keeps readers disturbed because of atrocities done over some innocent who are not related at distant to the politics of militancy and Indian forces. Reading and undergoing literary works of Kashmiri writers, it gives me impression that their literature is the literature of resistance and protest against the deployment of extra forces who are there not only with their service purpose or duty but they are embodiment of the power shown by the Indian government with all kind of strict rules and regulations that symbolically show the prison for commonpeople, it is obvious that for a village or mohalla that is populated with two thousand members and to have surveillance over them for the purpose of controlling them in all respect 1000 soldiers are deployed, it can be understood that Kashmir is apparently a military base rather than a state where people can exercise their fundamental rights such as freedom, liberty and peace. It is a common sense to think over the issue and give a political commentary over it. There is along quarrel between two nations such as India and Pakistan for their claim that it is a part of their countries so they will rule over it with their constitutional rights but to think over, Kashmiri people are sacrificing their lives and becoming the target of militants and military claiming the safety of lives of people there.

In poem Kasheer, the speaker gives the meaning of the word that synonym of Kashmir, a heaven on this earth, the land blessed God with natural gifts such as amazing mountains half covered by ice that is melt by warm heat of the day and transformed into water; it flows downwardly and mixes into different rivulets and lakes and sometimes covering the whole space of lake with white ice from which some icy heat comes out and mixed with air as if it appears as plain white land where we can walk and play some games like that but it becomes dangerous by its breaking into fragmentation and water of the lake comes into our visitant eyes, beautiful long trees called chinar; radiant in red, mauv, amber and yellow that beautifully dots the autumnal beauty of the landscape of Kashmir bringing cheer to people irrespective of state and Indian government intention to beautify it and violence perpetuated by state-nonstate or Indian government; It makes the sun mild and brings a chilly mist in the air and let the passerby feel a piece of heavenly pleasure that sources from the abstract concept of heaven to the real one and s/he feels, it paints its ambience with different stroke of colors as an artist is brushing on the wall with different dimensions spots to make it more and more bright and shining where the onlookers get pleased and filled with many natural topics to write and recollect some poetic lines. These typical trees are specially found in hilly areas with its own reason of climate and give fragrance to people there who are suffering pain from government machinery atrocities and other agencies ready to play with their sports of killing in the name of the demand of the separate state or politics over people there. There are some beautiful rivers called Jhelum, Indus, NeelumSuruTiver and Veshaw River that flow from the Himalayan sources (Jhelum, Chenab, Sutleh and Ravi) to through Jammu and Kashmir and their basins ate located at higher elevation for the purpose of the huge of hydro power

potential. Here it can be equally mentioned the importance of the beauty of a series of lakes there that include Manasbal Lake, Spanggur Tso, Tso Kar, Nageen Lake, Dal Lake, Pangong Lqake, Tso Moriri, Surinsar, Wullar Lake: they are gems in the crown of Kashmir, among all the lakes Dal Lake is the most famous and most visited lake by the visitors who enjoy life there with sight of lakes surrounded by sides of mountains with Sikara waiting for them four houseboating and it also gives very strange pleasure when the weather of the place is frozen and chilly air passes through our bodies with some rustling sound. Another interesting phenomenon cannot be forgotten that is heavy snowfall when the temperature is settled down at 3.e Celsius, though it affects people transportation or people economy and commercial affairs at large or low scale, but on the other side it becomes pliant time for people to enjoy their lives and the most enchanting place for tourists and visitors who come to enjoy the place for their happiness and mood sake, sometimes the temperature is too low that makes the place mentioned in national or international news. For us it makes us feel that it is just like a land in our nation that can be compared to New Zealand. Similarly we have another great opportunity to feel snowfall there, thousands of tourists come there to feel the beauty of snowfall and its precipitations or fragments on Chinar trees and roofs of hovel and wooden houses, young and adults play in pleasant and romantic weather just to make a roll from ices and throw on each other with laughter and mild shouting: the whole game make them relaxed and enervated their bodies with certain feeling of pleasure and pleasant mood. Altogether the feeling of happiness makes them feel that Kashmir is really a heavenly place on this earth. Unfortunately it is destroyed by some manufactured agencies defined by the government and non government machinery. There are some famous giant mountains such as Zanskar Range, PirPanjal Range, Amatnath Mountain, Karakoram and Kyunlun Ranges, Toshmaidan, Afarwat. The beauty of Nature what is existent as we are live in paradise. Just having analysis over the political scene and cooperation for them to me it gives me a ridiculous attitude to think over it because the intention of the government is not at all good for the welfare of people but on the contrary it is ill intended approach of the government to exploit people and make them victim in the name of the nationalist discourse. Most of the time it comes to our notice that Kashmir is closed because of curfew and it does not remain for one day but it does for a week or for 15 or a couple of months, the situation out of such pathetic circumstances becomes terrible, people don't have food to eat or some gruels to think over it. But the government takes an easy step to impose curfew and provide provisions such as food and other stuff for their own people, the government is hardly interested to see the other side of the matter whether inhabitant of the place are able to take some food in curfew or not even in the critical situation. As a result, Nature is treated there as savior for them because it understands the meaning of the survival or victim that is the state of living a life rather the establishment of the legislation or judiciary. Kashmir is also rich by its cultural production and beliefs. They have been belief in some myths like Shiva and Shanker. The myth of Shiva has been repeated in the most of the works of the authors of the Kashmir and outside Kashmir

too. Shiva like other states is worshiped in the Kashmir. They believe that the existence of Kashmir has been since the time of Shiva. It is as old as Shiva. As Arjun Dev mentions in his writing “Majboor”:

"This earth which Shiva and Shankar keep making

This idol whose flowers offer themselves for worship."

The speaker strongly mentions Kashmir carries a long tradition and belief but after post independence it is marked with identity politics, it is divided by the issues of migration of Kashmiri Pandit or the majority of Muslim community. In "I see Kashmir from New Delhi at Midnight," Agha Shahid Ali refers to graphic details of the strike- strike Kashmir and all the shaking events such killing of innocent and mass exodus of Kashmiri pundits: "The city from where no news can come is now so visible in its curfewed nights that the worst is precise." Such decaying glory of Kashmir once paradise on earth dusturbes the poet. The recurring theme is seen in poem "The Country without a Post Office" where Agha Shahid Ali describes mass migration of Kashmiri and feels imbalanced due to extremely prevailing unrest in the valley: "Empty? Because so many fled, ran away,// and became refugees there, in the planes." But he is giving an optimistic word as a promise for vacating people for the safety of their lives to return to the valley and make it glorious again. He says " Again I have returned to this country/where minaret has been entombed." There are thousands of followers who have faith in the belief of Shiva and Shanker; they have been the part in the formation of the state and its culture. So this land is as pious land as God’s own land. But unfortunately this land is treated the land of otherisation and strangers. Today the political maneuvering has been constructed in such a way that Kashmiri is alienated from the state machinery and also the people who live in India and this dichotomy of difference has been made so intensive that in longer time there is no scene of reconciliation and building of relation. No one heeds to make a humanitarian approach or true religious that in the same nation there are gods who dwell in the land of Kashmir but their gods are also understood as separatist or gods of separatists. Whenever the issue of this state comes to the picture nationwide, nationalist forces don’t give attention and leave the matter just saying “Kashmiri deserve for control and justice dome by Indian Armies.” Dev further writes for the majestic existence of the land:

This soil consecrated with hundreds of colors

Beautiful rivulets adorned in silver

This soil which yields saffron and sapphire

This soil which on their foreheads kashmiris decorate.

Here the speaker is making an attempt to glorify and witness the land of Kashmir full of imagination of the poets; its land has been taken as muse for the inspiration of the poetic theme and writing because of its beauty and the land of gods and goddess. The natural

imagery of the land inspires the poets to write the history of the land of Kashmir and its people. He highlights that the land of Kashmir is in fact bears different color that means it gives natural beauty and diversity of the land. If the color is the symbol of the correspondence of myth, it is a place of the land of diversity and love.

Maqbool Sajid shares a serious issue of Kashmir as it is described as a wounded valley since its occupation into two nations as Indian and Pakistan. He attains the meaning of the situation of Kashmir: "Cities upon cities have become desolate, now what is left/

This life has become oppression, now what is left/

Looking towards here, the world has envious/

That garden today is a ruin, now what is left.

It depicts many themes on the ongoing struggle of Kashmiri. To think the issue of Kahmir, the words violence, rape, murder, hideouts and disappearance remain the printed lines of the newspaper. When somebody reads the newspaper he/ she gets disturbed by the information of the tragedy happened with their own kith and kin near and far off. This place has become the symbol of oppression and murder without serious reasons. The speaker in the above lines mentions that Kashmir was once the embodiment of glory and beauty, worshiped by the visitors but it is now no longer a place of the past glory on the contrary it has become a desert place.

" The Country without a Post Office" is a seminal work that subtlety captures the political unrest, military oppression, harassment, rape and genocide in kashmir. Ali gives reference to soldiers, curfews, a city in ruins.

… His fingerprints cancel blank stamps

In that archive for letters with doomed

Addresses, each house burned or empty.

Empty? Because so many fled, ran away,

And became a refugees there in the flame,

Burn our world to sudden paper-mache

Inlaid with gold, then ash.

The above lines reflects Ali' awareness of day to day realities of his homeland. Ali's political commitment regarding kashmir issues makes him a political and national poet. The state is now a place of terror, violence, genocide and land of internal colonisation, Jehangir's unforgettable tribute to Kashmir is the widely quote Persian stanza:

Gar Frdaus bar rue ainast

Haminast, haminast, haminast

If there be a paradise on earth

It is this, it is this, it is this

It is a matter of great shame to us where all authorities, officials, leaders, politicians, enemies, silent populations and fundamentalists are celebrating their own sadist judgement when Kashmir is burning. Agha Shahid Ali's concern for homeland is to raise voice of the state that is symbolically without a Post Office in international community for justice, peace and love of his own people.

Reference:

Amato, Joseph A. Rethinking Home: A Case for Writing Local History. Berkeley: U of California; 2002.

Brah, Avtar. *Cartographies of Diaspora: Contesting Identities:* London: Routledge, 1996.

Butler, Kim. "Defining Diaspora, Refining a Discourse." Diaspora, 10(2), 2001.

Hall, Daniel. The Veiled Suite. The Collected Poems. Mumbai: Penguin. 2009.

Kaul Suvir. *Of Gardens and Graves: Kashmir, Poetry, Politics*. Duke University Press, 2017.

Lim, David CL. "The Infinite Longing for Home: Desire and the Nation in Selected Writings of Ben Okra and KS Manjam." Amsterdam: Rodopi, 2005.

Rushdie, Salman. Imaginary Homelands. London: Granta Books, 1991.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

बिहार के गरीबी निवारण में कृषि विकास की भूमिका

डा0 कृष्ण कुमार शर्मा

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। बिहार के विकास की बुनियाद कृषि के विकास पर आधारित है। बिहार की आबादी का 76 प्रतिशत हिस्सा आज भी आजीविका के लिए कृषि पर आधारित है। अतः बिहार के गरीबी निवारण में कृषि विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि खेती और वनिकी के माध्यम से खाद्य और अन्य सामान के उत्पादन से सम्बंधित है। वास्तव में कृषि हमारे देश में केवल जीवकोपार्जन का साधन या उधोग धंधा ही नहीं है, बल्कि अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है, जिसके कारण सभ्यताओं का उदय हुआ। इसके अंतर्गत पालतू जानवरों का पालन किया गया और फसलों को उगाया गया, जिससे अतिरिक्त खाद्य का उत्पादन हुआ। बिहार में कुल भगौलिक क्षेत्र का लगभग 56.03 लाख हेक्टेयर भूमि पर ही खेती होती है तथा राज्य में लगभग 79.46 लाख हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है। विभिन्न साधनों द्वारा कुल 43.86 लाख हेक्टेयर भूमि पर ही सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध है। यहां की मुख्य फसलें धान, गेहूँ, मक्का और दाले हैं। नगदी फसलों के रूप में यहां गन्ना, आलु, तम्बाकु तिलहन, प्याज मिर्च, पटसन आदि की खेती होती है। वास्तव में इन क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाकर, सिंचाई के साधनों की व्यवस्था एवं तकनीक का विकास कर गरीबी निवारण में कृषि विकास की भूमिका को और अधिक महत्वपूर्ण बनाया जा सकता है।

हमारे देश में गरीबी की परिभाषा पौष्टिक आहार के आधार को लेकर दी गई है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को गांव में 2400 कैलोरीज प्रतिदिन और शहर में 2100 कैलोरीज प्रतिदिन नहीं मिलता है तो यह माना जाएगा कि वह गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है। यदि पौष्टिक आहार को रूपयों में परिणत कर दिया जाता है तो 107 रूपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह गांवों में एवं 122 रूपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह शहरो में आता है। परन्तु बाद में गरीबी की परिभाषा में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 11060 रूपये एंव शहरी क्षेत्रो में 11850 रूपये प्रतिगृह बार्षिक उपयोग व्यय का मानदण्ड माना गया हैं। परन्तु 24 फरवरी 1997 को संसद में सरकार ने जो विवरण प्रस्तुत किया गया है उसके अनुसार अधिकतम 15000 रूपये वार्षिक कमाने वाले व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वाले माने जायेगें। हमारे देश में सबसे अधिक गरीबी उड़ीसा राज्य में है। इसके बाद बिहार का स्थान है जहाँ पर 42.6 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है। अप्रैल 2002 के योजना आयोग के रिपोर्ट के अनुसार – ''देश में गरीबी कम हो रही है, परन्तु उसकी गति धीमी है। बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, तामिलनाडु आदि राज्यों की आधी या इससे अधिक जनसंख्या अभी भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रही है''। हालाकि कृषि क्षेत्रों में विकास के कारण बिहार में गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले का प्रतिशत 2013 मे धट कर 33.74 प्रतिशत हो गया है।

बिहार में जहॉ आज भी 76 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं, वहां कृषि के विकास के बिना बिहार का विकास संभव नही है। अतः बिहार का विकास कृषि के विकास पर निर्भर है। यहां की मिट्टी उपजाउॅ, नदियों में जल की प्रचुरता एवं यहाँ के लोग मेहनती एवं प्रतिभावान होते है, यानि लोगों का मेहनती स्वभाव एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य का भाव बिहार के लोगों में भरा हुआ है। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार कृषि, वनिकी एवं मतस्यखेट के द्वारा 44.6 प्रतिशत लोगों को रोजगार दिया गया है। साथ ही इस क्षेत्र में 53.6 प्रतिशत महिलाओं को भी रोजगार प्राप्त है। इन तथ्यों को देखने से बिहार के गरीबी निवारर्ण में कृषि विकास की भूमिका स्वतः ही स्पष्ट है।

बिहार में कृषि विकास के लिए 2008 में कृषि रोड मैप बनाने के साथ–2 बेहतर बीज का उपयोग एवं आर्गेनिक खेती को बढ़ावा दिया गया है। मिट्टी की उर्वराशक्ति बनी रहे, इसके लिए खाद के स्थान पर वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है जिससे बिहार में कृषि का उत्पादन एवं उत्पदकता दोनो बढ़ी है। इन सभी के पीछे यही उद्देश्य है कि बिहार के किसानो की आमदनी बढ़े एवं गरीबी निवारण हो। इतना ही नहीं किसानों की आमदनी को बढ़ाने के लिए कृषि सम्बंधी समस्याओं को दूर करने का व्यापक प्रयास किया गया है। सिंचाई के लिए बिजली की व्यवस्था के साथ–साथ खाद्यानों के भंडारण एवं संरक्षण हेतु गोदाम, कोल्ड स्टोरेज एवं ड्राई स्टोरेज की व्यवस्था की जा रही है। इसके बाद भी फूड प्रोसेसिंग व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है ताकि फलों एवं सब्जीयों की बर्वादी कम हो एवं उत्पादन को बढ़ावा मिले। इससे किसानों की आमदनी बढ़ेगी तथा लोगों को रोजगार मिलेगा, जो गरीबी निवारण में सहायक सिद्ध होगा।

बिहार में उत्पादन के क्षेत्र में मक्का का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु प्रोसेसिंग के अभाव में मक्का बाहर चला जाता है। इतना ही नही प्रोसेसिंग के अभाव में लीची, आम एवं सब्जी अधिक मात्रा में बर्बाद हो जाता है। भारत में 75 प्रतिशत लीची का उत्पादन बिहार में ही होता है। बिहार में बेहतर क्वालिटी के पान का उत्पादन के साथ–साथ बड़े पैमाने पर मखाना का उत्पादन होता है, परन्तु इसका व्यापार कानपुर से होता है। प्रोसेसिंग के क्षेत्र में अपार सम्भवनायें है। इसके लिए बिहार सरकार द्वारा फूड प्रोसेसिंग यूनिट लगाने पर छूट की भी व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जाति/जनजाति एवं महिलाओं को फूड प्रोसेसिंग यूनिट लगाने पर अतिरिक्त छूट की व्यवस्था की गई है, ताकि लोगो को सहयोग कर, उनकी आमदनी को बढ़ाकर उनके जीवन स्तर में सुधार किया जा सके।

विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री फ्रांस्वा बुर्जोइग्नोन के अनुसार कृषि क्षेत्र में विकास गरीबी को दूर करने में काफी सहायक सिद्ध हुई है। उनके अनुसार जहां ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की संख्या लगातार बढ़ रही है वहां गरीबी को दूर करने के लिए कृषि क्षेत्र की अनोखी शक्ति का विस्तार किया जाना बहुत जरूरी है। इसके लिए उच्च मूल्यवाली कृषि क्रांति, उद्यानिकी क्षेत्र में सुविधाएं, पोल्ट्री, मतस्य आदि को बढ़ावा देकर इनके मूल्य निर्धारण में सुधार कर और अनाजों के सब्सिडी समर्थन में व्यापक फेर–बदल कर गांव के लोगों की गरीबी दूर की जा सकती है।

आर्थिक सर्वेक्षण 2019–20 के अनुसार राज्य में अंडा और मछली उत्पादन में बडा उछाल आया है। आर्थिक सर्वेक्षण 2016–17 में 111.17 करोड़ अंडों का उत्पादन हुआ जो 2018–2019 में बढ़कर 176.34 करोड़ तक जा पहुँचा। मछली का उत्पादन भी 2013–2014 में 4.79 लाख टन था जो

2018–2019 में बढ़कर 6.02 लाख टन पहुँच गया है। इन सभी आंकड़ो से बिहार में गरीबी निवारण में कृषि क्षेत्र की भूमिका स्वतः ही स्पष्ट है।

परन्तु, वास्तव में जब तक किसान आर्थिक रूप से सबल नही होगें, बिहार में गरीबी का उन्मूलन नही हो सकता है। इसके लिए गांवों में खेती को लाभकारी बनाने की दिशा में कदम बढ़ाया गया है। इसके लिए बेकार पड़ी जमीनों पर खेती कराने की योजना तो है ही किसानों को इसके लिए मदद के साथ तकनीकी मदद भी की जा रही है। कृषि विभाग ने विभिन्न योजनाओं के माध्यम से लधु एवं सीमान्त किसानों को ज्यादा मदद कर रहा है, ताकि खेती में उनको ज्यादा मुनाफा हो। इसके तहत फसल उत्पादन के साथ उद्यान, पशुपालन, डेयरी, पोल्ट्री, मतस्य आदि को बढ़ावा देकर ग्रामीणों की आय बढ़ाने का उपाय किया गया है। इतना ही नही किसानों की खेती में उपयोग होने वाले आधुनिकतम यंत्रो पर नियमानुसार सरकार द्वारा अनुदान दिया जा रहा है, ताकि ये इनका प्रयोग कर खेती को अधिक लाभकारी बना सकें। कृषि के क्षेत्र में गरीबी निवारण हेतु कई अन्य योजनाएं संचालित है जैसे– बीज एवं बीज प्रत्यक्षण, सिंचाई योजना, किसानों के लिए प्रशिक्षण योजना, मुख्यमंत्री बागवानी योजना, ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, दियारा विकास योजना, बीज विश्लेषण, उर्वरता प्रबंधन इत्यादि कई तरह कि योजनाएं कृषि क्षेत्र के विकास एवं गरीबी निवारण हेतु संचालित हो रही है।

वास्तव में जब तक इस राज्य का कृषि क्षेत्र मजबुत नही होगा, गरीबी उन्मूलन की बात बेमानी है। अन्य योजनाओं से कुछ समय तक राहत मिल सकती है परन्तु जब खेती लाभकारी होगा, तभी समाज से गरीबी मिटेगी। इसके लिए कृषि क्षेत्र में सुधार की जरूरत है ताकि मानसून पर निर्भरता कम हो। साथ ही राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों में लधु एवं कुटीर उधोगों को बढ़ावा देकर छिपी हुई बेरोजगारी दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं रोजगार गारन्टी देने वाली दुनिया की सबसे बड़ी योजना ''मनरेगा'' गांव के लोगों के लिए एक बड़ी कमाई का जरिया है। परन्तु मनरेगा में काम कर रहे मजदूर मौजूदा मजदूरी की दरों और मिलने वाले कामों से संतुष्ट नही हैं। अगर इसे मजबूत किया जाय तो गांव के लोगों की बेरोजगारी दूर हो सकती है। अतः इस तरह की और अनोखी योजनाओं को लाने एवं इसके दायरे बढ़ाने की आवश्यकता है।

व्याख्याता, ग्रामीण अर्थशास्त्र विभाग

ईश्वर दयाल भागवत प्रसाद सिंह माहाविद्यालय

नोखा, रोहतास।

संदर्भ ग्रंथ :

भारतीय अर्थव्यवस्था – दत् एवं सुन्दरम

कृषि अर्थशास्त्र– डा0 बी0 एल0 माथुर

बिहार इकोनामिक सर्वे– 2019–20

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Postmodern perspective in Amitav Ghosh's *Ibis* Trilogy

Khurshid Fatehul Ikram
Asst. Prof. Dept. Of English
Jaleswar College, Goalpara (Assam)

Indian writing in English has stamped its greatness by mixing up tradition and modernity in the production of art. At the outset, the oral transmission of Indian literary works gained ground gradually. It created an indelible mark in the mind and heart of the lovers of art. The interest in literature lit the burning thirst of the writers which turned their energy and technique to innovate new form and style of writing.

Earlier novels projected India's heritage, tradition, cultural past and moral values. But a remarkable change can be noticed in the novels published after the First World War, which is called, modernism. The novels written in the late 20th century, especially after the Second World War, are considered postmodern novels. Salman Rushdie, Vikaram Seth, Shashi Tharoor, Upamanyu Chatterjee and Amitav Ghosh are the makers of new pattern in writing novels with post-modern thoughts and emotions.

Amitav Ghosh is one among the postmodernists. He is immensely influenced by the political and cultural milieu of post independent India. Being a social anthropologist and having the opportunity of visiting alien lands, he comments on the present scenario the world is passing through in his novels. Cultural fragmentation, colonial and neo-colonial power structures, cultural degeneration, the materialistic offshoots of modern civilization, dying of human relationships, blending of facts and fantasy, search for love and security, diasporas, etc… are the major preoccupations in the writings of Amitav Ghosh.

The elemental traits of post-modernism are obviously present in the novels of Amitav Ghosh. As per postmodernists, national boundaries are a hindrance to human communication. They believe that Nationalism causes wars. So, post-modernists speak in favour of globalization. Amitav Ghosh's novels centre around multiracial and multiethnic issues; as a wandering cosmopolitan he roves around and weaves them with his narrative beauty. In *The Shadow Lines*, Amitav Ghosh makes the East and West meet on a pedestal of friendship, especially through the characters like Tridib, May, Nice Prince etc., He stresses more on the globalization rather than nationalization. In *The Glass Palace*, the story of half-bred Rajkumar revolves around Burma, Myanmar and India. He travels round many places

freely and gains profit. Unexpectedly, his happiness ends when his son is killed by Japanese bomb blast. The reason for this calamity is fighting for national boundaries.

Amitav Ghosh has been credited for successfully mastering the genre known as 'magical realism' which was largely developed in India by Salman Rushdie and in South America by Gabriel Garcia Marquez. Ghosh is seen as "belonging to this international school of writing which successfully deals with the post-colonial ethos of the modern world without sacrificing the ancient histories of separate lands." (Anita Desai, 1986:149)

Like Salman Rushdie, Amitav Ghosh perfectly blends fact and fiction with magical realism. He reconceptualises society and history. He is so scientific in the collection of material, semiotical in the organization of material, so creative in the formation of fictionalized history. Amitav Ghosh weaves his magical realistic plot with postmodern themes. Self-reflexity and confessionality characterize fictional works of Amitav Ghosh. Displacement has been a central process in his fictional writings; departure and arrivals have a permanent symbolic relevance in his narrative structure. Post modernism gives voice to insecurities, disorientation and fragmentation. Most of his novels deal with insecurities in the existence of humanity, which is one of the postmodern traits. In *The Glass Palace*, the havoc caused by Japanese invasion in Burma and its effect on the Army officers and people, "a sense of dejection that deals with so much human tragedy, wars, deaths, devastation and dislocation" (Meenakshi Mukherjee, p.153), has been penned. In *The Shadow Lines*, Tridib sacrificed his life in the act of rescuing May from Muslim mobs in the communal riots of 1963-64 in Dhaka. Pankaj Mishra describes Amitav Ghosh in the New York times, as one of few postcolonial writers, "to have expressed in his work a developing awareness of the aspirations, defeats and disappointments of colonized people as they figure out their place in the world". (Mishra, New York Times 1988).

Postmodernism rejects western values and beliefs as only a small part of the human experience and rejects such ideas, beliefs, culture and norms of the western. In *The Hungry Tide*, Ghosh routes the debate on eco-environment and cultural issues through the intrusion of the West into East. *The Circle of Reason*is an allegory about the destruction of traditional village life by the modernizing influx of western culture and the subsequent displacement of non European peoples by imperialism. In *In An Antique Land*, contemporary political tensions and communal rifts were portrayed.

Postcolonial migration is yet another trait of postmodernism. In *The Hungry Tide*, the theme of immigration, sometimes voluntary and sometimes forced, along with its bitter/sweet experiences, runs through most incidents in the core of the novel – the ruthless suppression and massacre of East Pakistani refugees who had run away from the Dandakaranya refugee camps to Marichjhampi as they felt that the latter region would provide them with familiar environs and therefore a better life. In *Sea of Poppies*, the

indentured labourers and convicts are transported to the island of Mauritius on the ship Ibis where they suffer a lot. In *The Glass Palace,* the Burmese Royal family, after the exile, lives an uncomfortable life in India. Rajkumar who piles heap of amount in Burma is forced to leave his home and business due to Japanese invasion.

Irony plays a vital role in the postmodern fiction. The writers treat the very subjects like World War II, communal riot, etc. from a distant position and choose to depict their histories ironically and humorously. In *The Glass Palace,* Amitav Ghosh weaves the characters of Queen Supayalat and Arjun with a tinge of irony. Queen Supayalat, even after being captured by the British forces, does not lose her pomp throughout the novel. The portraiture of the Queen is too ironic. Arjun, basically an Indian, is completely influenced by the western ideology. He imitates the West in his dressing sense and food habit. He is not aware of the fact that he is used as instrumental to inflict pain on his own people.

Temporal distortion is a literary technique that uses a nonlinear timeline. The author may jump forwards or backwards in time. In *The Glass Palace,* Amitav Ghosh uses nonlinear timeline. The memory links the past to the present and many of the characters. It helps to recreate a magical world. In *The Hungry Tide,* he shuttles between the Marichjhampi incident from Nirmal's point of view and the present day travels of Piya Roy, Kanai and Fokir. This time travel creates an intricacy of sub-topics and plots. In his other novels, characters move round a gyre of timelessness, yielding helplessly to the chasm in human relations and other postmodern perturbations.

The narrative style of Amitav Ghosh is typically postmodern. In *The Shadow Lines*, the narrative is simple. It flows smoothly, back and forth between times, places and characters. His prose in *The Shadow Lines*is so evocative and realistic written effortlessly as well as enigmatically with a blend of fiction and non-fiction. Throughout *The Glass Palace*, Ghosh uses one end to signal the beginning of another so that at one level, nothing changes but yet everything does. There is a strong suggestion of Buddhist metaphysics in his technique. Life, death, success and failure come in cycles and Ghosh uses the concept of a pair of binoculars early in *The Glass Palace* to sensitize the reading in this perspective. Being a postmodernist, he makes use of very simple language to give clarity to the readers. Many Indians writing in English experiment with the language to suit their story. Ghosh also does it in *The Hungry Tide*using Bangla words like mohona, bhata and others, interweaving them with local myths like that of Bon Bibi and her brother Shaj Jangali, the presiding deities of the region. Though *The Glass Palace* and *The Hungry Tide*have their share of non-English lexical items, *Sea of poppies*in numerous places piles up the Indian (Bengali or Bhojpuri) or lascar-pidgin terms to the point where some readers might to some extent begin to get confused.

For Amitav Ghosh, language in the process of the production of art attains the status of diasporic representation – voicing him and thousands of other uprooted individuals. Language embodies the attempt to create family that has broken and dispersed in the mire of confused identity. Ghosh acknowledges it in *The Shadow Lines*:

"You see, in our family we don't know whether we're coming or going – it's all my grandmother's fault. But of course, the fault wasn't hers at all: it lay in the language. Every language assumes a centrality, a fixed and settled point to go away from and come back to, and what my grandmother was looking for was a word for a journey which was not a coming or a going at all; a journey that was a search for precisely that fixed point which permits the proper use of verbs of movement." (*The Shadow Lines*, 153)

This is a language that Ghosh believes in and this kind of language he tries to create in his work. Postmodernists reject elaborate formal aesthetics in favour of minimalist designs. Amitav Ghosh does not give any significance for picturesque description and ornamental use of language. Tabish khair comments on this as "Ghosh is very careful in his use of English and vernacular transcriptions. He develops a conscious and rich tradition in Indian English fiction, a tradition that includes R.K. Narayan and Shashi Deshpande. The attempt is not to stage Indian Englishes. Ghosh avoids the aestheticisation of language." (Khair 2001 : p.108)

Postmodernists defend the cause of feminists. Uma, Amitav Ghosh's character, is a perfect example of this. Uma is a break from the traditional women characters. She is a political activist who travels around the country to dissipate the patriotic spirits. Blurring of genres, one of the postmodern traits, can be witnessed in the writings of Amitav Ghosh. He disfigures by blending many genres. Girish Karnad rightly said about him, "Ghosh uses to great effect a matrix of multiple points of view in which memory, mythology and history freely interpenetrate …….. A delight to read" (Indian Express).

The Glass Palace is not only a novel but also romance, narrative fiction, adventure fiction, and historical fiction. He combines all the elements of a novel to create fragmentation. Ghosh uses the romantic genre to chart the characters who reflect on the history of colonialism in Burma and the formation of the present Myanmar nation. It is also a narrative fiction that employs a complex spiral narrative structure to texture many characters' identities and experiences in the world where we live in. It can be read in historical point of view, since it is portraiture of history and document of nation. Ghosh invents the third person narrator who relates a story in a spiral fashion that fictionalizes and makes real historical subject and event. *The Calcutta Chromosome (*1995) is "not only a medical thriller but also a Victorian ghost story, a scientific quest, a unique mixture of a 'whodunit thriller', and a poltergeist tale". (Sudeep Sen, p.222)

Thus, postmodernism, not having concrete definition yet, is a blooming and ongoing area. Even if it has its own features, it is very difficult to concretize these solid elements.

Thus, this paper remains an attempt to apply the post-modern theory in Amitav Ghosh's novels.

Works Cited :

Ghosh, A. (2008) *Sea of Poppies*; Penguins Books India.

Ghosh, A. (2011) *River of Smoke*; Penguins Books India.

Ghosh, A. (2015) *Flood of Fire*; Penguins Books India.

The Shadow Lines,. Delhi: Ravi Dayal Publisher, 1988.

In an Antique Land. Delhi: Ravi Dayal Publisher, 1992.

The Calcutta Chromosome. Delhi: Ravi Dayal Publisher, 1996.

The Glass Palace. Delhi: Ravi Dayal Publisher, 2000.

The Hungry Tide. New Delhi: Harper Collins, 2005.

Han, S. (2013) Amitav Ghosh's *Sea of Poppies*: Speaking weird English, *The Explicator*, Vol. 71, No. 4, 298–301.

Berry, Peter. *Beginning Theory*. New York: Manchester University Press,2002. Ghosh, Amitav. *The Circle of Reason*. London: Hamish Hamilton Ltd., 1986.

Khair, Tabish. *Amitav Ghosh: A Critical Companion*. Delhi: Permanent Black, 2003.

Mukherjee, Meenakshi. "Of Love, War and Empire." Rev. of *The Glass Palace. Indian Review of Books*10.1 (Oct 16-Nov 15 2000)

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

The Feminist Dimension in Anita Desai's *Cry, the Peacock*

Md. Abdur Rouf Siddiquee
Asst. Prof. Dept. Of English,
Luitparia College, Barpeta (Assam)

In the growth and development of the Indo-Anglian novel, the feminine sensibility has achieved an imaginative self-sufficiency which merits recognition in spite of its relatively later manifestation. Anita Desai presents "the welcome creative release of the feminine sensibility" (Rao, 1972 : 50), which emerged thoroughly in the post-Independence era. Desai is a novelist of considerable merits and has enriched the Indian novel in English in various ways. It is her thematic concerns and technical innovations that have been chiefly responsible for making her "a disturbing and demanding presence in Indo-Anglian fiction". (Maini, 1977 : 216). Desai's interests are far more psychological than social, political or sociological. Exploration of the deeper and inner-most core of the consciousness of her characters, particularly, her female protagonists, constitutes, by and large, the singular forte of Anita Desai as a novelist and also as a woman-writer.

However, before detailing the feminist dimension as portrayed by Anita Desai in her novels, it is highly pertinent here to have an overview of the critical theory and praxis of feminism, in general, the world over, andin India, in particular. Feminist critical theory is considered to be a political discourse, a literary and theoretical commitment to the struggle against patriarchy and sexism and not merely a gender study in literature. In fact, feminist critical perspective and theory become pertinent to the study and analysis of the social, institutional and personal power relations between the sexes.

India has always been proud, and justifiably so, of its enduring family values. The changing lifestyles and the growing prosperity give the modern women confidence and they are no speaking out their concerns – physical security, emotional well-being, financial self-sufficiency or their rights. The dynamics that are at work around women inside and outside the homes, therefore, need close scrutiny. Literature can never float in a neutral ideology and a 'perfect' text should have the potential to yield itself to different interpretations. Josephine Donovan goes to the extent of advocating the paradigmatic shift in the study of a text from the traditional 'aesthetic' aspect to the newer version such as its 'moral' aspect. Even within a system, the focus keeps shifting from one angle to another. For instance, feminists tend to move from 'andocentric' to 'gynocentric' approach to the issues of women. Even women begin to build their 'heterocosm' totally opposed to patriarchally accepted social norms. In literature, authors portray women in two easily identifiable categories – 'good' women, the

ideal version and the 'bad' women, the spoilers of men. But the true-to-life models, perchance, lie somewhere in between.

Generally speaking, feminism is a complex and complicated term that eludes a precise definition. All the advocates of feminism do not necessarily concur with one another in dealing with the atrocities against women or in defining a common framework of approach. "But it is really the very product of culture of change" (Singh, 2001 : iv). The liberal feminism presupposes the position of women in society as unequal, denying them the 'autonomy' or 'freedom' in public arena. Radical feminists strategically aim at attacking the subordination of women in terms of body politics – the sexual oppression. Thus they could differentiate between 'gender' and 'sex' The Marxist-Socialist concept of feminismanalyses the class system based on wealth. They insist that fundamentally men and women are the same and the distinction lies only through their social status. The Socialist feminism has three strands of tradition – the social construction of gender, the theory of power through capitalist patriarchy and the 'dynamic duo' approach – the interaction of sexual and class oppression, as propounded by Heidi Hartmann. Identity crisis and lack of self-assertion among women lead to hypersensitivity and hysterics and ultimately transforming them into neurotic patients. This is known as psycho-analytic feminism. The existential feminists determine women as martyrs – the internalized concept embedded in their different roles in society as wife, mother, sister etc. the French feminism is more oriented towards creating awareness about their physical beauty rather spiritual or moral issues and it is devoid of any postulates. Lastly, the post-modern feminism emphasises the heterogeneous kind of women's oppression, bursting the bubble of universality of suffering of women. Each school of thought focuses on one facet of feminism, excluding or incorporating other ideals.

Desai's novels, however, foreground quite a different variant of feminism, one that was not confrontationist, outlandish and flamboyant. Hers is a sombre, sober, psycho-analytical rendering of her female protagonists. Her debut novel *Cry, the Peacock* (1963) is the story of her protagonist Maya to an older man, a detached, sober, industrious lawyer. Theirs is an incompatible marriage. Temperamentally, they are antithetical to each other. Maya is a highly sensitive woman, while her husband Gautama is too cool, calculating and professional to be able to reciprocate her sentiments and disturbed emotions. H.W. Williams has rightly remarked,

> "Cry, the Peacock is a disturbing novel, mostly takes the form of interior monologue, delineating the tragic mental breakdown of a young Indian woman, Maya" (Williams; 1976 : 87).
>
> The novel begins, with quite an ominous ring :
>
> "All day long the body lay rotten in the sun" (Cry, the Peacock 5).

An average evening for Maya is hardly more than "a quiet formal waiting" (Cry, the Peacock 7). Their marital life is punctuated all along by "matrimonial silences" (p. 12) and her husband's "hardness ….. his coldness and incessant talk of cups of tea and philosophy" (p. 9). The novel tells the story of a young sensitive girl Maya obsessed by a childhood

prophecy of disaster, whose extreme sensitivity is rendered in terms of immeasurable alienations. Their fate reminds one of that of Mr. and Mrs. Ramsay in Virginia Woolf's novel To the Lighthouse. Maya is pained and anguished by the cold in difference and the Total Lack of communication on Gautama's part :

> "How little he knew my suffering, or of how to comfort me. Telling me to go to sleep while he worked at his papers, he did not give another thought to me, to either the soft willing body, or the lonely wanting mind that waited near his bed" (Cry, the Peacock 9).

The central theme of marital incompatibility and discord lays stress particularly on women. Maya and Gautama are the chief exponents of this problem with emphasis and poignancy all around them. The title of the novel sensitively relates the spiritual pangs of Maya, the half-child, half-woman romantic heroine, who identifies herself with the peacocks in the agony of ecstasy of their falal love-experience :

> "Now that I understand their call, I wept for them, and wept for myself, knowing their words to be mine" (Cry, the Peacock 97).

At the very outset, one becomes fully aware of Maya's infantilism, hyper sensitivity and a highly disturbed state of mind. The death motif is built skillfully into the theme of the novel. Her pet dog Toto's death fills Maya's mind with a premonition of some impending tradegy, as she exclaims in Chapter I of Part Two of the novel :

> "…… it was not my pet's death alone that I mourned today, but another sorrow, unremembered, perhaps as yet not even experienced, and filled me with this despair" (Cry, the Peacock 8).

Like Macbeth, she is haunted by the dire prediction because "four years it was now, we had been married four years …… I knew the time had come. It was now to be either Gautama, or I" (Cry, the Peacock 32-33). The prediction of the albino astrologer creates a terrible commotion in her consciousness. Reacting to the untimely death of Toto, she rushes to the garden tap "to wash the vision from her eyes" (p. 15). But her husband remains unaffected and would shrug "her words off as superfluous, trivial" (p. 19). A restlessness always boils within her and the estrangement holds them apart –

> "Maya feels defenceless and utterly alone in the company of the bleak, comfortless figure passing as her husband" (p. 146).

In her perturbations and, on receipt of her brother's letter, Maya tries to convince her own self by way of self-arguments and interior monologues, that for the fulfilment of the astrologer's prophecy, her own was not necessary; it might well be Gautama's because

> "the man had no contact with the world, or with me" (p. 175)

Thus convinced, the eccentric Maya pushes Gautama off the terrace to death, not much sure what she was going to get by this mariticide. Symbolically rendered, this mariticide may be imagined as the take-off point for the women's liberation movement in the then India during the early 1960s, a rather more drastic variant than its bra-burning global

counterpart. But Maya did not get any solace and ultimately her psychic problems, aggravated by her infanticism, drove her to a sort of schizophrenia. Maya felt herself as –

> "a body without a heart, a heart without a body" (p. 196).

And, in spite of her rationalisation in the end she kills herself. A painful and languid remorsekeeps on haunting the stricken conscience of Maya :

> "Gautama, had you but caught me then, you might have stayed me !" (Cry, the Peacock 142).

The lines from songs and couplets she used to murmur and whisper to herself in her father's and husband's homes, no more bring her joy and satisfaction :

> "But the only one I can recall is once that now brings tears to my eyes :
> 'I might, after all, have achieved the way to grace,
> Had you but granted me a few years more, O Lord.'

I conjure up odours and temperatures out of the air, seeking to recreate the world I have cost, and succeed in summoning up a host of visions so vivid, so brilliant, that they sear me and annihilate me, my body and my surroundings, and I am torn between two worlds – the receding one of grace, the approaching one of madness. My body breaks in the battle" (Cry, the Peacock 148).

Maya, the female protagonists, thus unravels the enigma of the feminine psyche in myriad ways, and yet keeping her identity, her individual personality. Born and brought up in a wealthy Brahmin family in an ethos of traditional values of culture, and luxury and almost cloistered life, she appears rather unaware of the harsh realities of domestic life. Self-acknowledged, she behaves a la 'toy-princess' :

> "….my childhood was one in which much was excluded, which grew steadily more restricted, unnatural even, and in which I lived as a toy princess in a toy world. But was a pretty one" (Cry, the Peacock 89).

Thus, Anita Desai, through her novels, portrays the feminist yearning for an autonomous space in the male-dominant Indian society, albeit in a much broader perspective. That her novels, therefore, portray females' desire for individuality, dignity, equality and liberty from social and traditional bondages in the patriarchal society, is an established and well-researched aspect of Desai's forte as a novelist, and a woman novelist at that. Denying to take a narrow feminist approach, she herself asserts that she prefers to write broadly and mainly about women for she knows and understands them best.

> "Millions are condemned to a stiller doom than mine, and millions are in silent revolt against their lot. Nobody knows how many rebellions ferment in the masses of life which people earth."

Works Cited

- Althusser, Louis. "Ideology and Ideological Apparatuses." *Lenin and Philosophy and Other Essays*. New York : Monthly Review Press, 1971.

- Asnani, Shyam, "Theme of Withdrawal and Loneliness in Anita Desai's *Fire on the Mountain*", in *Journal of Indian Writings in English*, Vol IX, No. 1
- Annan, Gabrielle, *Dreams of Old Delhi, in Times Literary Supplement*, Sept. 5, 1980, 948.
- Bartky, Sandra Lee. *Feminity and Domination, Studies in the Phenemenology of Oppresio.* London : Routledge, 1990.
- Beauvoir, Simon de. *The Second Sex*. Harmondsworth : Penguin, 1987.
- Chopin, Kate. *The Awakening.* New York : The Modern Library, 1981.
- Cixous, Helene. 'Writing the body' in Mary Eagleton (ed.) *Feminist Literary Theory : A Reader* (1986). Cambridge Man : Blackwell, 1996.
- Desai, Anita. 'A Secret Connivance', *Times Literary Supplement*, 14-20 September, 1990.
- Desai, Anita. "*Women Writers*", Quest 65 (April–June 1970).
- Desai, Anita. "The Indian Writer's Problems", in R.K. Dhawan (ed.), *Explorations in Modern Indo-English Fiction* (New Delhi, 1982).
- Desai, Anita, Anita Desai : *The Novelist who writes for Herself* (An Interview), *The Journal of Indian Writing in English*, Vol. 5, No. 2, July, 1977.
- Desai, Anita, *Cry, the Peacock,* Delhi : Orient Paperbacks, 1963.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Jane Austen's Art of Plot Construction in *Emma*

Subodh Kumar

Jane Austen is regarded as a modern novelist for she is the leading exponent of what Robert Liddel calls 'the pure novel'. She recognised her limitations and sought to achieve perfection in all of her major novels. Like a unique pure novelist. Austen delights us by the formal qualities of her composition, by her design, by the subordination of the parts to the whole, by her study of the relation between the characters or of their relationship to the central theme. Her criticism of life is an aspect of her design or plot structure. Austen has her own interpretation of life to offer, and her matter, her design, is always subordinated to this end. She was an astute artist subdued with realism, moralism and pragmatism. The attainment of self-knowledge, gained mostly after denuement, on the part of her central figures is always Austen's theme, and self-knowledge results in goodness.

Like all major writers, Austen changed the genre in which she wrote. Indeed in view of her twentieth century critics, she is the key-figure in the early nineteenth century consolidation of the novel.[1] Her contemporaries may have believed that the future belonged to Sir Walter Scott and the historical romance, to what Scott himself called with becoming self-deprecation, 'the big bow-wow,'[2] but we know now that it was really in possession of the Home Counties ironist Austen with her vivid depiction of late Georgian, country, social life. This can also seen if we are charting the forward progress of the English novel, from George Eliot through Henry James, to Elizabeth Bowen, Barbara Pym, and Henry Green, to Martin Amis, Ian McEwan, and Jane Rogers. In other words Austen represented the future if one thinks of the novel as a form that attempts to sound character as realized in and through a highly particularized social reality.

Jane Austen is a great comic artist, a serious interpreter of life, and a creator of brilliant mimetic characterizations. Some critics feel that she achieves, better perhaps than any other novelist, a balance between these various components of her art. There are powerful unrecognized tensions between form, theme, and mimesis in most of Austen's novels. These tensions are not the result of a particular weakness on her part, for they exist in almost all realistic novels and are a characteristic of the genre. As Northrop Frye observes, there are "two poles of literature," the mimetic, with its "tendency to verisimilitude and accuracy of description," and the mythic, with its "tendency to tell a story . . . about

characters who can do anything."[3] Western literature has moved steadily from the mythic to the mimetic pole, generating in the process five literary modes: the mythic, the romantic, the high mimetic, the low mimetic, and the ironic. In each successive mode the power of the hero diminishes, while that of the environment increases, and wish gives way more to reality. Jane Austen's fiction belongs to the low mimetic mode in which "the hero is one of us" and we demand from the author "the same canons of probability that we find in our own experience" (AC, pp. 33-34). The movement toward mimesis affects only content, however. Even in the most realistic works, "we see the same structural principles" that we find in their pure form in myth (AC, p. 136) There is a built-in conflict between myth and mimesis: "the realistic writer soon finds that the requirements of literary form and plausible content always fight against each other."[4] When judged by the canons of probability, "every inherited convention of plot in literature is more or less mad."

The devices which a realistic writer uses to make his plots seem plausible and morally acceptable Frye calls "displacement" It is displacement also which accounts for the movement from mode to mode. This concept is taken from Freud, and Frye's reliance on it indicates that his system is not derived purely from an inductive survey of literature, as he claims. The conflict between the mythic and the mimetic impulses corresponds to the struggle between the pleasure principle and the reality principle, and the evolution of Western literature represents a series of stages in the development of the sense of reality. The pleasure principle is never abandoned, however, but seeks to realize itself in ways which are acceptable to the ego, which demands adaptation to reality, and to the superego, which demands conformity to a moral code. This process is especially vivid in Jane Austen, who is trying to combine comic actions with realistic characterization and serious moral concerns.

Structurally, her novels are a series of variations upon the basic "comic movement from threatening complications to a happy ending"[5] (AC, p. 162). The happy ending consists in the heroine's gaining the love of a good man, the security and prestige of a desirable marriage, and the recognition of personal worth which she deserves. "The obstacles to the (heroine's) desire ... form the action of the comedy, and the overcoming of them the comic resolution" (AC, p. 164).

The blocking forces in Austen's actions may be primarily internal, primarily external, or some combination of both. Elinor Dashwood, Fanny Price, and Anne Elliot have little to learn; it is a combination of unfavourable circumstances, irrational or misguided elders, and faulty social institutions or values which stands in the way of their rational desires. The main thing which they must do is to remain true to themselves, to hold onto their principles and their personal integrity in the face of external threats and disappointments. In the cases of Marianne Dashwood, Elizabeth Bennet, and Emma Woodhouse there are, to be sure, external blocking forces; but the chief obstacles to their happiness lie in themselves; and they must undergo an internal change if they are to gain their reward.

As is usual in comedy, there is a certain amount of manipulation, both in the creation and removal of blocking forces and in the final resolution of the action. "Happy endings do not impress us as true," says Frye, "but as desirable, and they are brought about by manipulation .... The manipulation of plot does not always involve metamorphosis of character, but there is no violation of comic decorum when it does.

Unlikely conversions, miraculous transformations, and providential assistance are inseparable from comedy" (AC, p. 170) Since she is writing in a low mimetic mode, Austen takes some trouble to disguise the irrationalities of her plots by various devices of displacement; but she also lets us know early that we are moving in a world which is governed by the conventions of comedy; and we should not be surprised by the arbitrariness of some of her resolutions.

The fact that she is writing comedy does not interfere with Jane Austen's thematic concerns. She harmonizes form and theme by moralizing the comic action. Her satire is directed at those traits of personality, at those failures of education and judgment, and at those distortions of social customs and institutions which make daily life painful and ultimate fulfilment uncertain for good and sensitive people. The existing society at its best provides her moral norms; no happiness is possible outside of its institutions and no deviation from its values is ultimately successful. She places (in some novels, at least) a high value on individual fulfilment; but before he can be happy, a person must first be good, and her notion of goodness is strict and narrow. She employs the comic apparatus of rewards and punishments to reinforce her essentially conservative value system.

Austen's moral conservatism tends to diminish some of her comic effects. As a rule, comedy is liberal. It is on the side of desire. It celebrates the triumph of wish over reality, over all those obstacles in people, in circumstances, and in society which stand in the way of happiness. A new society crystallizes at the end; it moves, in most cases, "from a society controlled by habit, ritual honrl arbitrary law and the older characters to a society controlled by youth and pragmatic freedom" (AC, p. 169). In Jane Austen's comedy there is a good deal of displacement not only in the direction of the plausible, but also in the direction of the moral. The wishes which are fulfilled in her novels are highly socialized; primitive, irrational, or selfish wishes are rarely indulged. So much has been given up, indeed, that the reader sometimes has difficulty feeling much elation at the outcome; age and sobriety seem often to triumph over youth and freedom. The heroines get what they want, but we often have trouble wanting it for them. A new society is established at the end in which rational and deserving people can be happy; but in novels like *Emma* and *Mansfield Park*, at least, not many of us would care to be in their place.

The wish fulfilment aspect of comedy seems to work best when the protagonist's "character has the neutrality which enables him to represent" desire (AC, p. 167), and when

the ideals of the new society are relatively undefined: "We are simply given to understand that the newly-married couple will live happily ever after, or that at any rate they will get along in a relatively unhumorous and clear-sighted manner. That is one reason why the character of the successful hero is often left undeveloped: his real life begins at the end of the play, and we have to believe him to be potentially a more interesting character than he appears to be" (AC, p. 169). One reason why it is difficult to rejoice in Jane Austen's happy endings is that both her ideals and her protagonists are so fully developed. Our judgments must correspond closely to hers if the comic resolution is to produce its desired emotional effect; but we know so much about her values and her characters that we often find ourselves in conflict with the author, rather than under her spell. Instead of having the neutrality which allows them to represent desire, her protagonists are highly individualized human beings, often quite different from ourselves, with whom we may not readily identify.

Examining certain aspects of the aesthetic and thematic structures of Mansfield Park with the object of under- standing how Jane Austen meant us to think and feel about Fanny Price. I contended at the outset that Fanny is a highly realized mimetic character, a creation inside a creation, whose human qualities are not compatible with her aesthetic and thematic roles. When we understand Fanny psychologically, it is difficult to regard her as the angelic being she is supposed to be and to accept the powerful rhetoric which aims at her glorification. We may be at odds with the author also in our response to the education theme. Jane Austen seems perceptive enough in her criticism of the spoiled children, but it is difficult to agree with her celebration of hardship, struggle, and suffering and the effects which they produce.

Part of the problem is that the author herself has invited our indignation at the way in which Fanny has been treated. Her "motives have often been misunderstood, her feelings disregarded, and her comprehension under-valued. she (has) known the pains of tyranny, of ridicule, and neglect" (I, xvi). It is difficult, suddenly, to regard this " 'abominable ... unkind-ness' " (11 xii) as advantageous. An even greater obstacle to our acceptance of the author's final view of Fanny's education is that she shows us, in her concrete portrayal of Fanny, how destructive this awful treatment has been. For reasons of her own, Jane Austen needed to glorify suffering and to believe that struggle and privation make one a better person. This did not prevent her from portraying quite accurately, however, the crippling effects of Fanny's childhood upon her personality. When we see Fanny as a person, it is hard to believe that the bad treatment she received was good for her and that she turned out well. She is as damaged as the spoiled children, but in a different way.

We do not sympathize with Fanny as much or find her as interesting as we might because Austen asks us to admire her. But when we look at Fanny as a person, rather than as a heroine, our compassionate feelings are liberated and we find her to be a complex and fascinating psychological portrait. In order to appreciate fully the intricacies of her character

and the greatness of Austen's mimetic achievement, we need to look at Fanny from the perspective of an appropriate psychological theory. Those who are familiar with my use of Third Force psychology in the study of literary characters may already have seen that Fanny is a remarkable example of Karen Horney's self-effacing personality. For the benefit of those who are un- familiar with Third Force psychology, I shall present here a brief account of its theories. Some of the material applies directly to Mansfield Park; some of it will not be used until we deal with other novels.[6]

Third Force psychologists see healthy human development as a process of self-actualization and unhealthy development as a process of self-alienation. They contend, in essence, that man is not simply a tension-reducing or a conditioned animal, but that there is present in him a third force, an "evolutionary constructive" force, which urges "him to realize his given poten- tialities."[7] Each man has "an essential biologically based inner nature" which is "good or neutral rather than bad" and which should be brought out and encouraged rather than suppressed. If this inner nature "is permitted to guide our life, we grow healthy, fruitful, and happy." If it is "denied or suppressed," we get sick. This inner nature "is weak and delicate and subtle and easily overcome by habit, cultural pressure, and wrong attitudes toward it."[8]

One of the most interesting Third Force contributions to our understanding of man's essential nature is Abraham Maslow's theory of the hierarchy of basic needs. According to this theory, all men have needs for physiological satisfaction, for safety, for love and belonging, for self-esteem, and for self- actualization.[9] these needs are not always experienced consciously; indeed, they tend to be more unconscious than conscious. They are hierarchical in that they exist in an order of prepotency; the physiological needs are the most powerful, and so on. The needs at the upper end of the hierarchy are much weaker than the lower needs, though they are no less basic. All of the needs are basic in the sense that they are built into man's nature as a function of his biological structure, and they must be gratified if the organism is to develop in a healthy way.

Each individual presses by nature for the fulfilment of all these needs, but at any given time his motivational life will be centered around the fulfilment of one of the needs. Since a higher need emerges strongly only when the needs below it have been sufficiently met, the individual tends to be occupied with the basic needs in the order of their prepotency. The person living in an environment which is favourable to growth will move steadily up the hierarchy until he is free to devote most of his energies to self-actualization; this is the full and satisfying use of his capacities in a calling which suits his nature.

The most important change in Emma, from Jane Austen's point of view, is in her attitude toward herself. The process is slow, but her overinflated ego is eventually reduced to a proper size. The movement is from pride to humility, from self-aggrandizement to self-

castigation, from self-delusion to self- knowledge: "With insufferable vanity had she believed herself in the secret of everybody's destiny. She was proved to have been universally mistaken" (*Emma*, III, xi)

Emma is driven to many of her recognitions by threatening complications; but when all difficulties are resolved and happiness is in sight, she does not revert to her former attitudes: "What had she to wish for? Nothing but to grow more worthy of him, whose intentions and judgment had been ever so superior to her own. Nothing but that the lessons of her past folly might teach her humility and circumspection in future" (*Emma*, III, xviii)

Emma's education is an example of moral growth through suffering. She is instructed not only by Knightley, but also by reality, which crushes her pride and forces her to abandon her delusional system. She does not accept Knightley's lessons untilreality proves her to have been wrong and threatens to punish her for her errors.

Emma has a comic education plot. The heroine errs as a result of her faults, suffers as a result of her errors, grows as a result of her suffering, and achieves happiness as a result of her growth. (In a tragic education plot, the protagonist grows as a result of his suffering, but is destroyed as a result of his errors.) From Jane Austen's point of view, there is no reason to doubt that Emma's reformation will be permanent and complete. Her change has already been so remarkable as to earn Knightley's esteem: they "have every right that equal worth can give,' " he proclaims, " 'to be happy together' " (*Emma*, III, xvii). As Wayne Booth observes, "this will be a happy marriage because there is simply nothing left to make it anything less than perfectly happy. It fulfils every value embodied in the world of the book-with the possible exception that Emma may never learn to apply herself as she ought to her reading and her piano!"[10]

"Marriage to an intelligent, amiable, good, and attractive man is the best thing that can happen to this heroine," says Booth, "and the readers who do not experience it as such are, I am convinced, far from knowing what Jane Austen is about" (Rhetoric, p. 260). As he is aware, there are such readers:

“G. B. Stern laments, in Speaking of Jane Austen, "Oh, Miss Austen, it was not a good solution; it was a bad solution, an unhappy ending, could we see beyond the last pages of the book." Edmund Wilson predicts that Emma will find a new protegee like Harriet, since she has not been cured of her inclination to "infatuations with women." Marvin Mudrick even more emphatically rejects Jane Austen's explicit rhetoric; he believes that Emma is still a "confirmed exploiter," and for him the ending must be read as ironic.” (P. 259)

The mistakes of these readers arise, Booth feels, from looking "at Emma and Knightley as real people." From this perspective, he acknowledges, the "ending will seem false"; but for him this is an inadmissible perspective.

References

1. Lynch, Deidre, *The Economy of Character: Novels, Market Culture and the Business of Inner Meaning* (Chicago; University of Chicago Press, 1998), p. 4
2. *The Journal of Sir Walter Scott*, ed. David Douglas 2 Vols. (Edinburgh, 1890), i., p. 155
3. Northrop Frye, *Anatomy of Criticism*, (Princeton University Press, 1957), p. 51; here after referred to as AC in the text
4. Northrop Frye, "Myth, and Displacement," in *Fables of Identity*(Harcourt, 1963), p. 36
5. Frye, *Anatomy*, p. 162.
6. Cf. *A Psychological Approach to Fiction*, ch.2, for a fuller account of Third Force psychology.
7. Karen Horney, *Neurosis and Human Growth* (New York: Norton, 1950), p. 15; here after cited as *NHG*.
8. Abraham Maslow, *Toward a Psychology of Being* (Princeton: Van Nostrand, 1962), pp. 3-4; here after cited as *PB*
9. Cf. Abraham Maslow, *Motivation and Personality* (New York, Evanston, and London; Harper and Row, 1954), Ch. V
10. *The Rhetoric of Fiction* (Chicago: University of Chicago Press, 1961), p. 259.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारतीय बुजुर्गों की समस्या एवं कल्याणकारी योजनाएँ

रीता कुमारी

अतिथि शिक्षक, गृह विज्ञान विभाग
महिला कॉलेज, पटना, (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय)

मानव–जीवन में निरन्तर विकास का क्रम चलता रहता है।शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था उपरोक्त सभी विकास क्रम की हीं अवस्थाएँ हैं। इनमें से वृद्धावस्था जीवन का सबसे आखिरी पड़ाव है। जो प्रौढ़ावस्था से माना है। जबकि कुछ लोगों ने वृद्धावस्था का प्रारम्भ 55 वर्ष की अवस्था से माना है। जबकि कुछ विद्वानों ने 60 वर्ष की उम्र से वृद्धावस्था का प्रारम्भ माना है।

वृद्धावस्था में शारीरिक, मानसिक तथा हारमोन संबन्धी कई परिवर्तन होते हैं।

आज के युग में माता–पिता तथा बुजुर्गो के प्रति युवावर्ग का नाकारात्मक रूख देखने को मिल रहा है, यह भावी पीढ़ी के लिए अशुभ संकेत है। हमारे अठारह पुराणों में वर्णित है। अश्टादश पुराने व्यासस्थदिई वचनम, परोपकार पुण्याय पापाय परपीडणम् परन्तु आजकल समाज में किसी का अहित करना पुण्य करना पुण्य का पर्याय माना जाने लगा है। तभी तो अपने माता–पिता के साथ उनके पुत्र–पुत्रवधु एवं रिश्तेदार दुरव्यवहार करते नजर आ रहे हैं।

आज वृद्धजनों की जो स्थिति है, वह एक गंभीर सामाजिक समस्या है। आज का वृद्ध उस जुआरी की तरह है जो जीत कर भी सब कुछ हार चुका है। मजदूर के रूप में आजीवन कठोर परिश्रम कर बच्चों को पाल–पोष कर खाने–पीने और जीने लायक बना देते हैं। एक व्यवसायी के रूप में मेहनत के बल पर बच्चों को एक आधार दे देते हैं। स्वयं धोर कष्ट उठा कर बच्चों का भविष्य बनाते हैं। वहीं बच्चा आज उसकी दी गयी सुविधा का उपयोग करते हुए ढ़ेर सारे सवाल पूछता है।

आज का वृद्ध उस माली की तरह है जो अपना पसीना बहाकर बाग लगाया है और आज वही माली उस बाग का फूल स्वेच्छा से तोड़ने का अधिकार नहीं रह जाता है।

घर–परिवार, समाज में बुजुर्ग उचित सेवा व सम्मान के अभाव में असहाय नजर आने लगे हैं, बुजुर्ग जन उपेक्षित होकर वृद्धाश्रमों में शरण लेने को बाध्य हो रहे हैं। संस्कृत का श्लोक हमें माता–पिता व बुजुर्गों के प्रति सम्मान का भाव रखने की ओर इशारा करता है। अभिवादनशीलस्थ नित्य वृद्धोपसोपिनों चरवरि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् अर्थात यदि जीवन में आयु, विद्या, यश और बल प्राप्त हो जाता है तो इससे बढ़कर मानव जीवन में दूसरा क्या हो सकता है। माता–पिता तो सदा हीं अपनी संतानों का कल्याण हीं सोचते हैं कहा गया है कि अगर बेटा पिशाच बनकर माँ का कलेजा काट कर निकाल ले तब भी उस कटे कलेजे से निकलेगा, सुखी रहो लाल।

परन्तु वहीं संतान जब माता–पिता को धक्के मार कर धर से निकाल देते हैं और वधू जब सास–ससूर को खाना–पानी बंद कर देती है, तो उन पर उस समय क्या गुजरती होगी, आज ऐसी हरकतों की जितनी निन्दा की जाए, कम है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि माता–पिता और

बुजुर्गों के सेवा–सम्मान से हमारे आत्मबल में वृद्धि होती है, इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने माता–पिता की सेवा के लिए अमेरिका की पढ़ाई अधूरी छोड़ अपने गाँव सिताब दियारा वापस आ गये। हमारे देश में सेवा को जीवन का मूलमंत्र माना गया है। इस भावना को प्रेरित करने के लिए स्कूल, कॉलेज आदि के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के साथ सेवा और सम्मान विषयों को शामिल करने की जरूरत है। रामायण, गीता, वेद, पुराण और दूसरे धार्मिक–ग्रंथों की सामग्री की भी अपनाये जाने की आवश्यकता है।

पेड़ों–पत्थरों से लेकर जानवरों तक को पूजने वाला भारत अपने बुजुर्गों का हीं ख्याल नहीं रख रहा है। कभी माँ–बाप को भगवान मानने वाले भारत के बेटे अब उन्हें बोझ मानने लगे हैं और उन पर अत्याचार के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। भारत के गैर–सरकारी संगठन हेल्प एज इंडिया के एक सर्वे के अनुसार 23 फीसदी बुजुर्ग अत्याचार के शिकार हैं ज्यादातर मामलों में बुजुर्गों को उनकी बहुएँ सताती हैं। 39 फीसदी मामलों में बुजुर्गों ने अपनी बदहाली के लिए बहुओं को जिम्मेदार माना है। सताने के मामले में बेटे भी ज्यादा पीछे नहीं हैं, 38 फीसदी मामलों में उन्हें भी दोषी पाया गया है। चौकाने वाली बात यह है कि इस मामले में खुद की बेटियाँ भी पीछे नहीं हैं छोटे महानगरों में 17 फीसदी बेटीयाँ अपने माँ–बाप पर जुल्म ढ़ा रही हैं।

ऐशो–आराम की जिन्दगी गुजारने की चाहत में आदमी मशीन बनकर दिन–रात काम–काम, सिर्फ काम में जुटा है। इस आपाधापी में अच्छे–बुरे, तथा सही–गलत का फर्क तेजी से मिट रहा है। सब अपना लक्ष्य अपनी हैसियत से कहीं अधिक तय कर रहे हैं। इसी गुत्थम–गुत्थी के बीच बुजुर्गों का हाशियों पर आना बड़ी चिन्ताजनक बात है। चूंकि हम जानते हैं कि बुजुर्ग हमारी संस्कृति के विरासत है, तथा परिवार के नींव भी है। ऐसा कहा जाता है कि जिस परिवार में बुजुर्गों का साया होता है वे परिवार अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को बेहतर ढंग से समझते हैं फिर भी, उदासीकरण एवं बाजारवाद के इस दौर में उनकी कोई अहमियत नहीं रह गयी है, आज संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार ने ले लिया है।

बुजुर्ग अपने हीं धर के भीतर असुरक्षित हैं, ताना मारना, उलाहना देना तो आम बात है, मैथ्यू चेरियन बताते है की बुजुर्गे के साथ मार–पीट की शिकायतें भी अब बढ़ने लगी है, उनका कहना है कि सर्वे में शामिल 39 प्रतिशत बुजुर्गों को परिवार वालों की पिटाई का शिकार होना पड़ता है। अत्याचार का शिकार होने वाले बुजुर्गा 35 फीसदी ऐसे हैं जिन्हें लगभग रोजाना परिजनों की पिटाई का शिकार होना पड़ता है। डॉ0 सुनंदा इनामदार कहती हैं कि धरेलू हिंसा के शिकार ज्यादा बुजुर्ग तनाव के शिकार हो जाते हैं।

बुजुर्गों का अधिकार :–

बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के माता–पिता को धर से निष्कासितनहीं किए जा सकते। यदि वहां बहुत दिनों से ह रहे हैं तो उन पर तीन तत्व लागू होते हैं :–

(1) Code of Criminal Procedure की धारा 125 के तहत एक मजिस्ट्रेट माता–पिता अधिनियम के रख–रखाव के तहत अपने बूढ़े माता–पिता साथ रखने के लिए बच्चे को आदेश दे सकते हैं।

(2) हिन्दु गोद देने और रख–रखाव अधिनियम के तहत एक वृद्ध माता–पिता बच्चे से अपने रख–रखाव की मांग कर सकते हैं। जैसे की एक पत्नी अपने पति से बच्चों के रख–रखाव की मांग करती है।

(3) घरेलू हिंसा कानून भी दूरूपयोग के किसी भी तरह से राहत पाने के अधिकार के साथ माता–पिता को प्रदान करता है।

इस पर राष्ट्रपति ने अपनी सहमति देकर वैसे माता–पिता एवं बुजुर्ग व्यक्तियों के कल्याणार्थ एक नियम पारित किया है जिसमें माता–पिता को

सताने वाले बच्चों को सजा देने का प्रावधान है। जिन बच्चों ने अपने माता–पिता या बुजुर्ग अभिभावक को बेसहारा छोड़ दिया हो या बंदीगृह में बंद कर कैद कर दिया है ऐसे अमानवीय व्यवहार करने वाले बच्चों के लिए कम से कम तीन महीने की सजा एवं अर्थ दंड का भी प्रावधान किया गया है।

केन्द्र और राज्य सरकारों तथा अर्दृशासकीय संस्थाओं व बैंकों द्वारा वरिष्ठ जनों को प्रमुख नागरिकों का दर्जा दिया गया है उन्हें कई तरह की विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं, ताकि वरिष्ठ नागरिक सुख–सुविधापूर्वक व सार्थक जीवन जी सकें। लेकिन यह पाया गया है कि वरिष्ठ नागरिकों के एक बड़े वर्ग को इन सुविधाओं व राहतों के बारे में पूर्व जानकारी नहीं है। वरिष्ठ नागरिकों को उनसे संबंधित सामाजिक, आर्थिक व चिकित्सकीय समस्याओं की जानकारियों से अवगत कराना जरूरी है। वरिष्ठ नागरिकों की सहायता मार्गदर्शन व सेवा के लिये एक अलग मंच की आवश्यकता भी हर क्षेत्र में महसूस हो रही है। जहां वे अपनी समस्याओं का अपने अनुभवों का खुले दिल से आदान–प्रदान कर सकें। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों ने बुजुर्गों के कल्याण की अनेक योजनाएं आरंभ की है।

अलग–अलग राज्य सरकारें अपने साधनों के अनुरूप योजनाएँ चलाती हैं। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश से गुजारिश की है कि वह बुजुर्गों से संबंधित मुकदमों का प्राथमिकता से निपटारा करें। केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 65 वर्ष से अधिक उम्र के निराश्रित लोगों को हर महीने 400 रूपये पेंशन के रूप में दी जाती है। इस योजना के तहत पेंशन स्थानीय निकाय से संपर्क कर प्राप्त की जा सकती है।

आयकर :–

आयकर रिटर्न भरने के लिये वरिष्ठजन के लिये अलग खिड़की का प्रावधान है। उनके कर का मौके पर हीं मूल्यांकन की व्यवस्था है। संपत्ति कर के लिये वरिष्ठ नागरिकों के लिये अलग खिड़की की व्यवस्था की है। वरिष्ठ नागरिकों के लिये आयु 65 वर्ष निर्धारित की गई है। वर्तमान नियमों के अनुसार जिस वरिष्ठ नागरिक की आय सालाना 2,25,000/– से ज्यादा हो उसे रिटर्न फाइल करना जरूरी है। पूर्व में जायदाद मोटरकार, बिजली का भुगतान, विदेश यात्रा, क्रेडिट कार्ड, क्लब की सदस्यता के आधार पर जो रिटर्न फाइल करना पड़ता था, उस आधार पर अब रिर्टन फाइल करने की आवश्यकता नहीं है। धारा 80 डी के अंतर्गत सामान्य करदाता को मेडीकल इंश्योरेंस प्रीमियम चेक से भरने पर आय में 10 हजार रूपये तक कि छूट मिलती है और वही राशि वरिष्ठ नागरिक के लिये अदा की गई हो तो छूट की राशि 15,000 रूपये तक होती है।

किसी भी वरिष्ठ नागरिक की आय, ब्याज, लाभांश आदि पर अगर स्रोत पर कर काटा जा रहा हो तो उसके लिये फार्म 15 एच देने पर स्रोत पर किसी प्रकार का कर नहीं काटा जाएगा। इसके लिये फार्म 15 एच आय मिलने से पहले या मिलने के समय देना जरूरी है। आयकर की धारा 80 सी के अन्तर्गत कुछ निर्धारित निवेश अगर किए जाएं तो निवेश की राशि या एक लाख रूपये कुल आय में से कम हो जाएंगे इसके लिये राष्ट्रीय बचत पत्र, पीएफ, जीवन बीमा, गृह ऋण के पुनर्भुगतान, सावधि जमा योजना, यूटीआई आदि में निवेश किया जा सकता है।

वित्तीय सुविधाएँ :–महाराष्ट्र में वरिष्ठ नागरिकों को व्यवसायिक टैक्स से मुक्ति दे दी गई है। कई कोऑपरेटिव, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बैंक वरिष्ठ नागरिकों को उनके द्वारा जमा की गई धनराशि पर अधिक ब्याज देते हैं। वरिष्ठ नागरिकों के लिये पोस्टल जमाओं पर दिए जाने वाले ब्याज की दर बढ़ा कर 9 प्रतिशत कर दी गई। वरिष्ठ नागरिकों के लिये बचत योजनाजो 2004 में शुरूकी गई थी उसमें एक महत्वपूर्ण सुधार किया गया है जिसके अनुसार बैंकों या पोस्ट ऑफिस का कोई भी खाता एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जा सकता है। चाहे व्यक्ति क े पते में कोई परिवर्तन न भी हो इस सुविधा के कारण अब व्यक्ति अपनी सुविधानुसार किसी भी बैंक या पोस्ट ऑफिस में अपनी जमा राशि स्थानांतरित करवा सकता है। इस प्रकार के अंतरण के लिये नाममात्र की शुल्कनिर्धारित है जो कि पहले एक लाख रूपये के लिये 5 रूपये व अगले प्रत्येक 1 लाख रूपये के लिये 10 रूपये है। नेशनल हाउसिंग बैंक द्वारा वरिष्ठ नागरिकों को निजी धर में रहने पर उसी धर के लिये 2 से 5 हजार रूपये तक मासिक राशि बिना ब्याज कर्ज में देने की सुविधा मिल सकती है।

चिकित्सकीय मदद :–केन्द्र व राज्य सरकार तथा कुछ कंपनियाँ भी अपने वरिष्ठ कर्मचारियों को सेवानिवृति के बाद भी चिकित्सा व मेडिकल सुविधा देती है। वरिष्ठ नागरिक 80 वर्ष की उम्र तक सामान्य बीमा कंपनियों से चिकित्सा बीमा प्राप्त कर सकते हैं। कुछ सरकारी अस्पतालों द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के लिये मुफ्त या रियायती दर पर डॉक्टरी जांच व चिकित्सा करवाने की सुविधा भी दी जा रही है। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के लिये समय–समय पर विशेष चिकित्सीय शिविर लगाए जाते हैं जिसका लाभ वृद्ध नागरिक उठा सकते हैं।

बुजुर्गों के लिये अस्पताल में अलग ओपीडी तथा अलग पंक्ति का प्रावधान किया गया है। चिकित्सा पाठ्यक्रम में जेयरोटिक्स का स्नातकोत्तर कोर्स शुरू किया गया है तथा अस्पतालों में इसकी ओपीडी भी चलने लगी है।

दवाओं और इलाज पर खर्च में छूट :–कोई भी करदाता अगर अपने उपर या अपने परिवार के किसी सदस्य पर जो कि उस कर दाता पर पूर्ण रूप से निर्भर है दवा तथाइलाज के लिये विशेषकर ऐसे रोग जो कि कानून के प्रावधान 11 डी में बताए हुए हैं जैसे–कैंसर, एड्स, पार्किन्संस आदि के लिये खर्च करता है तो खर्च की गई रकम या 40 हजार रूपये जो भी कम हो उसमें छूट मिलती है। यही रकम अगर किसी वरिष्ठ नागरिक पर खर्च हुई हो तो 60 हजार की छूट का प्रावधान है।

यात्रा में छूट :–साठ वर्ष से उपर के पुरूषों को रेलों की सभी श्रेणियों के किराये में 30 प्रतिशत की तथा महिलायों को 50 प्रतिशत की छूट प्रदान की जाती है। आरक्षण के लिये भी अलग काउंटर की व्यवस्था है। विमानों में 65 साल या अधिक आयु के लोगों के मूल भाड़े में 50 प्रतिशत की छूट दी जाती है। सरकारी व निजी दोनों हीं विमान सेवाओं में यह छूट दी जाती है। वरिष्ठ नागरिकों को बिना बारी के टेलिफोन कनेक्शन दिए जाने का प्रावधान भी है।

भरण–पोषण का अधिकार :–दंड प्रक्रिया की धारा 125 के तहत आश्रितों को भरण–पोषण दिलाए जाने की व्यवस्था है। आश्रितों में वृद्ध माता–पिता आते हैं। इस धारा के अन्तर्गत 500 रूपये महीने तक के भरण–पोषणकी व्यवस्था थी लेकिन गत वर्ष अधिनियम में किए गए संशोधन से राज्य सरकारों को भरण–पोषण राशि की सीमा निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया है। वृद्ध माता–पिता माइनोरिटी एंड वार्ड अधिनियम की धारा 18 के तहत भी अपने बच्चों से भरण–पोषण प्राप्त कर सकते हैं इस अधिनियम में भरण–पोषण राशि की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। हिन्दू एडोप्शन एंड मेंटेनेंस एक्ट 1956 के अनुसार, बेटे–बेटियों को असहाय माता–पिता के भरण–पोषण के लिये हर माह पैसा देना होगा। इस रकम की कोई अधिकतम सीमा नहीं है। जिस तरह बच्चे अपने माता–पिता की संपत्ति

पर अधिकार जताते हैं उसी तरह अपने बच्चों से अपेक्षित माता–पिता इस कानून की मदद से अपने खर्चे के लिये पैसे प्राप्त करने के अधिकार का दावा कर सकते हैं।

आवास की व्यवस्था :–कई धर्मार्थ संस्थाओं द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के रहने के लिये मुफ्त या फिर रियायती दरों पर आवास सुविधाएँ दी जा रही है। वृद्धाश्रम या वृद्धों के लिये धर का निर्माण किया गया है। यहां वरिष्ठ नागरिकों के रहने, भोजन, मनोरंजन, पुस्तकालय, सामाजिक व अध्यात्मिक तथा उनके अनुकूल वातावरण की सुविधाएँ प्रदान की गई है। कुछ ऐसे विशेष वृद्धाश्रम भी उपलब्ध हैं जहां कि मरणासन्न वृद्धों को शरण दिया जाता है। महाराष्ट्र सरकार ने तो तहसील व जिले स्तर पर भी मुफ्त या रियायती दरों पर आवास या आश्रमों की व्यवस्था की है।

सम्मान और सुरक्षा हेतु पेंशन योजना :–

भारत सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के 65 वर्ष से अधिक आयु के सभी पुरूषों महिलाओं के लिये वृद्धावस्था पेंशन योजना आरंभ की है। इस योजना में प्रति लाभार्थी प्रतिमाह दो सौ रूपये की दर से पेंशन सरकार दे रही है तथा राज्यों को कहा गया है कि वे प्रति माह कम से कम अतिरिक्त दो सौ रूपये दें। राज्यों को यह भी कहा गया है कि पेंशन डाकद्यर अथवा बैंक खाते के माध्यम से भुगतान की जाए। राज्य सरकारें यह सुनिश्चित करेंगी कि सभी पात्र लाभार्थियों को अनिवार्य रूप से पेंशन मिल रही है। राज्यों को इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत शत प्रतिशत अच्छादन सुनिश्चित करना है। यदि आपकी आयु 65 वर्ष से अधिक है और आपका नाम बीपीएल सूची में है तो कृप्या यह सुनिश्चित करें कि आपका नाम पेंशनधारियों की सूची में तत्काल शामिल किया जाए ताकि आप पेंशन के हकदार बन सकें।

वृद्धावस्था पेंशन के मानदंड को संशोधित करने के पश्चात इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत लाभार्थियों की संख्या वर्ष 2006–7 में 87 लाख से बढ़कर अब 1.43 करोड़ हो गई है। इस वर्ष लाभार्थियों की यह संख्या बढ़कर 1.57 करोड़ होने की संभावना है।

संदर्भ सूची :–

1. दैनिक जागरण समाचार पत्र, दिनांक 13 जून 2013, पृ0 संख्या 06
2. दैनिक जागरण समाचार पत्र, दिनांक 14 जून 2013, पृ0 संख्या 06
3. अनाविल (ANAVIL) जुलाई–2013 पृ0 संख्या–88,89
4. पारिवारिक सम्बन्ध–पृ0 संख्या–155, 156
5. पारिवारिक सम्बन्ध–मोनिका अग्रवाल, पृ0 संख्या–141, 142
6. आहार विज्ञान एवं पोषण–डॉ0 वृन्दा सिंह, पृ0 संख्या–610, 611
7. योजना अक्टूबर 2008, पृ0 संख्या–51, 52
8- प्रभात खबर, 23 जून 2013

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Indo-Russia Relation After disintegration: A Study

Dr. Shashi Bhushan Prasad

Patna University, Patna

Abstract

This month marks the twenty-five years since the end of cold war way back in 1991 when USSR, one of the two superpowers in the international system, dissolved into fifteen new independent republics. This is considered as a landmark point in world history as US became the sole superpower in the international system, a 'hegemon' as argued by many scholars. Meanwhile, the erstwhile USSR was succeeded by a weaker Russian federation which was smaller in size, weaker in strength and fragil ..economically.

This changed the equation of alliances in the world system as countries which were earlier dependent on USSR as an ally could no longer do so as Russia lacked the capability of providing that support system which USSR used to provide. India as a long-time ally of USSR faced the same situation during this period as the other allies of USSR were facing. Since independence, if there was one country which India looked up to at the times of need, it was USSR which many referred as India's 24×7 friend .. Now, India found itself on its own in the fast changing dynamics internationally.

Keywords- USSR, Super Power International dissolved, Alliance

After the disintegration of the Soviet Union in December 1991, under the new Russian President Boris Yeltsin too continued with the policy of building close cooperation with the US and the West, there were calls for a "pragmatic renewal" of ties with India.During Yeltsin's visit to India in 1993, the Treaty of Friendship and Cooperation was signed between India and Russia.It replaced the 1971 Treaty of Peace, Friendship and Cooperation. The security clause of the earlier Treaty was abandoned while the two countries resolved to continue their peaceful and friendly relation. Another important breakthrough was the agreement on debts and Ruble-Rupee exchange rates. A Treaty on cooperation in military field was also signed and Yeltsin confirmed once again that India would receive cryogenic rocket engines despite US objections.

The Indo-Russian relations attained a new high and momentum with the signing of Declaration on Strategic Partnership during the visit of Russian President Vladimir Putin.The Indian Prime Minister Vajpayee's November 2001 visit resulted in the signing of the Declaration on International Terrorism. This declaration condemned the double standards adopted by the west on terrorism. Although Russia is not a super power any more, its significance for India cannot be underestimated. Being a permanent member of the Security Council of the UN, it has the power of veto.After 1991, India and Russia moved away in different directions in terms of their economic growth. While Russia was facing extreme economic turmoil under the newly elected Yeltsin regime, India for the first time since independence was witnessing a rapid economic boom as India had opened its doors to the world market, or as critiques argue, India was forced to open its doors for the world market by the IMF (International Monetary Fund) in the wake of its balance of payments crisis.

As a result, India saw the big-bang LPG (Liberalisation, Privatisation and Globalisation) reforms in 1991. One should remember that it was the same year when the cold war ended and USSR dissolved. So, two parallel phenomenon were taking place simultaneously in the context of Indo-Russia relations. India not only moved from the old 'socialist structures' and 'License Permit Quota Raj' to the embrace of 'liberal-capitalist' structures, but this move was also seen in India's shift from Russia ..India relations with Russia continued to slump year after year, though there was no dearth of defence and strategic engagements between the two countries at the level of governments. The dearth was in the people to people contacts which India used to share with the Soviet Union once. Now, the entire emphasis shifted to rebuild and redefine India's relations with Russia and also the fifteen new republics that came out of USSR.This is because the nature and character of Russian state was significantly different from its predecessor USSR which was visible in the economic turmoil of Russia just after independence. As a result, when Russian President Boris Yeltsin, for the first time visited India in 1993, the two countries signed agreements that signalled a new emphasis on economic cooperation in bilateral relations. As per India's former Diplomat Muchkund Dubey, "This visit was partly intended to restore the balance in .. the Russian foreign policy, which had drifted too far away from Asia towards Europe and it laid the foundation for a new relationship with India. During the visit, the problem of ensuring uninterrupted and assured supply of spare parts and equipment for the Armed Forces of India was seriously addressed and the commitment to keep up the flow of supplies was reiterated".

Indian PM Narismha Rao reciprocated Yeltsin's visit in 1994 and the focus of the visit was on bilateral goodwill and continuation of Russian arms and military equipment exports to India. The entire decade of 1990s saw the Indian economy booming with an unprecedented GDP growth while Russia's financial crisis continued till 1998 when the country was hit by Rouble crisis leading to its devaluation. 1998 was the same year when India conducted the nuclear test at Pokharan and declared itself as a nuclear power. US and

its allies like Japan and Canada put economic sanctions on India but Russia made it clear from the very outset, in contrast to the US policy that it was opposed to imposing sanctions against India. Though, in its official response to India's nuclear tests, issued by the Russian Foreign Ministry expressed "alarm and concern" and "very deep regret in Russia" over the Indian actio .. The statement urged India to reverse its nuclear policy and sign the NPT and CTBT.The year 1998 can also be seen as the start of another phase of Indo-Russia relations as this was the year when India saw a non-congress party, BJP, forming a majority government at the centre. Though, the foreign policy of a country doesn't change drastically with the change of political parties at the helm of affairs at the domestic level but still domestic constituencies play a very important role in diplomatic engagements as explained by international relations scholar Robert D Putnam in . his two level game theory.Further, as you already know, Russia is the only important world power that has consistently supported the Indian position on Kashmir and cross-border terrorism. It holds Pakistan responsible for the spread of religious extremism and terrorism in this part of the world.The most recent support for Kashmir came in the form of the joint statement issued at the end of three days visit of Prime Minister Vajpayee to Moscow in November 2003. It called upon Pakistan to prevent infiltration of terrorists across the LOC and at the other points of the border into the state of Jammu and Kashmir. It also asked Pakistan to dismantle the terrorist infrastructure in Pakistan and Pakistan-controlled territory as a condition for purposeful dialogue between the two countries.

Among the permanent members of the UN Security Council, Russia is the most prominent and unequivocal supporter of India's candidature for permanent membership in an expanded Security Council. Russia remains India's most reliable supplier of high-quality military equipment. Russia supplies more than seventy per cent of India's defence need including the state-of-the-art weapon systems and the technologies.

The major Russian defence export include fighter aircraft (such as MiG-21), main battle tanks (like T-72MI), helicopters, anti-tank missiles, anti-ship missiles, submarines, nuclear submarine (of Akula-2 class) and aircraft carrier (such as Gorskhov). In a "landmark deal" in January 2004, India agreed to buy the refurbished Admiral Gorskhov along with 12 Mig-29 fighter aircraft. The aircraft carrier will be delivered to India by 2008. Defence co-operation between India and Russian is not limited to procurement but includes production of many of these weapon systems in India (e.g. Mig-27M, Sukhoi- 30MK, T-72 tanks, etc.).It also covers areas like joint research and development and service to service co-operation. One of the most striking examples is the Indo-Russian joint endeavour to develop, manufacture and market the supersonic (flying faster than the speed of sound) Anti-Ship Cruise Missile Systems, BrahMos. India and Russia have enjoyed strong historical ties. In the present international scenario, their views of the world coincide to a large extent. This is further complemented by the mutuality of their security and economic interests.Indo-Russian

trade is the weakest link in an otherwise excellent relationship. But the economic interaction between the two countries is brightened by cooperation in new areas like energy and security. There are certain areas in which the bilateral cooperation between the two countries is looking up. Energy Cooperation is one of them. India is emerging as a large consumer of energy.Russia's oil and gas reserves and its expertise in thermal, hydropower and nuclear energy sector will be crucial in ensuring India's energy security in future. A number of thermal and hydropower projects have already been built with Soviet/ Russian collaboration.India's ambitious goals in the field of nuclear energy need Russian help since it is the only important nuclear power which is ready to co-operate with India in the atomic energy sector.

After 1991 India and Russia moved away in different directions in terms of their economic growth. India relations with Russia continued to slump year after year, though there was no dearth of defence and strategic engagements between the two countries at the level of governments.Putin in his official statement supported india's contention on Kashmir as he said that india was as much as victim of terrorism in Kashmir as Russia was in Chechnya.Russia overtly and covertly supported India many a times on the issues of Kashmir and cross border terrorism from Pakistan.

Suggested Reading:-

1. *"Bilateral Relations: India-Russia Relations". Embassy of India Moscow. 1 December 2014. Archived from the original on 27 July 2018. Retrieved 8 February 2015.*
2. *"Narendra Modi-Vladimir Putin meet: India, Russia to explore oil and gas; aim for US$ 30 bn trade". The Financial Express. 12 December 2014. Retrieved 8 February 2015.*
3. *"Russia keen to join SAARC as observer". www.oneindia.com. Retrieved 24 April 2016.*
4. 2014 World Service Poll *BBC*
5. *Bagchi, Indrani (28 June 2018). "India in top 5 friends of Russia". The Times of India. Retrieved 13 July 2018.*
6. http://www.proza.ru/2013/09/01/1095
7. Vojtech. Mastny, "The Soviet Union's Partnership with India." *Journal of Cold War Studies* 12.3 (2010): 50-90. Online
8. *Donaldson, Robert H (1972). "India: The Soviet Stake in Stability". Asian Survey. **12** (6): 475–492. doi:10.2307/2643045. JSTOR 2643045.*

9. *Laskar, Rejaul (September 2014). "Rajiv Gandhi's Diplomacy: Historic Significance and Contemporary Relevance". Extraordinary and Plenipotentiary Diplomatist. **2** (9): 47. Retrieved 8 March 2018.*
10. *"Russia a dependable partner of India: President Pranab Mukherjee". CNN-IBN. 11 May 2015. Retrieved 11 May 2015.*
11. *Vladimir Putin. "For Russia, deepening friendship with India is a top foreign policy priority". The Hindu. Retrieved 24 April 2016.*
12. Indo-Russian Inter-Governmental Commission to meet in mid-October: Russia & India Report
13. *"Russia and India: 70 years together". Times of India Blog. Retrieved 31 May 2017.*
14. *"Global Defence News and Defence Headlines - IHS Jane's 360". Retrieved 24 April 2016.*
15. *"India, facing sanctions for Russian arms deals, says it wants to pivot spending to the US". CNBC. 23 May 2019.*
16. *Abi-Habib, Maria (5 April 2018). "India Is Close to Buying a Russian Missile System, Despite U.S. Sanctions". The New York Times.*
17. बी0 एल0 फाड़ीया : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।
18. रुमकी बासु : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अवधारणाएं सिद्वांत तथा मुद्दे।
19. डॉ0 रश्मि शर्मा : भारतीय विदेश नीति।
20. डॉ0 एस0 सी0 सिंघल : भारत की विदेश नीति।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

लोक सेवकों में भ्रष्टाचार, राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं घोटाले

कुमार शम्भू शरण
सहायक व्याख्याता
लोक प्रशासन विभाग,
ई0द0भा0प्र0 सिंह महा0, गढ़नोखा
रोहतास (बिहार)

भ्रष्टाचार सभी युगों एवं समाजों में किसी–न–किसी रूप में सदैव विद्यमान रहा है, किन्तु वर्त्तमान युग में लोक प्रशासन के क्षेत्र का विलक्षण विस्तार होने के कारण भ्रष्टाचार की मात्रा एवं गति में जिस रूप में असाधारण एवं अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। जिस तरह भ्रष्टाचार का साम्राज्य पूरे प्रदेश या देश में स्थापित हो चुका है। भ्रष्टाचार की जड़ें जितनी गहरी है और जिस रूप में सर्वत्र विस्तार पा चुकी है, इसको देखते हुए यदि इक्कीसवीं शदी का भ्रष्टाचार अथवा भ्रष्टाचारियों का युग कहा जाय तो शायद कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

भ्रष्टाचार एक विशद घटना है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है और इसके बहुत सारे आयाम हैं लेकिन जनसाधारण की भाषा में जब हम भ्रष्टाचार (Corruption) को परिभाषित करना चाहते हैं तो भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट अथवा बिगड़ा हुआ आचरण है। अतः भ्रष्टाचार लोक सेवकों या जनसेवकों का ऐसा बिगड़ा हुआ व्यवहार या भ्रष्ट आचरण है, जिसकी लोक सेवकों से कदापि आशा नहीं की जा सकती है। जब कभी यदि कोई लोक सेवक अपनी शक्ति, सत्ता एवं स्थिति का प्रयोग जन सामान्य के लाभों अथवा सामाजिक लाभों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए करने लगे तो यही भ्रष्ट आचरण (Corrupt Activity) माना जायेगा और इस तरह के भ्रष्ट आचरण करने वाले लोक सेवक को भ्रष्टाचारी की संबा दी जायेगी।[1]

इतिहास साक्षी है लोक सेवकों में भ्रष्टाचार सदैव किसी–न–किसी रूप में बदलते अंदाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता रहा है। भ्रष्टाचार का स्वरूप, इसके आयाम, प्रकार और छवि, समय, काल और परिस्थितियों के हिसाब से गिरगिट की तरह अपना रंग बदलते रहे हैं। रिश्वत या घूसखोरी यद्यपि हमेशा से चलता रहा है। रिश्वत देने वाले एवं रिश्वत लेने वाले की पहचान हमेशा से होती चली आई है, लेकिन वर्त्तमान समय में रिश्वतखोरी के संबंध में इन दिनों एक अलग तरह का व्यवहार लोक सेवकों में देखने को मिलता है और वह यह है कि पहले लोग गलत कार्य कराने के लिए अथवा अनैतिक कार्य कराने के लिए अथवा अवैधानिक कार्य कराने या अनाधिकारिक कार्य के लिए रिश्वत या घूस लोक सेवकों को दिया करते थे, लेकिन आज हालात बदल गये हैं। रिश्वत का स्वरूप बदल गया है। आज जनसाधारण सही कार्य के लिए, नैतिक कार्य के लिए, नियमानुकूल तथा वैधानिक कार्यों को समय पर पूरा करने के लिए प्रशासनिक पदाधिकारी अथवा अधिकारियों अथवा लोक सेवकों या जनसेवकों को रिश्वत या घूस दिया करते हैं और इसे स्वीकार कर लिया जाता है।[1]

भ्रष्टाचार शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यह एक बहुआयामी समस्या के साथ–साथ लोक सेवकों के आचरण के संदर्भ में ज्यादातर प्रयुक्त होता है। सार्वजनिक सेवाओं में किस प्रकार के आचरण, अथवा व्यवहार को भ्रष्ट कहा जाय । बदलती परिस्थितियों एवं परिवर्तनशील संदर्भों में इसको परिभाषित करना अवश्य ही कठिन कार्य है, किन्तु कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत लोक सेवकों के निम्नांकित आचरण अथवा व्यवहार को भ्रष्ट आचरण या भ्रष्टाचार की संबा दी गयी है।

लोक कल्याणकारी राज्य में प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत लोक सेवकों की नियुक्ति सामाजिक सेवा के लिए की जाती है। सामाजिक कार्य नियमानुकूल हो और समय से पूरा हो सके, ताकि जिन उद्देश्यों को लेकर इस तरह के कार्यों का क्रियान्वयन किया जाता है, उसकी पूर्ति हो सके। लोक सेवकों के कुछ अधिकार दिये गये रहते हैं, उनको अपने उत्तरदायित्व का भी बोध होता है। अगर कोई लोक सेवक ऐसा कार्य करता है जो उसके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता है। ऐसे कार्यों को पूरा करने की उसकी जवाबदेही है फिर इस प्रकार के सामाजिक कार्यों के लिए पुरस्कार स्वरूप किसी भी प्रकार का भेंट या नजराना या रिश्वत स्वीकार करता है तो लोक सेवकों के द्वारा इस प्रकार के आचरण या व्यवहार को ही भ्रष्ट आचरण कहा जायेगा और लोक सेवक को भ्रष्टाचार में लिप्त जनसेवक या भ्रष्टाचारी कहा जायेगा। इस प्रकार स्पष्ट है अधिकारिक कार्यों के लिए किसी भी प्रकार का पुरस्कार स्वीकार किया जाना अनैतिक है। नियमों एवं कानूनी प्रावधानों के विपरीत है और ऐसा कृत्य भ्रष्टाचार क्षेत्राधीन आता है। लोक सेवकों में इस तरह की प्रवृति अक्सर देखने को मिलती है कि अपना अधिकार क्षेत्र का कार्य भी वे बिना किसी आर्थिक लाभ या रिश्वत या घूस के बिना नहीं करना चाहते हैं। भारत में इस तरह के अनैतिक कार्यों को एक तरह से सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त है क्योंकि भ्रष्टाचार के कार्यों का जनसाधारण द्वारा प्रबल विरोध नहीं किया जाता है और लोग इस बुराई को बड़ी सहजता से झेलने को आदि हो गये हैं। भ्रष्टाचार का यह स्वरूप इतना विस्तार पा चुका है कि आम जन इसे अब प्रक्रिया का ही एक अंग मानने लगे हैं।

अवैध तरीके से प्राप्त किया गया कोई वस्तु या आर्थिक लाभ या सम्पत्ति भ्रष्टाचार के क्षेत्र के अधीन आता है। अगर किसी लोक सेवक अथवा जनसेवक अथवा प्रशासनिक पदाधिकारी द्वारा अपने दायित्वों के सम्पादन के बदले कोई गिफ्ट या उपहार स्वीकार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अगर जनसेवक को कहीं से कोई आर्थिक लाभ या सम्पति प्राप्त होती है तो इसे भी भ्रष्टाचार की संबा दी जायेगी। अगर कोई लोक सेवक अपने पदाधिकारी से अनैतिक रूप से पदोन्नति पाकर आर्थिक लाभ लेने लगता है तब भी इस तरह के भ्रष्ट आचरण को भ्रष्टाचार ही कहा जायेगा।

लोक सेवकों द्वारा सामाजिक सम्पति या सार्वजनिक सम्पति का दुरूपयोग करना भी भ्रष्ट आचरण की सीमा के अंतर्गत आता है और ऐसे कार्यों को नियमों के विरूद्ध समझा जाता है। वर्त्तमान समय में अक्सर ऐसा देखने को मिलता है कि प्रशासनिक पदाधिकारियों को आवंटित आवास में उनके निकट संबंधी रहते हैं अथवा आवास के कुछ हिस्सों को किराये पर लगा दिया जाता है। सार्वजनिक कार्यों के लिए मिले वाहनों का निजी कार्य में प्रयोग में लाना आम बात हो गई है। लोक सेवकों द्वारा किये जाने वाले इस तरह के व्यवहार अथवा आचरण को भी भ्रष्टाचार के सीमाक्षेत्र के अंतर्गत माना जाता है।

प्रशासनिक पदाधिकारियों या लोक सेवको को अपनी आय एवं संपति का विवरण विभाग को देना होता है। अगर लोक सेवकों द्वारा आय के ज्ञात साधनों की तुलना में अधिक संपति या आर्थिक संसाधन जुटा लिया जाता है तो इससे लोक सेवक की भ्रष्ट आचरण का संकेत मिलता है। लोक सेवकों या प्रशासनिक पदाधिकारियों के घर जब भी छापे पड़ते हैं तो अक्सर ऐसा अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि आप के ज्ञात संसाधनों की तुलना में अमुक पदाधिकारी या अधिकारी या लोक सेवक के

यहाँ अधिक अघोषित संपति का विवरण मिलता है। इसके धन या संपति या आर्थिक संसाधनों का अधिक पाया जाना अनैतिक अथवा गैरकानूनी ढ़ंग से प्राप्त किया गया धन होता है। ऐसे कृत्यों को भी भ्रष्टाचार की संबा दी जाती है।

लोक सेवकों के कार्याधिकार क्षेत्र समिति होते हैं। अगर किसी अधिकारी द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र का दुरूपयोग किया जाता है अर्थात् जो कार्य अधिकारी या लोक सेवक के अधिकार क्षेत्र में आता है। ऐसे कार्यों को अगर कोई पदाधिकारी रिश्वत या भेंट स्वीकार किये बिना नहीं करता है या क्षेत्राधिकार कार्यों के लिए घूस या रिश्वत या कोई आर्थिक लाभ स्वीकार करता है तो इस तरह का आचरण या व्यवहार अनैतिक अथवा नियम एवं कानूनों के विरूद्ध समझा जायेगा और ऐसे पदाधिकारियों या लोक सेवकों को भ्रष्ट लोक सेवक कहा जायेगा। लोक सेवकों में इस तरह के अनैतिक कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है और अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत किये जाने वाले कार्यों के लिए रिश्वत स्वीकार करना प्रचलन में बहुत ज्यादा है। भ्रष्टाचार का यह स्वरूप इतना विकसित हो गया है और इतना विस्तार पा चुका है कि शायद ही कोई पदाधिकारी या लोक सेवक ऐसा होगा जो सही कार्यों के लिए और अपने जवाबदेही वाले कार्यों के लिए आम जनों से या किसी और से रिश्वत या आर्थिक लाभ न स्वीकार करता है। इस तरह के आचरण को अब तो सामाजिक मान्यता भी मिल चुकी है। लोगों को अब रिश्वत देने में कोई असहजता महसूस नहीं होती है। क्योंकि उन्हें पता है कि रिश्वत न देने की स्थिति में उनका कार्य फाईलों में दबा रहेगा।

सरकारी व्यवहार से संबंधित किसी व्यक्ति से कीमती वस्तु खरीदने के लिए यह मानते हुए कि उधार लिया गया धन वापस नहीं करना है, भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। इस तरह का व्यक्ति जो सामाजिक कार्यों को लेकर कार्यालय से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए भवन निर्माण का कोई ठेकेदार जिसका कार्यालय आना जाना लगा रहता है ऐसे व्यक्ति से कोई पदाधिकारी या प्रशासनिक पदाधिकारी उधार लेने की पेशकश करता है। वह पदाधिकारी इस सोच के साथ उधार लेता है कि उधार के रूप में ली गयी धनराशि को लौटाना नहीं पड़ेगा। लोक सेवकों द्वारा व्यवहार में लाए गए ऐसे आचरण को भ्रष्ट आचरण (Corrupt Activity) माना जाएगा क्योंकि इस प्रकार के कार्य अनैतिक एवं बिगड़े हुए आचरण का प्रतीक है।

अगर कोई प्रशासनिक पदाधिकारी अथवा लोक अधिकारी अपने किसी निकट संबंधी या नातेदार या रिश्तेदार से कोई भेंट या उपहार स्वीकार करता है तो यह भी भ्रष्ट आचरण का प्रतीक माना जायेगा। क्योंकि इस प्रकार के अनैतिक कार्यों में इस बात की ज्यादा संभावना रहती है कि उच्च पद पर आसीन पदाधिकारी अथवा लोक अधिकारी द्वारा उसके निकट संबंधी को अनैतिक रूप से आर्थिक लाभ पहुँचाया जाएगा। इस तरह के कृत्यों से भ्रष्टाचार की घटनाओं को बढ़ावा मिलता है और समाज की अत्यधिक हानि होती है।

पदाधिकारियों अथवा अधिकारियों अथवा लोक सेवकों द्वारा जान बुझकर नियमों की अनदेखी करना या नियमों के विरूद्ध कार्य करने में किसी की सहायता करना अथवा भ्रष्ट आचरण में लिप्त व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करना भी भ्रष्टाचार के दायरे में आता है। उदाहरण स्वरूप करों आदि के भुगतान करने से बचने में आमजनों का, आम नागरिकों या करदाताओं की मदद करना भी भ्रष्टाचार का ही रूप है। बड़े व्यापारिक घरानों एवं व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की पदाधिकारियों द्वारा समुचित करों की राशि से बचने में उनकी मदद करना भ्रष्ट आचरण का ही प्रतीक है। आयकर अधिकारियों में इस तरह की प्रवति का पाया जाना भ्रष्ट आचरण का दोषी समझा जाता है।

यद्यपि आयकर की चोरी को कम करने के लिए कई प्रकार के उपाय किये गये हैं और कर बचाने के लिए नये–नये प्रयोग भी किये जा रहे हैं, लेकिन कर अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मदद से कर चोरी की घटनाओं को अंजाम दिया जाना आम बात हो गयी है। व्यापारियों और औद्योगिक इकाईयों में कर बचाने की शिकायतें ज्यादा मात्रा में देखी जाती है। रिश्वत या आर्थिक लाभ देने की कीमत बड़े–बड़े व्यापारी एवं औद्योगिक घराने इस तरह की अनैतिक कार्यों में अधिकांश रूप में लगे हुए पाये जाते हैं। करों से प्राप्त आय का सामाजिक कार्यों या लोक कल्याण के कार्यों में उपयोग किया जाता है। इस प्रकार कर चोरी से सार्वजनिक सेवाओं को ज्यादा नुकशान होता है।

किसी बहाने से किसी कर्त्तव्य को करने से इंकार करना जिससे दूसरों का फायदा होता है। जैसे अपराधी की मदद की नियत से पुलिस अधिकारी का किसी मामले को पंजीकृत न करना भ्रष्ट आचरण या भ्रष्ट व्यवहार या भ्रष्टाचार की परिधि में आता है।

अत में कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार अनेको रूपों में सभी युगों में समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. दैनिक जागरण (आलेख) 14 जनवरी 2014
2. आर0 आहुजा : सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृष्ठ–440
3. आर0 आहुजा : सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृष्ठ–441
4. आर0 आहुजा : सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृष्ठ–441
5. प्रतियोगिता दर्पण : अतिरिक्तांक 2012, पृष्ठ–309
6. प्रतियोगिता दर्पण : अतिरिक्तांक 2013, पृष्ठ–330
7. प्रतियोगिता दर्पण : अतिरिक्तांक 2013, लोक प्रशासन, पृष्ठ–338

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

ARSENIC TOXICITY IN THE FOOD CHAIN IN THE FLUVIAL PALINS OF BIHAR : IT'S SOCIO-ECONOMIC IMPLICATION

PRAKASH KUMAR PASWAN
UGC Net

Over the past two or three decades occurrence of high concentrations of aresenic in drinking - water has been recognized as a major publi-health concern in several parts of the world. There have been a few review works covering the arsenic contamination scenario around the world. With the discovery of newer sites in the recent past the arsenic-contamination scenario around the world especially in Asian countries has changed considerably. Before 2000 there were five major incidents of arsenic contamination in ground water in Asian countries delta Bangladesh State west Bengal in India and sites in china.

In India Arsenic contaminated ground water sources have now been found in the new alluvium deposits in an area between the Himalayan Foothills-"Terai"-in the north and the plateau fringe in the south and in the Bengal delta plain. In a preliminary study in West Bengal, 96000 people, including children were examined in seven of the nine affected district; 10,000 had been registered with arsenical skin lesions. At least 100 cancer and a few hundred suspected Bowen's disease cases were detected from some 30,000 biological samples analyzed from the arsenic-affected villages, an average of 85% contained arsenic above the normal levels. Thuss many people in the susceptible villages of west Bengal may be sub-clinically affected.

Children are more susceptible to arsenic toxicity. About 90% of children aged less than 11 years, living in arsenic affected villages showed elevated levels of arsenic in hair and nails. Infants and children might be at greater risk from arsenic toxicity due to higher water consumption on a body-weight basis. Peripheral neuropathy was the predominant neurological complicaton in patients affecting 154 (34.3%) of 413 patients in Murshidabad and Nadia district and 33 (86.8%) of 38 patients in Bardhaman of West Bengal (67.68%). In arsenic-affected areas, our calculations showed that a huga amount of arsenic is being deposited on agricultural land irrigated with water from arsenic-contaminated tube wells. A preliminary study showed the presence of elevated levels of inorganic in rice and vegatables.

A socioeconomic study in arsenic-affected villages indicated that villagers were living in very poor conditions. Researchers at the school of Environmental studies (SOES) Jadavpur University India have observed from their last 18 years's field experience in west Bengal that poor people with poor nutrition have been suffering more. Arsenic affected people have also been facing serious social problems. Sometimes the villagers force the arsenic-affected patient to maintain an isolated life or avoid him socially wherever possible. According to our latest estimates following about three years of intensive research efforts in the region 39.02% 9,597 samples analyzed contained arsenic>10ug/I and 23% contained 50>ug/I. Of 4,513 persons screened for arsenical skin lesions, 525 (5.5%) were registered with skin lesions.

A major pathway of As uptake by humans is by drinking water (WHO,2003). During the last decade an enormous volume of data accumulated which document the distribution of As in thousand of wells used for drinking water in the BDP. However groundwater is also intensively used for the irrigation of rice and wheat fields, which are the main crops cultivated in the area. In order ease nourishment problems in this densely populated area an agricultural development program (the "Green Revolution") backed by intensive irrigation was launched in the sixties by the governments of the respective countries. Several authors postulate a causal link between this massive interference in the groundwater management and the incidence of the high as concentrations in the groundwater of the BDP, though this presumption in met with some criticism. The volume of water used for the irrigation of specific crops varies considerably depending not only on climatic factors but also on the permeability of soil. The water demand of rice is particularly high; the volume of water used for irrigation of Boro rice in the indo-Gangetic plain are in the range between 1000 and 1800 mm/a. though the potential risk is evident studies on the impact of irrigation with high As groundwater on soil and crops has attarcted some attention only during the last two years. Until recently research and remediation focused almost exclusively on drinking water. Key links between arsenic and agriculture specifically irrigated land and crops, had been largely overlooked. "Arsenic in irrigation water poses a potential threat to soils and crops, the food chain generally, and consequently to human health," says CIMMYT agronomist Craig Meisner."on average, a Bangladeshi adult drinks about 4 to 5 liters of water a day and consumes about 450 grams of rice. Assuming 200 ppb arsenic in the drinking water and about 0.5 milligrams per kilogram in rice grain, the total daily intake of arsenic would be around 1.2 milligrams, which may not be safe. "The problem as it relates to the food chain and Human health Is multifacted. According to CIMMYT affiliate scientist G.M Panaullah, "There are questions about how much arsenic is actually abosorbed by the plant, and them how much of that is taken into the grain and straw under diverse condition and farm management systems. Then, arsenic in the grain actually pose a health hazard, and if so, at what levels and under what conditions ? Consider also that the straw is fed to animals and burned as fuel. Will people be affected by drinking the milk or eating the meat of those animals? Will the smoke from a straw-fueled fire prove harmful ?"

Bihar is already noted for arsenic contaminated aquifers in as many as 18 districts. The agro-based economy of Bihar heavily relies on its ground whater irrigation schemes, inspire of having abundant surface water sources. Bihar is witnessing a steady increase of arsenic poisoning symptoms among its rural inhabitants that is indicative that apart from arsenic contaminated drinking water sources there are other routes through which this metalloid is gaining access to the human body, namely the agricultural products grown in the arsenic hotspots.

References :

Chatterjee, D., Halder, D., Majumder, S., Biswas, A., Bhattacharya, P., Bhowmick,S.,Mukherjee-Goswami, A., Saha D., Maity, P.B., Chatterjee, D., Nath, B., Mukherjee, A., Bundschuh, J. Assessment of arsenic esposure from groundwater and rice in Bengal Delta Region, West Bengal, India Water Research (2010), doi:10.1016/j.watres.2010.04.007

Mondal, D. and Polya, D.A. (2008), Rice is a mojor exposure route for arsenic in chakdaha bock, Nadia district, west Bengal, India : A probabilistic risk assessment:Applied Geochemistry 23,2987-2998.

Patel, K.S. Shrivas K, Brandt, R.,.. Jakubowski2, corns, W and Hoffmann, P (2005) Arsenic contamination in water, soil, sediment and rice of the central India, Environmental Geohemistry and Health (2005) 27:131-145_ Springer 2005 DOI:10.1007/s10653-005-0120-9.

Signes, A., Mitra K., Burlo, F, and Carbonell-Barrachina, A.A. (2008)' Effect of cooking method and rice type on Arsenic concentration in cooked rice and the estimation of arsenic dietary intake in a rural village in West, Bengal, India', Food Additives & Contaminats: Part A', 25:11,1345-1352.

Norton, G.J., islam, M.R., Duan, G., Lei, M., Zhu, Y,. Deacon, C.M., Moran, A.C., Islam, S.and Meharg, A.A. (2010), Arsenic Shoot-Grain Relationships in Fdield Grown Rice Cultivars: Environ. Sci. Technol. (American Chemical Society) 44,1471,1477.

Sengupta, M.K. Hossain, M.A Mukherjee, A., Ahamed, S., Das, B.Nayak, B.Pal, A., & Chakraborti, D. (2006) Arsenic burden of cooked rice: traditional and modern method: Food and chemical Toxicology 44,1823-1829

Noorra., S. Berner, Z.A., Agarwala, P., Wagner, F., Chandrasekharam, D., and Stuben D. (2005), Impact of irrigation with as rich groundwater on soil and crops:A geochemical case study 9in west Bengal delta plain, India: Applied Geochemistry 20(2005) 1890-1906.

Roychoydhury, t. (2008), impact of sedimentary arsenic through irrigated groundwater on soil, plant, crops and juman continuum from Bengal delta: Special reference to raw and cooked rice: Food and Chemical Toxicology 46 (2008) 2856-2864.

Liao*, C.M., LIN,T., Nan-Hung, W., and W. (2010), Assessing the arsenic contaminated rice (Oryza satival) associated children skin lesions: journal of Hazardous Materials 176 (2010) 239-251.

Dwivedi, S., Tripathi, R.D., Srivastav, S., Singh, R., Kumar, A., Tripathi, p., and dave, R.Arsenic affects mineral nutrients in grains of varous Indian rice (Oryza sativaL.) genotypes grown on arsenic-contaminated soils of west Bengal: Protoplasma, DOI 10.1007/s00709-010-0151-7(Springer-Verlag online publication)

Kyong-woong, K., Bang, S.Zhu, Y., Meharg, Bhattacharya, P.(2009), Arsenic Geochemistry, transport mechanism in the soil-plant system, Humanand animal health issues: Environment international 35 (2009) 453-454.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

The Political Allegory in Salman Rushdie's *Haroun and the Sea of Stories* : A Post-Colonial Analysis

Md. Chamsul Alom Sorowarthy
Asst. Prof. Dept. of English
Luitparia College, Barpeta (Assam)

The present paper proposes to discuss, somewhat sketchily though, Salman Rushdie's avowedly children's stuff ***Haroun and the Sea of Stories*** (1990), written during his hibernation post Ayatollah Khomeini's death *fatwa* against the author, as post-colonial discourse about the connections between gender and identity, popular culture and identity, space and identity, and language and identity.

Rushdie's examination of gender identities as not something given and immutable but as a socially constructed discourse, engineered to exploit and control can be seen in this collection of short stories. Ultimately his novels advocate the need to break free from rigid gender definitions and explore a more all-inclusive, non-coercive, androgynous identity.

Gender is one of the most basic ways by which human identity is defined. By gender one does not simply imply the sex one is born into but the way in which gender is constructed in a particular socio-temporal matrix. In almost all societies of the world, in almost all known periods of time, the greatest number of stereotypes has gone on to shape gender discourses with the overt or covert motive to restrict, control or exploit. It is significant that in most societies, the woman is constructed as inferior, irrational, unpredictable and ultimately 'unnatural'. She must therefore, be 'naturally' subordinated to the biologically 'superior' male who is 'rational', 'responsible' and 'normal'.

In the imperial context, the colonizers utilized the very same discourses of gender hierarchy to authenticate power hierarchies. As Ashis Nandy tells us in his ***Intimate Enemy: Loss and Recovery of Self under Colonialism (1983)***, the colonized native man was frequently defined as 'feminine', 'immature', 'irrational' and hence, 'naturally' inferior to his European master who was 'masculine', 'responsible' and 'rational'. This feminization of the colonial subject to authenticate colonial rule as 'natural', 'given' and 'just' has been the subject of many later studies.

The Satanic Verses is a more sustained examination of how gender identities are mutated in the diasporic context. In the figures of Hind and Muhammad Sufyian, the Bangladeshi couple who have settled in London, Rushdie examines the changing profile of

gender relations in a diasporic context. While back home, Muhammad was the obvious superior in the family hierarchy, in London, Hind's superiority as a money earner as a successful restaurateur gives her an upper hand in the family.

Haroun and the Sea of Stories is essentially a children's adventure story but it does contain some references to gender as a socially constructed discourse in the figure of the page Blabbermouth, who like Viola in ***Twelfth Night***, assumes the disguise of a boy. When exposed in Haroun's presence, she retorts:

You think it is easy for a girl to get job like this? Don't you know girls have to fool people every day of their lives if they have to get anywhere? You probably had your whole life handed to you out on a plate […] but some of us have to fight (Haroun 107).

Women have to assume several disguises throughout their lives, to adjust, to compromise, to metamorphose, simply to exist, all because they have been born in the wrong gender.

Both fatherhood and motherhood are problematized in Haroun. Haroun's father loses his capacity to write or tell stories with the departure of his wife and he is, in a symbolic sense, castrated. He is typical of male figures in Rushdie's novels that are often emasculated and ineffectual, abandoning or reversing their socially sanctioned roles as the omnipotent and omniscient father. Similarly, Soraya is one of the many problematic mother figures who subvert their socially sanctioned role of nurturer and appear as castrating, threatening figures.

Rushdie's engagement with popular cultural forms such as Hollywood blockbusters, television-serials, best-sellers, gossip magazines, pop-music, and advertising jingles in general, and forms such as popular Hindi films, and cricket matches, in particular, as sites where postcolonial identities are examined, contested and constituted, is the subject of my third chapter.

O, my shoes are Japanese

These trousers English, if you please

On my head red Russian hat;

My heart is Indian for all that (***Satanic Verses*** 5)

Frederic Jameson notes, that one of the important contributions of postmodernism has been, "the effacement of some key boundaries or separations, most notably the erosion of the older distinction between high culture and so-called mass or popular culture" (Jameson, ***Postmodernism and Consumer Society*** 165). Significantly, postmodernism as a movement, evolved in the late sixties, as a reaction against the modernist valorization of high or elite culture. Andy Warhol's depiction of Coca-Cola bottles or Robert Venturi's attack on purist styles of architecture[1] marked the beginning of a new mode of expression which did not shy away from using the common, popular or everyday in art. In the sphere by the novel, there emerged writers who were "fascinated precisely by that whole landscape of advertising and

motels, of the Las Vegas strip, of the late show and Grade – B Hollywood film, of so-called paraliterature with its airport paperback categories, of the gothic and the romance, the popular biography, the murder mystery and the science fiction or fantasy novel" (Jameson, ***Postmodernism*** 165)

Rushdie definitely belongs to the tradition of postmodernist writing where "the line between high art and commercial forms seems increasingly difficult to follow" (Jameson 165).

Haroun and the Sea of Stories makes intertextual use of the Hollywood blockbuster ***The Wizard of Oz***. It also unabashedly draws upon an extremely popular Bengali fantasy film *Goopye Gayne Bagha Byne* by Satyajit Ray. ***The Moor's Last Sigh*** refers to and makes paradigmatic use of two, major Bollywood 'hits' from two different ears, Mehboob's ***Mother India*** in the fifties and Boney Kapoor's ***Mr. India*** in the eighties. The novel also makes use of real film stars like Nargis and Sunil Dutt, who mingle with fictional characters and create a startling effect.

A second thread of culture-as-domination is to be found in the analysis of media as a culture industry. According to Stuart Hall, categories like high, low or elite, are not static and must be understood in relation to one another :

From period to period, the contents of each category changes. Popular forms become enhanced in cultural value, go up the cultural escalator – and find themselves on the opposite side. Other things cease to have high cultural value and are appropriated into the popular, becoming transformed in the process. (Hall, "***Notes on Deconstructing the popular***" 234).

Instead of rejecting popular forms such as Hindi cinema, as infantile and banal, an anarchic *bricolage* of unrelated 'items,' which Indian middle-class intellectuals frequently do[2] or simply identifying popular Hindi cinema as instrument of hegemonic control[3], Rushdie's novels celebrate such cinema as a site, where national desires are expressed, secret fantasies played out. As can be seen in the following lines of Rushdie :

*At Cambridge I built myself a putty nose extension for a part in an Ionesco play, but on the first night, bending over a lady's hand. I squished my fake hooter sideways and looked more like the Elephant man than I would have liked (**Step Across This Line** 108).*

Cinema, theatre, television and all performing arts become sites where unflattering stereotypes of immigrant identity are constructed and sold, ironically enough, with the help of masquerading immigrants who try desperately to fit within acceptable stereotypes. Though ***Haroun*** does not explore any popular cinema within its fictional space, it uses a very popular Hollywood movie as its intertext, to explore questions of the child's identity vis-a-vis the adult one. Rushdie has repeatedly admitted that ***Haroun and the Sea of Stories*** was inspired by one of the greatest Hollywood 'hits' of all times:

*But of all movies, the one that helped me the most as I tried to find the right voice for Haroun was **The Wizard of Oz**. the film's influence is there in the text, plain to see. In*

*Haroun's companions there are clear echoes of the friends who danced with Dorothy down the Yellow Brick road (**Step Across This Line** 12).*

The character of Khattam Shud who appears terrible and omnipotent but is actually an exceedingly ordinary, clerk-like figure is a direct take-off on the final scenes of the movie, where the Wizard is exposed as a humbug. Haroun is important because it uses ***The Wizard*** to subvert the accepted discourse of the child as 'less competent', 'disadvantaged' or 'inferior' to the adult. Haroun's ability to liberate his father and the people of Gup from the limiting and restrictive identities imposed upon them by unimaginative adults like Khattam Shud and Mr. Sengupta who say "What's the use of stories that aren't even true?" (***Haroun*** 20) find its parallel in ***The Wizard***, where Dorothy and her friends manage to liberate themselves from the restrictive definitions (like, the 'Lion is cowardly', 'the Tin man has no heart', etc.), imposed on them by an over-rational and unimaginative society, and forge new, enabling identities without adult help. The second line of the acroustic dedication to ***Haroun*** holds the key to our understanding of the novel and the film "All our dream-worlds may come true" (***Haroun*** n.pag).

Finally, it must be noted that in Rushdie's novels, the idea of plural identities and mongrel selves, is foregrounded by literally pluralizing space. ***Haroun and the Sea of Stories*** goes even further to foreground "mood lands", where the very shape, colour and dimension of the land changes with the mood of its inhabitants. ***The Moor's Last Sigh*** imposes the spectral space of Alhambra, the fortress of the Moorish king Boabdil of Spain, upon the postcolonial Bombay, and the Ground Beneath her Feet brings together many Bombays from primitive to modern times.

Finally, it must be noted that for the migrant, the diasporic subject, all notions of 'home', 'nation' and 'belonging' are problematic and therefore all spaces he occupies are imaginary. As Rushdie notes in his essay entitled "Location of Brazil," "migrants must of necessity, make a new imaginative relationship with the world, because of loss of familiar habitats" (***Imaginary Homelands*** 125). As he is not assimilated in his place of stay, nor accepted in the place he has left, he constructs an imaginary and utopian homeland where he roots himself. What Rushdie claims for India could very well apply to all such spaces:

"It may be that […] exiles and emigrants or expatriates, are haunted by some sense of loss, some urge to reclaim, […] But if we do look back, we must do so in the knowledge […] that we will in short, create fictions, not actual cities or villages, but invisible ones, imaginary homelands, Indias of the mind." (***Imaginary Homelands*** 10).

*For the demography of the new internationalism is the history of postcolonial migration, the narratives of cultural and political diaspora, the major social displacements of peasant and aboriginal communities, the poetics of exile, the grim prose of political and economic refugees.(*Bhabha, ***Location*** *5)*

Since the postcolonial condition may be primarily defined by its experience of loss, sense of displacement, and paradoxical ability to inhabit multiple spaces, simultaneously, one may examine how spatial constructs like nation, city or country constitute identity.

Using the concept 'worlding,' to describe the imperial process of appropriating and locating colonial space as secondary and inferior to the European world, Spivak notes that:

If […] we concentrated on documenting and theorizing the itinerary of the consolidation of Europe as sovereign subject, indeed, sovereign and subject, then we would produce an alternative historical narrative of the 'worlding' of what is today called 'the Third World' ***(***Spivak***, The Rani of Sirmur" 128).***

It is important to note that, the superiority of European spaces, and by association, culture and, identities could only be achieved by a paradoxical demonizing of colonized lands.

A nation is the same people living in the same place […] Or also in different places (Joyce ***Ulysses*** 317)

On a fundamental level, human identity is constituted by the space it inhabits and the nation state is perhaps the most common and accepted way of defining identity. According to Rushdie, however, such definitions are neither simple nor easy, in the condition of postcoloniality. On the one hand Rushdie critiques the discourse of the nation-state (and hence identities associated with it) as "derivative"[4]. Colonial masters have imposed the fictitious/dangerous concept of a homogenous and aggressive scrambled structures of postcolonial counties. On the other hand Rushdie resists the devious schemes of indigenous elite to replicate colonial modes of control by imagining nations (now formerly independent), and identities affiliated to them, on lines of religious, linguistic, racial, or gender homogeneity.

Rushdie's importance in forging a postcolonial identity, problematically bilingual and bicultural, occupying the interstices of existence, through the creation of a unique language, cannot be overemphasized and therefore demands careful examination in this chapter. In the process of examining Rushdie's texts, I hope to establish how the politics of language lies at the heart of postcolonial identity formation.

Historically speaking, language has always played a major role in establishing and sustaining empires. More than the physical or economic subjugation of a race, the colonial process can be said to be complete when the colonizer has succeeded in imposing his language, and through it, his culture, displacing and devaluing the indigenous one. In the essay entitled "The Language of African Literature" Ngugi Thiong'o expresses the anguish of the colonized subject appropriately:

In my view language was the most important vehicle through which that power fascinated and held the soul of the prisoner. The bullet was the means of the physical subjugation. Language was the means of the spiritual subjection (Thiong'o 437)

No one expresses the trauma of linguistic subjection and loss of identity better than Frantz Fanon:

To speak means to be in a position to use a certain syntax, to grasp the morphology of this or that language, but it means above all to assume a culture, to support the weight of a

civilization […] Every colonized people – in other words, every people in whose soul an inferiority complex has been created by death and burial of its local cultural originality – finds itself face to face with the language of the civilizing nation […] (Fanon, ***Black Skin*** 17-18).

The importance of language in the forging of identity cannot be overemphasized in ***Haroun and the Sea of Stories***. At the centre of the design is a language magician called Rashid Khalifa, who makes a living by telling stories. He is nicknamed by his admires, the *Ocean of Notions* and by his rivals, the *Shah of Blah*. Rashid's identity as an energetic, fulfilled and happy man is predicated upon his ability to make magical use of language. Then in the midst of such happiness comes a villain, not of the mustachioed, yellow check-panted quality (***Haroun*** 26), but a mean, stingy, sticky-thin, whiny-voiced Mr. Sengupta, who asks; "what's the use of stories that aren't even true?" (***Haroun*** 20). With this one question, he effectively deconstructs Rashid Khalifa's identity, his beliefs in the magical powers of language. In fact, Rashid not only loses his story-telling skills but, literally, all linguistic abilities. All that comes from his throat, when he is asked to perform, is a crow-like sound, 'ark'. Mr. Sengupta also manages to convince Soraya, Rashid's wife, that stories are make-believe, as a result of which she leaves Rashid and her home, convinced that no good can come from associating with a man who is not serious and silent. This is a direct attack against the power of language and its mystical potential. It is now up to Rashid's son, Haroun Khalifa, to redeem his faher's linguistic abilities, and restore the glory of language, the infinitely varied and magical modes of human expression. But Haroun soon realizes that his father, and for that matter, the entire moon named Kahani (or stories) containing the very City of Gup (literally 'the city of words'), is endangered by the menacing figure of Khattam Shud (literally meaning, finished and done over with). Khattam Shud is described as the "Arch-Enemy of all stories, even of Language itself. He is the Prince of Silence and the Foe of Speech" (Haroun 79). As Rashid Khalifa later notes: "In old days the Cultmaster, Khattanm Shud preached hatred only towards stories and fancies and dreams; but now he has become more severe, and opposes Speech for any reason at all" (***Haroun*** 101). In a memorable encounter between Khattam Shud and Haroun Khalipha, Khattam Shud asks the very same question which Mr. Sengupta had asked not very long ago: "What's the use of stories that aren't even true? (***Haroun*** 155). In his inimitable manner, Khattam Shud admits the infinitely polyphonic and thus subversive potential of language. As Khattam Shud notes, all stories, and by implication, all languages must be throttled because "inside every single story, inside every Stream in the Ocean, there lies a world, a strory-world, that I cannot Rule at all" (***Haroun*** 161).

This idea about the director being perennially anxious about any creative expression and ultimately about language itself, compels the reader to look at Bakhtin's definition of language as inherently hetroglossic and potentially subversive. In ***The Dialogic Imagination***, Bakhtin shows how every word may have an infinite variety of meanings, though there is a constant attempt to tie down the word to a single connotation:

The word, directed towards its object, enters a dialogically agitated and tension-filled environment of alien words, value judgments and accents, weaves in and out of complex interrelationships, merges with some, recoils from others, intersects with yet a third group: and all this may critically shape discourse, may leave a trace in all its semantic layers, may complicate its expression and influence its entire stylistic profile (Bakhtin 276).

It is because language and thus fiction has potentially subversive qualities that Rushdie's dictators are the strong silent types, imposing censorship on all kinds of artistic expression. One of the associations of the name 'Grimus' is grimness, the absence of speech and laughter. Raza Hyder imposes a ban on all television programmes except state-controlled theological lecture (***Shame***) and Khattam Shud plans to sew up Princess Batcheat's lips and to offer her as a 'mute' sacrifice to the idol Bezaban (literally 'the silent one') in ***Haroun***. Raman Fielding plots to throttle Aurora and censor her art (***The Moor's Last Sigh***). Ultimately then, dictators know that stories are important and do have real life consequences and, that though factually incorrect, they are conceptually true. All artists in Rushdie's novels are an endangered species because they all have ability to use language in a magical manner and, by using it, to make a thought come true. Rashid's recital of the story of the defeat of Khattam Shud to the people of Dull Lake results in a mass uprising against Buttoo, the local dictator, and the latter's ouster from power. Thus stories have real-life consequences.

Thus, one may say that Salman Rushdie's explicitly children's literature as ***Haroun and the Sea of Stories*** seems to be, is at best an allegory not only at personal level but also about national and international politics of freedom of life and liberty, of creative self-expression, of sovereign development, of democracy and social progress. Hence, ***Haroun and the Sea of Stories*** is Rushdie's answer to Imam Khomeini and his other tormentors. He may have in reality apologized to the Muslims for hurting their feelings but in his heart of hearts one can see him feeling that he had every right to write what he did. The book is delightful children's story on the one level (as Rushdie acknowledgedly wrote the book on the express wish of his young son to write some interesting stories for children) but on the other it is the story of his forced imprisonment in an unknown place and the silence imposed on him by the 'sentence of the death' or the *fatwa* issued by Ayatollah Khomeini. In the book Khomeini is none else but Khattam Shud who is the arch enemy not only of stories and speech but of the very faculty of creativity and freedom.

References

1. Cf. Strinati's ***An Introduction to Theories of Popular Culture*** (London: Routledge, 1995)
2. Refer to Chidananda Dasgupta's ***The Painted Face: Studies in India's Popular Cinema*** (New Delhi: Orient Longman, 1981) for an example of the middle class intelligentsia's dismissive attitude towards popular Hindi cinema.

3. See, M. Madhava Prasad's ***Idelogy of Hindi Films : A Historical Reconstruction*** (New Delhi:OUP, 1998) for analyses of the hegemonic intentions of mainstream Hindi cinema.
4. Partha Chatterjee has made this phrase famous using it as a subtitle of his book ***Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse?*** (New Delhi:OUP, 1999)

Works Cited

5. Bakhtin, Mikhail. ***The Dialogic Imagination: Four Essays***. Trans. Emerson and Holquist. Austin, Texas: University of Texas Press, 1981.
6. Bhabha, Homi. Ed. ***The Location of Culture***. London:Routledge, 1994.
7. Fanon, Franz. ***Black Skin, White Masks***. Trans. C. Markmann New York: Grove Press, 1967.
8. Hall, Stuart. "Notes on Deconstructing the Popular." ***People's History and Socialist Theory***. Ed. Samuel. London: Routledge, 1981.
9. Jemeson, Frederic. "Postmodernism and the Consumer Society." ***Modernism /Postmodernism***. Ed. Peter Brooker. London and New York: Longman, 1992, 163-179.
10. Joyce, James. ***Ulysses***. 1922. Oxford: Oxford University Press, 1993.
11. Nandy, Ashis, ***The Intimate Enemy: Loss and Recovery of Self Under Colonialism***. Delhi: Oxford University Press, 1983.
12. Rushdie, Salman. ***Haroun and the Sea of Stories***. 1990. London: Granta Books, 1991.
13. ***Imaginary Homelands: Essays and Criticism 1981-1991***. London: Granta Books, 1991.
14. ***Shame***. 1983. London: Vintage, 1995.
15. ***Step Across This Line: Collected Non-Fiction. 1992-2002***. London: Jonathan Cape, 2002.
16. ***The Moor's Last Sigh***. London: Vintage, 1995.
17. ***The Satanic Verses***. 1988. Delaware: The Consortium Inc. 1992.
18. Shakespeare, William. "***Twelfth Night; Or What You Will***." 1600. Lines - 299-323.
19. Spivak, Gayatri, Chakravarty. "The Rani of Sirmur." Eds. Francis Barker *et al.* ***Europe and its Others. Colchester***: University of Essex, 1984.
20. Thiong'o, Ngugi wa. "The Language of African Literature." ***Colonial Discourse and Post-Colonial Theory: A Reader***. Eds. Williams and Chrisman. New York: Columbia University Press, 1994. Lines – 435-455.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

गुरु नानक के काव्य में दार्शनिक चिंतन

प्रियंका मिश्रा
शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरु नानक देव का भारतीय धर्म संस्थापकों एवं समाज–सुधारकों में गौरवपूर्ण स्थान है। मध्ययुग के संत कवियों में उनकी विशिष्ट और निराली परम्परा है। वह उस धर्म के संस्थापक हैं, जिसके आन्तरिक पक्ष में विवेक, वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, योग, तितिक्षा निष्काम कर्मयोग ओर आत्मसर्पण की भावना निहित है और बाह्य पक्ष में सदाचार, संयम एकता, भातृभाव आदि पिरोए हुए है। मध्ययुग के संतकवियों में इतने सर्वांगीण व्यक्तित्व वाले पुरुष का मिलना दुर्लभ है।

मध्यकाल में भारतीय समाज, जीवन और धर्म–साधना में रूढ़िवादिता, संकीर्णता एवं जड़ता घर कर चुकी थी, चारों ओर जब छल, प्रपंच एवं असत्य का बोलबाला था, भोग–विलास में पूरी तरह से डूबे राजे–महाराजे जब जन–साधरण की सुरक्षा एवं सम्मान को सुनिश्चित बनाए रखने के अपने कर्तव्यपथ को छोड़ चुके थे, नवागत इस्लाम और परम्परागत हिन्दू धर्म के बीच जब भीषण संघर्ष छिड़ा हुआ था, विडम्बनामयी परिस्थितियों के घात–प्रतिघात के कारण अपनी प्राकृतिक समाहार शक्ति से विरहिता भारतीय संस्कृति जब समस्वरता एवं सबके मंगल की अपनी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली धुरी से अलग जा पड़ी थी, तब युगव्यापी अंधेरे को चीरकर मनुष्य केन्द्रित अध्यात्मनिष्ठ जीवन के प्रोज्जवल पध को प्रशस्त करने वाला एक ऐसा व्यक्तित्व प्रकट हुआ जो अपने क्रांतिकारी विचारों एवं सम्यक् अनुभूति दार्शनिक निष्पतियों के कारण आज भी उतना ही प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण है जितना अपने समय में था। पन्द्रहवीं शताब्दी के सातवें दशक के अन्तिम वर्षों में अखण्ड भारत की धरती पर पैदा होने वाला वह व्यक्तित्व और किसी का नहीं, अपने ढ़ंग के अनोखे संत उन महात्मा गुरु नानक का था, जिन्होंने युगीन जीवन के तमाम संकुल पथों का त्याग करके अपने मार्ग का स्वयं संधान करने के साथ–साथ अपनी कहनी, कथनी और करनी की एकता से कोटि–कोटि जनों को प्रकाशोन्मुख जीवन–साधना की सच्ची राह दिखलाई। अगर ध्यान दे तो पाएँगे कि पूरे मध्यकालीन सन्त परम्परा के अन्तर्गत पंजाब के संदर्भ में यदि कोई नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है तो वह है श्री गुरु नानकदेव का।

भारतीय परम्परा के भाववादी दार्शनिकों में गुरु नानक का अपना महत्त्व एवं स्थान है। दार्शनिक चिन्तन के सन्दर्भ में वह निःसंदेह परम्परा के रिक्थ को लेकर आगे बढ़ते हैं, परन्तु उसका विकास वह अपनी अनुभूतियों के सहारे अपने एंग से करते हैं। अतएव उदनकी दार्शनिक दृष्टि को वादबद्ध दृष्टि से देखना अधिक उपयुक्त नीं कहा जा सकता। उनकी दार्शनिक निस्पत्तियों में अद्धैत, विशिष्टाद्वैत आदि के तत्वों का एकांत अभाव नहीं, तथापि उन्हें उन्हीं के खांचों में सीमित करना संगत नहीं। कारण कि नानकदेव जी ने किसी भी वाद अथवा दार्शनिक चिन्तन पद्धति का न आंख मूंदकर अनुसरण किया है औरा न ही समर्थन। परमात्मा, सृष्टि आदि के सम्बन्ध में उनका चिन्तन ही इसका प्रमाण है।

जहाँ एक ओर रामानंद के शिष्य परम्परा में कबीर पर्याप्त खिन्न थे और इस भेदभाव की दीवार को गिराने के लिए उन्होंने समाज के इन दोनों धर्मावलम्बियों को खूब आड़े हाथों लिया था और वह भी

जनमानस की भाषा में। उन्होंने नाना देवी–देवताओं की पूजा–उपासना को आडम्बर की संज्ञा देते हुए परमेश्वर, सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म की उपासना को ही साधारण सामाजिक के लिये उपयोगी तबाया। तभी तो वे कहते हैं –

अछै पुरुष इक वृच्छ है, निरंजन वाकी डार।
तिरदेखा साखा भये, पात भया संसार।।[1]

मगर यहाँ इस बात का उल्लेख करना परमावश्यक है कि कबीर के धर्मोपदेश या समाज–सुधार का कार्य–क्षेत्र भारतभूमि का पूर्वी भाग था, पश्चिमोत्तर या उत्तर नहीं था। फलतः उनकी निर्गुण ब्रह्म की उपासना तथा बाह्मडम्बारों के प्रति आस्था के लिए जनता को दी गई फटकार का प्रभाव भारत के इस भू–भाग पर प्रायः नहीं था।

गुरु नानकदेव का कार्यक्षेत्र मुख्यतः उत्तर पूर्व का भाग था, लेकिन भारत के ज्यादतर भागों में भ्रमण किया। गुरु नानकदेव ने अनुभूति श्रद्धा के बलपर अपने मूलमंत्र अथवा बीजमंत्र में परमात्मा के स्वरूप की इस भाँति व्याख्या की है –

ओंकार सतिनाम करतापुरखु निरभउ अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।'[2]

अर्थात् – "वह एक है, शब्द अथवा वाणी है और इसी के द्वारा सृष्टि रचता है। वह सत्य है, नाम है। उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम है और वही सत्य है और शेष जितने नाम हैं उसके गुणों के वाचक हैं। उसके प्रत्यक्ष गुण ये हैं – 'वह कर्त्तार है, पुरियों का निर्माण करके उनके बीच निवास करने वाला है, महान् पौरुष और महान् शक्तियुक्त है। वह समस्त शक्तियों का स्वामी है। परमात्मा के निषेधात्मक गुण ये हैं – 'वह भय से रहित है वैर से रहित हैं, मूर्तिमान है, काल से रहित है योनि के अन्तर्गत नहीं आता, त्रिपुटी से परे है।' – इस प्रकार प्रत्यक्ष गुणों से प्रारम्भ करके फिर प्रत्यक्ष गुणों में अन्त करते हैं। ''वह स्वयंभू है। वह प्राप्त होने वाला है और उसकी प्राप्ति गुरु–कृपा से होती है।''

इस श्लोक का आरम्भ "1 ओं" से किया गया है। यह 'ओम्' परम परमेश्वर परमात्मा का ही पर्याय है। वह परमात्मा कैसा है? इस आशंका का समाधान प्रस्तुत करते हुए नानक देव कहते हैं कि वह प्रणव स्वरूप है और वह एक है। और ओम् एक है और चरागत जगत का स्वामी है। इसी ओम् की बात आरम्भ कर नानक देव प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप में ''एकोऽहम् बहुत–स्याम्'' की पुरातन हिन्दू विचारधारा का समर्थन कर देते हैं।

"ओम्'' का स्वरूप क्या है, इस बात का विवेचन करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं –

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।
तपासि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति।
तत्रे पदं संग्रेहण ब्रवीम्योमित्येतत्। (कंठोपनिषद्, वल्ली–2, मंत्र–15)

अर्थात् ऋषि शिष्य को प्रबोध देता हुआ कहता है कि हे प्रिय शिष्य! वह परमात्मा (ब्रह्म) कैसा है? इस बात का मैं तेरे प्रति संक्षेप में वर्णन करता हूँ। वह ओम् स्वरूप है (ओम् इति–एतत्) अर्थात् ओम् (अक्षर) ही ब्रह्म है। नानक इसी एक ओम् स्वरूप (ब्रह्म), के पर्याय के तौर पर प्रत्यक्ष–परोक्ष स्वीकार करते है और कहते हैः–

है भी होसी नाइ न जासी रचना जिनि रचाई।।[3]

जो विचार गुरुनानक का है इसी बात का उपनिषदों में निम्नांकित रूप में वर्णन किया गया हैः–

तदेतत्सत्यं यथा सुदिप्तात्पाकद्धिस्फुचिङ्गाः
सहस्त्रशः प्रभक्ते सरूपाः।
तथाक्षरा द्विविधा विधाः सोम्यभावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति।।[4]

अर्थात् उसी अक्षर सरूप ब्रह्म से अनेक भाव उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। .. ... क्योंकि वह अक्षर (अ–क्षर) है अतः उसमें किसी प्रकार का क्षय नहीं होता। (तु. है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई–जपु–27) यह ओम् सरूप ब्रह्म कैसा है, क्या करता है, आदि बातों का निरूपण एवं स्पष्टीकरण करते हुए करते नानक दो तथ्यों का उद्घाटन करते हैं। (1) पहला यह कि वह ब्रह्म सत्य है और दूसरा नाम रूप है अर्थात् ओम् का ध्यान – स्मरण नाम रूप में किया जाना चाहिये क्योंकि यह नाम सत्य (अमर) हैं।[5]

निर्गुण ब्रह्म

ऐसा माना जाता है कि निर्गुण ब्रह्मः का वर्णन करना तो असंभव है, क्योंकि वहाँ तक न मन के द्वारा पहुँचा जा सकता है ना वाणी ना ही इन्द्रियाँ पहुँच सकती है। उसका केवल संकेत भर किया जा सकता है। अगर किसी निर्गुण का वर्णन करना है तो उसके लिए ये निम्न शैलियों का प्रयोग किया जाता है, पहली विधि शैली दूसरी निषेघात्मक। गुरु नानकदेव ने निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करने के लिए निषेधात्मक शैली का सहारा लिया है तथा सगुण ब्रह्म की अराधना के लिए विधि बोली का प्रयोग किया।

ऐसा माना जाता है कि अरबों वर्षों तक जब सर्वत्र अंधकार ही अंधकार था; धरती आकाश, दिन, रात, चन्द्रमा, सूर्य कही किसी का भी कोई पता नहीं था, जब जीव–सृष्टि – यहाँ तक कि ब्रह्म, विष्णु और महेश का अस्तित्व नहीं था, जब स्त्री–पुरुष, सुख–दुख कहीं कुछ भी नहीं था, तब शून्य समाधि में मग्न निर्गुण निराकार ब्रह्म–स्वरूप वह परमात्मा तत्त्व और उसका हुक्म ही अस्तित्वान था। अपनी सत्य महिमा में प्रतिष्ठित वह स्वयं ही अपना साहु और स्वयं ही अपना बनजारा था। इस प्रकार सृष्टि के पूर्व वह गोचर, वह अलख ब्रह्म स्वयं को ही प्रदर्शित कर रहा था अन्ततः उसी ने अपनी इच्छानुसार इस जगत को उत्पन्न किया और तमाम अज्ञात वस्तुओं को प्रकट किया –

अरबद नरबद धुंधकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा।
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि–लगाइदा।।[6]

नानक के यहाँ परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वातर्यामी होने के साथ ही सर्वशक्तिमान भी है। वह दाता, दयालु, भकत्वत्सल, दीन–बंधु सखा, सहायक शरणदाता, स्वामी, मात–पिता, पतित पावन आदि रूपों में भी वर्णित हैं। नानक ने इन गुणों का उल्लेख 'जपुजी' में किया है। वे उसके सर्वशक्तिमान एवं विलक्षण रूप का उल्लेख करते हुए कहते हैं –

सीहा बाजा चरणा कुहीआ एना खवाले घाह।
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाहे राह।।"[7]

अर्थात् वह परमात्मा कुछ भी अधटित कर सकता है जेसे – बाज, शिकरा और चील्ह जेसे मांसाहारी जीवों को वह घास चरा सकता है ओर जो घास खाने वाले जीव हैं, उनमें मांस खिलाने की सामर्थ्य पैदा कर सकता है। वह दाता है। उसके भंडार सदा भरे रहते हैं। उसके सामने सभी याचक है उसके दान में कभी कभी नहीं आती है।

सृष्टिक्रम

सृष्टि का प्रारंभ कब हुआ? इस प्रश्न का समाधान प्राचीन शास्त्र ग्रंथों में अज्ञात और अनिश्चित ही बताया जाता रहा है। प्रायः सभी शास्त्र ग्रंथ सृष्टि का आदि स्रोत ओंकार को ही बताते रहे हैं। इस संबंध में नानक का दृष्टिकोण स्पष्ट रहा है। सृष्टि को अनदि, प्रभु–व्याप्ति के कारण सत्य एवं विनाशशील होने के कारण शांत मानते हैं। सृष्टि–रचना का समय कौन–सा था? इसका सही उत्तर मनुष्य द्वारा दे पाना कठिन है।

आतम शमु संसारां साचा खेलु तुम्हारा।।
सचु खेलु तुम्हारा आगम अपारा तुध बिनु कउणु बुझाए।

अर्थात – (हे प्रभु); तु ही संसार का आत्मा राम है, (अर्थात् हे हरी तू ही समस्त संसार में रम रहा है) तेरा खेल सच्चा है; (वह) अजय और आधार है; तेरे बिना सृष्टि के इस अनन्त रहस्य को, कौन समझ सकता है? कितने ही सिद्ध, साधक लोग हैं, (किन्तु) बिना (तुझे जाने हुए) कौन व्यक्ति (सिद्ध, साधक कहलवा सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं; तेरे ही जानने से वे लोग सिद्ध साधक बनते हैं। हे नानक, गुरु के उपदेश द्वारा मैंने अवगुणों को दग्ध कर दिया है और गुणों के मेल के कारण प्रभु को पा लिया है।[8]

गुरु नानक देव शंकराचार्य की तरह जगत के मिथ्यातत्व के नहीं वरन् उसके सत्य पर विश्वास करते हैं। इस सृष्टि को कब आकार प्राप्त हुआ यह विषय भी अज्ञात है, इसको आज तक न होई पण्डित जनता ना ही कोई काजी या योगी। अगर इनका सृष्टि के क्रम की जानकारी होती तो इसका उल्लेख वह जरूर करते। अगर इसकी रचना के क्रम को कोई जानता है तो वह है परमात्मा जिसने सबका निर्माण किया। उसी के आदेश से सृष्टि को अपना स्वरूप मिला है। उस परमात्मा के आदेश को समझ पाना बहुत ही कठिन है। उसी से जीव उत्पन्न होते हैं, उसी से सब कुछ प्राप्त होता है और उसी से ऊँचे–नीचे कर्म किए जाते हैं और तत्पश्चात् कर्मों के फल प्राप्त होते हैं।

उदाहरण–

हुकमी होवीन आकार हुकम न कहिआ जाई।
हुकमि होवनि जीव हुकमि मिलै वडिआई।।
× × × × ×
हुकम अंदिर सभु को बाहरि हुकम न कोइ।
नानक हुक्मै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।[9]

माया

नानक माया के स्वतन्त्र अस्तित्व को अस्वीकाकर करते हैं उनके मत में निरंजन परमात्मा ने पहले स्वयं को उत्पन्न किया; फिर इस विश्व दृष्टि को। उसी ने सत् रज, तम, इन तीनों गुणों की रचना करके माया–मोह की वृद्धि की उससे कोई भी बच नहीं पाया है।

आपे आपि निरंजना जिनि आपु उपाइया।
आपे खेलु रचारओनु सभु जगतु सवाइआ।
त्रैगुण आपि सिर जिअन माइआ मोहु बधाइआ।[10]

आत्मा

नानक जी कहते हैं कि जो जीवन की युक्ति को जानता हो, वहीं इस (परम सहचर को समझ सकता है कि) समुद्र में बूँद है और बूँद में समुद्र है, अर्थात् परमात्मा में जीवात्मा है और जीवात्मा में परमात्मा है।

उदाहरण –

सागर महि बूँद–बूँद महि सागरु कवणु बुझे बिधि जाणै।[11]

जीव

गुरु नानक देव के अनुसार जीव दो प्रकार के होते है उनका वर्णन भी उन्होंने उसी आधार पर किया है 1. मुक्त और 2. बद्ध। गुरु नानक का मानना है कि जीव परमात्मा के आदेश से ही उत्पन्न होता है अंत में जाकर उन्हीं में विलीन हो जाता है। जीव न मरता है, न डूबता है। गुरु नानक जी मानते हैं कि जीवात्मा के अन्दर जब उस अविनाशी परमात्म तत्व का निवास है तब उसके मरने अथवा मारे जाने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है।

इस जगत में जितने भी जीव हैं उसमें भी प्राणि–जगत् में मनुष्य की संवेदनशीलता चेनाशक्ति सर्वाधिक विस्मय–कारिणी है। सुख–दुःख का अनुभव और उस अनुभव को अभिव्यक्ति करने की सामर्ध्य के कारण ही मनुष्य–योनि अन्य योनियों में श्रेष्ठ मानी गई है। नानक मानते हैं, परमात्मास्वरूप ब्रह्म ही जीव का स्वामी है, अतः वही सम्भाल भी करता है, उसकी दुरावस्था आरम्भ हो जाते ही वह अपने को उससे अलग समझने लगता है, उसकी दुरावस्था आरम्भ हो जाती है। मछली के रूपक के मध्यम से गुरुजी ने इस तथ्य का अंकन करते हुए कहा है –

तू दीरआउ दानला बीना मैं मछुली कैसे अंतु लहा।

जइ जइ देखा तह तू है तुझ ते निकसी फूटि मरा।।[12]

मनुष्य

सृष्टि के तमाम प्राणियों में मनुष्य सर्वाधिक चेतना–सम्पन्न प्राणी है। यद्यपि मानव जीवन नश्वर है, तथापि यह दुर्लभ एवं अतिश काम्य है।[13]

श्रीमद्भागवत, ग्यारवां स्कन्ध, नवां अध्याय, श्लोक–29 इस बात की चर्चा की गई है। नानक ने भी इसकी दुर्लभता की बात मान्य की है –

माणस जनमु दुलंभु गुरमुखि पाइया।

अहंम (हउमै) –

आहंकार, जिसे नानक "हउमै" का अभिधान देते हैं। एक ऐसा खतरनाक रोग है, जिसके प्रभाव से दुनिया में कोई नहीं बच पाता है। इस के कारण मनुष्य परायी स्त्री और पराये धन के प्रति लुब्ध होकर विकार ग्रस्त होता है –

परदारा परधनु परलोभा हउमै बिस्वै बिकार[14]

निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि नानक की दार्शनिक चिन्ताना एवं अध्यात्म साधना अतएव भेद में अभेद तथा अनेकता में एकता की चेतना को उन्मीलित एवं संतुष्ट करने वाली साधना है इस ऐक्य चेतना के अभाव में क्या मनुष्यता की मूल दिशा की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है और क्या इस ओर बढ़े बिना हम सच्चे अर्थों में सुखी हो सकते हैं। यदि नहीं तो कहना होगा कि आज की जटिल एवं विषम परिस्थितियों में भी महात्मा नानक की दृष्टि लोक का मार्गदर्शन कर सकती है, आत्मकेन्द्रितता, अनावश्यक संघर्ष एवं पीड़ा के संसार से उबालकर उसे सुख, सोमनरच, शांति एवं परितुष्टि का अमृत

प्रदान कर सकती है; वह ईश्वरवादी है अथवा निरीश्वरवादी, अध्यात्म साधना में विश्वास करता है अथवा नही; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

संदर्भ सूची

1. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र (सं.) श्री कृष्णदास मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, संस्करण–1972, पृ. 46
2. नानक–वाणी, डॉ. चमनलाल अग्रवाल, अग्रवाल प्रकाशन, ग्रटर कैलाश नयी दिल्ली–110084, संस्करण–, पृ. 56
3. नानक–वाणी का भाषायी तथा दार्शनिक निरूपण, डॉ. चमनलाल अग्रवाल, अग्रवाल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, संवत् 2036, पृ. 60
4. भुण्डकोपनिषद्, द्वितीय मुण्डक, खण्ड एक मंन्त्र–1
5. नानक–वाणी का भाषायी तथा दार्शनिक निरूपण, डॉ. चमनलाल अग्रवाल, अग्रवाल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, संवत् 2036, पृ. 60
6. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र (सं.) श्री कृष्णदास मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेडद्व इलाहाबाद, संस्करण–1972, पृ. 645
7. नानक–वाणी, डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र (प्रकाशन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, महला 1 वार माझ पृ. 144
8. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, संस्करण, पृ. 245
9. नानक वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ.– 10
10. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड संस्करण, पृ. 726
11. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, पृ. 498
12. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेडद्व इलाहाबाद, पृ. 129
13. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन, रागु सूही, असटपदीआं, 3/1, पृ. 446 सूही,मइला–1 कापी धरु–10
14. नानक–वाणी, डॉ. जयराम मिश्र, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, पृ. 748

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

सामाजिक पुनर्निर्माण में बुनियादी शिक्षा का महत्त्व

डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार

(शिक्षक) प्रो0 बा0 उ0 मा0 वि0, काँटी, मुजफ्फरपुर

किसी भी देश की प्रगति वहाँ के रचनात्मक एवं संगठनात्मक आन्दोलन के अभाव में संभव नहीं है। रचनात्मक और संगठनात्मक विचारों की जननी शिक्षा ही होती है। शिक्षा से ही प्रेरणा प्राप्त करने वाले कृतकर्मों द्वारा ही मानव सभ्यता का विकास हुआ है। सामान्य विचारों से रहित मस्तिष्क विद्याग्रहण कर अन्तः प्रेरणा प्रसूत प्रतिभज्ञान को ग्रहण करने योग्य पात्रता को प्राप्त करता है।

गाँधी जी एक हिन्दू और भारतीय थे– कई पीढ़ियों के सबसे बड़े हिन्दू और भारतीय और इसके लिए उन्हें अभिमान था। उन्हें भारत से प्रेम था। क्योंकि उसने युगों तक अनेक अपरिवर्तनीय तथ्यों का प्रतिनिधित्व किया। किन्तु यद्यपि वे हृदय से धार्मिक थे और उस राष्ट्र के पिता कहलाते थे, जिसका उन्होंने उद्धार किया; फिर भी संकीर्ण धार्मिकता अथवा राष्ट्रीयता उन्हें छू भी नहीं गयी थी और इस प्रकार वे प्रयोजनीय एकता, समस्त धर्मों की अंतर्निमित एकता और मानव की आवश्यकताओं में अपने अगाध विश्वास और विशेषतः दरिद्रों, कष्ट पीड़ितों तथा कोटि–कोटि अत्याचार पीड़ितों की सेवा में अपने को न्योछावर करके एक महान अन्तर्राष्ट्रीय पुरूष बन गये।''

बुनियादी शिक्षा और ग्रामीणों (विशेषकर महिलाओं) के लिए काम करना गाँधी जी के रचनात्मक प्रयासों की श्रेणी में आता था। बुनियादी शिक्षा के बारे में उनके विचार भारतीय स्थितियों के अनुरूप थे तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् कई प्रांतो में व्यापक स्तर पर इन्हें कार्यरूप दिया गया।लंदन में 1931 में मैडल मॉटिसरी और उसके तरीकों से वे बहुत प्रभावित हुए थे और उनकी प्रणाली में उसका गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

विकास, मानव जीवन के सतत् परिवर्तन की एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पद्धतियों के पुनर्गठन एवं नवीनीकरण का समावेश होता है। इस आधार पर गाँधी जी मानते थे कि बिना गाँवों के विकास के भारत का विकास असंभव है, क्योंकि भारत गाँव का देश है एवं भारत की तीन–चौथाई आबादी गाँवों में निवास करती है।

गाँधी जी ने राज्य विषयक जो विचार व्यक्त किए, उनके आधार पर उन्हें अराजकतावादी कहा जाता है। राज्य को आदर्शवादी विचारकों ने प्राकृतिक, अनिवार्य एवं लाभदायक संस्था नहीं कहा, अपितु उसे सर्वोच्च संस्था माना और हीगल सदृश चिंतकों ने उसे पृथ्वी पर ईश्वर का प्रचलन बताया। व्यक्तिवादियों ने राज्य को एक आवश्यक बुराई कहा। अराजकतावादी विचारकों ने राज्य को अनावश्यक बुराई कहकर राज्य के अस्तत्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया।

गाँधी जी ने यद्यपि पूर्ण अहिंसात्मक और राज्यविहीन समाज की कल्पना की थी तथापित वे यथार्थवादी विचारक थे। अहिंसा का तत्व भारतीय प्रतिभा में ही व्याप्त है, जिसेस वे इतने प्रभावित थे। इसका मूल तो बलिदान की अपरिष्कृत भारतीय आर्य धारण में निहित है और इसका चरमोत्कर्ष

गाँधीवाद में हुआ। भारतीय जीवन आशावाद से परिपूर्ण रहा है। यह विशिष्टता लक्षणीय है कि इसके नाटक निरपवाद रूप से सुखान्त होते रहे हैं और इसकी कलाएँ जीवन को सर्वदा आशा एवं आनन्द से परिपूर्ण चित्रित करती रही है।

गाँधी जी अभिवंचित वर्गों में ज्ञान फूंकने की कोशिश की। उनके भीतर सोयी मानवता को जगाने का प्रयास किया। उनके भीतर जन्मीहीन भावना को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। तभी तो वे कहते थे – ''जिस आदमी का मान उसके अपने विचार में मर चुका है, वह जितनी हानि अपने का पहुँचा सकता है, उतना दूसरा कोई नहीं पहुँचा सकता। उन्होंने राम राज्य की कल्पना की थी।

महात्मा गाँधी ने समृद्ध एवं शक्तिशाली भारत के निर्माण के लिए सर्वोदयी समाज की परिकल्पना की थी। सामाजिक विकास के लिए रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा उन्होंने आमूल परिवर्तन अथवा क्रांति का स्वप्न देखा था।

सर्वोदय समाज की स्थापना के बारे में एक विस्तृत योजना 20 जनवरी 1950 को प्रकाशित हुई। सर्वोदय समाज का यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए समाज में स्वतंत्रता होगी और समाज में अधिक से अधिक समानता होगी। प्रत्येक व्यक्ति को विकास के अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होंगे।

बिनोबा भावे का कथन है कि – ''सर्वोदय कुछ या बहुतों का या अधिकतम का उत्थान नहीं करता व हम अधिकतम के अधिकतम सुख से संतुष्ट नहीं है। हम तो केवल एक की और सबकी, ऊँचे और नीचे की, सबल और निर्बल की; बुद्धिमान और बुद्धिहीन की, भलाई से ही संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द का उत्कृष्ट और सर्व व्यापक भावना को अभिव्यक्त करता है।''

सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए गाँधी जी उद्देश्य एवं साधन पर भी बल देते हैं। उनकी दृष्टि में उद्देश्य एवं साधन विनिमेय शब्द है। उनका कहना है कि जैसा साधन वैसा उद्देश्य। इसीलिए अहिंसात्मक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए अर्थात् दूसरे शब्दों में शोषण एवं उत्पीड़न से मुक्त वर्ग विहीन राज्य रहित समाज की स्थापना के लिए उन्होंने केवल अहिंसक साधनों का ही निर्देश किया और उनके समर्थन के लिए अनेकानेक तर्क दिये। अपने अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम किसी भी प्रकार के साधन का यहाँ तक कि हिंसा का भी प्रयोग क्यों न करें, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गाँधी जी कहते हैं ''– तुम्हारा यह विश्वास कि साधन एवं उद्देश्य में कोई सम्बन्ध नहीं है, एक बहुत बड़ी भ्रांति है।

पुनः महात्मा गाँधी ने हमें बहुत सी बातें सिखायी, किन्तु जो सबसे बड़ी बात उन्होंने सिखायी यह वही बात कि साधन ही उद्देश्य है, अर्थात साधनों से उद्देश्य की सिद्धि कभी नहीं हो सकती है एवं सदुद्देश्यों के लिए सत्साधनों की आवश्यकता होती है।

बुनियादी शिक्षा के माध्यम से सामाजिक पुनर्निर्माण में विकेन्द्रीकरण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधीजी की विचारधारा की यह उल्लेखनीय विशिष्टता है। गाँधी जी कहा था कि अहिंसात्मक राज्य सत्ता या शक्ति का अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों क्षेत्रों में ही गाँधी जी विकेन्द्रीकरण के समर्थक थे। वस्तुतः गाँधी जी की विचारधारा के अनुसार अहिंसात्मक समाज की स्थापना और केन्द्रीकरण की स्वीकृति, दोनों विपरीत आदर्श (लक्ष्य) हैं। शक्ति का केन्द्रीकरण प्रजातांत्रिक मूल्यों के भी प्रतिकूल है। केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से व्यक्तिगत स्वतंत्रता बाधित होती है। केन्द्रीकरण पुनः असमानता को भी बढ़ावा देता है, इसलिए आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और राजनीतक स्तर पर केन्द्रीकरण के अन्त की आवश्यकता है।

गाँधी जी के अनुसार राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ है कि ग्रामों को अपने मामलों का प्रबंध करने के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उनके ऊपर राष्ट्रीय अथवा संघीय सरकार का नियंत्रण कम से कम होना चाहिए।

गाँधी जी के विचार में उत्पादन प्रणाली का 'विकेन्द्रीकरण' राष्ट्र में सामाजिक और आर्थिक स्थायी शांति की स्थापना के लिए अत्यन्त आवश्यक था। गाँधी जी ने गाँव को एक आर्थिक इकाई मानकर उसे आत्मनिर्भर बनाने का विचार दिया। इस हेतु गाँधी जी लघु कुटीर उद्योगों के विकास के पक्ष में थे। उनका विचार था कि जब उत्पादन घरेलू तथा लघु उद्योग द्वारा होगा तो देश के सभी गाँवों के प्रत्येक घर में उत्पादन कार्य संभव हो सकेगा तथा कोई बेकार नहीं रहेगा तथा सभी ग्रामवासियों को उचित मूल्य पर गाँव में ही निर्मित प्रत्येक वस्तु प्राप्त हो जायेगी। इस प्रकार प्रत्येक गाँव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होगा। लोगों का ग्राम्य जीवन शांतिमय होगा और संघर्ष मय जीवन समाप्त होगा।

सामाजिक पुनर्निर्माण में ट्रस्टीशिप का महत्वपूर्ण योगदान है और ट्रस्टीशिप बुनियादी शिक्षा के आवश्यक अंग माने जाते हैं। गाँधीजी का मानना था कि जबतक समाज से आर्थिक विषमता समाप्त नहीं होगी तब तक समाज में तथा संसार में स्थायी शांति स्थापित नहीं हो सकती।

मार्क्स ने श्रमजीवियों की मुक्ति के लिए वर्ग युद्ध की अनिवार्यता पर जोर दिया, किन्तु इसके बिल्कुल विपरीत गाँधी जी का विचार है। उन्होंने हिंसा का परित्याग कर दिया था एवं वर्ग–युद्ध की भर्त्सना की थी। उनका कहना है – ''मेरी आशा है कि अहिंसक पद्धति से जमींदारों और दूसरे पूंजीपतियों को सम्परिवर्तित कर सकूँगा। अतः मैं वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता को नहीं मानता। अल्पतम प्रतिरोध के मार्ग पर अग्रसर होना अहिंसा का सारभूत तत्व है। पुनः उनका कथन है कि यदि जनता अहिंसक पद्धति का अनुगमन करे तो मैं निश्चय ही वर्ग–युद्ध बचा सकता हूँ। अहिंसक पद्धति से हम पूंजीपति का विनाश करना नहीं चाहते, हम पूंजीवाद को ध्वंस करना चाहते हैं। हम पूंजीपति से अनुरोध करते हैं कि वह अपने को उनका न्यासधारी माने जिन पर वह अपनी पूंजी बनाने, बचाने एवं बढ़ाने के लिए निर्भर है।

गाँधी जी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण कर प्रेम, सेवा और सहयोग के आधार पर सामाजिक पुननिमार्ण करना चाहते हैं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आचार्य विनोबा भावे ने ''भूदान–यज्ञ के मार्ग को प्रदर्शित किया। उनका विचार है कि भूदान यज्ञ के द्वारा हम जनता को उसकी सोयी हुई शक्ति का फिर से भान कराते हैं।

सामाजिक पुनर्निमार्ण के आयामों में सर्वोदय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सर्वोदय की अवधारणा गाँधी की थी। आचार्य विनोबा ने उसे कार्य रूप दिया, जिसमें महती भूमिका निभायी बुनियादी शिक्षा ने। बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था ने ही सर्वप्रथम सर्वोदय, विकेन्द्रीकरण आदि व्यवस्था को इसलिए अपनाया ताकि समाज का पुनर्निमार्ण हो सके। सर्वोदय का अंतिम आदर्श एक ऐसे राज्य विहीन समाज की स्थापना है, जो प्रत्येक प्रकार की सत्ता से पूर्णतया मुक्त होगा।

महात्मा गाँधी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित करना चाहते थे ताकि समाज का पुनर्निमार्ण हो सके। गाँधी जी श्रम को पूजा समझते थे और उस पूजा की आदत वे भारतीय बच्चों में प्रारंभ से डी डालना चाहते थे। तभी तो वे कहा करते थे – ''शारीरिक श्रम मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्ति को भी अर्जित करता है।

समाजिक पुनर्निमार्ण के लिए महात्मा गाँधी ने ''अपने आध्यात्मवाद के आधार पर समूचे विश्व को व्याप्त करने की अभिलाषा रखनेवाली पाश्चात्यों की यंत्र संस्कृति तथा उस पर आधारित आधुनिक सुधारों का अस्वीकार किया।

गाँधी जी ने आश्रम–जीवन की कल्पना को इसलिए जन्म दिया कि वह वर्गभेद तथा राष्ट्र भेद के क्षुद्र अहँकार को तनिक भी स्थान न देने वाला सर्वमानवों का विश्वास स्थान हो और इसका क्रियान्वयन वे बुनियादी शिक्षा के माध्यम से ही करना चाहते थे, क्योंकि यहाँ वर्ग भेद और जाति भेद का अंतर नहीं रहता।

समाजिक पुनर्निर्माण के उपरोक्त आयामों जिसको गाँधी जी ने अपनाया, वही सारे आयाम बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारित थे। अतः गाँधी ने बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारित थे। अतः गाँधी ने बुनियादी शिक्षा के माध्यम से भारतीय जन उत्थान हेतु वर्तमान भारत के आदर्शों एवं मूल्यों को व्यवहारिक रूप देने का प्रयास किया। गाँधी जी ने अस्पृश्यता दूर करने, मद्य निषेध को लाने, विवाह और परिवार सम्बन्धी सुधारों को कार्यान्वित करने, श्रम और श्रमिकों की प्रतिष्ठा को स्थापित करने, यंत्र संस्कृति को नकारने और विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को लागू कर नये सामाजिक विधान की शुरूआत की।

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सामाजिक पुनर्निर्माण में बुनियादी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ सूची :–

1. सं0 रामलखन शुक्ल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0–229
2. विसेंट शीन–गाँधी जी : एक महात्मा की संक्षिप्त जीवनी, पृ0–174
3. डॉ0 (श्रीमती) राजेश जैन, डालचन्द जैन– भारतीय राजनीति के नये आयाम, पृ0–164
4. अहिसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यामः – योग सूत्र–2, 35
5. धवन–पॉलिटिकल फिलासफी ऑफ गांधी – पृ0–15
6. प्रतियोगिता दर्पण– दिसम्बर–1992, पृ 0–662
7. डॉ0 शिव भानु सिंह – समाज दर्शन का सर्वेक्षण, पृ0–174
8. यंग इंडिया–खंड–2, पृ0–435
9. हिन्द स्वराज, पृ0–105
10. डॉ0 सीता रमैया–हिस्ट्री ऑफ कॉंग्रेस, पृ0–979
11. हरिजन–5 दिसम्बर–1936
12. यंग इंडिया–26 मार्च 1931
13. डॉ0 महादेव प्रसाद– महात्मा गाँधी का समाज दर्शन, पृ0–77 से
14. तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी–वैदिक संस्कृति का विकास, पृ0–257
15. हरिजन–28 सितम्बर 1934, पृ0–260

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

राजनीतिक बोध का प्रहसनः अंधेर नगरी

"शेखर सुमन"
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय
छपरा, बिहार

अंधेर नगरी नामक प्रहसन केवल तर्कषून्य मूर्ख राजे–रजवाड़ों पर हीं गंभीर वयंग्य नहीं करता है, अपितु शोषक–व्यवस्था के अस्त–व्यस्त और ध्वस्त होने को भी इंकित करता है। भारतेन्दु के सृजन पक्ष के मूल में जनसाधारण था और वे जनता के समक्ष ब्रिटिष साम्राज्यवाद की सच्चाई प्रकारान्तर से प्रस्तुत करना चाह रहे थे।

लोकवार्ता को आधार बनाकर इस प्रहसन की रचना 1881 में 'नेषनल थियेटर' हेतु की गयी थी। कृतिकार की समय बोध पर गहरी पकड़ किसी रचना या कृति के कालजयी होने या उसके भविष्य का निर्धारण करती हैं उस समय भाषा एवं संवेदना पर गहरी पकड़ थी, भारतेन्दु की। भारतेन्दु के नाटकों के कथ्य बहुत नवीन नहीं थे किंतु, उनमें रचनात्मक कौषल अद्‌भूत था। इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि जिस कृति की रचना उन्होंने महज एक दिन में की हो, वह अपने विषय, भाव मंचन की दृष्टि से कालातीत सिद्ध हुई। डॉ0 रामविलास शर्मा इस प्रहसन की मिथकीय योजना से प्रभावित होकर लिखते हैं– "भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी चौपट राजा' की लोककथा लेकर उसमें नई जान डाल दी है। उन्होंने यह दिखाया है कि पुरानी लोक–संसकृति के रूप को राजनीतिक चेतना पैलाने के लिए किस तरह इस्तेमाल करना चाहिए।"[1]

भारतेन्दु जी ने संस्कृत के पारम्परिक नाटकों का अनुकरण न करते हुए इस प्रहसन में मंगलाचरण का प्रयोग नहीं किया है । प्रारीा में दिया गया समर्पण मुख्यतः उपदेषपरक प्रतीत होता है। उसमें बलताया गया है कि किसी पद को प्राप्त कर लेने मात्र से कोई व्यक्ति सम्मान का अधिकारी नहीं हो जाता ह। सम्मान के योग्य वहीं व्यक्ति होता है जो परहित में विष्वास रखता हो। कलियुग की वासतविकता दिखलाते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति इस समय लगातार स्वार्थ में रत हों, कौए की तरह नकलची हों, वहीं इस समय में लगातार सम्मुनत हो रहे हैं।

समर्पण के लिए लिखी गयी यह पंक्ति मुख्य है–'गो श्रुति भारत देस समुन्नति में नित लागिय।' दरअसल गो व श्रुति (वेद) की उन्नति, उनके धार्मिक विष्वास को बताती है। भारतेन्दु परम्परावादी वैष्णव थे, जबकि अगला शब्द 'भारत देस समुन्नत' उनके मुख्य निहितार्थ को व्यक्त करने वाला है। वह जनसाधारण से आह्‌वान करना चाह रहे हैं कि आप लोग अपने देष को उन्नत करने हेतु प्रयतनषील होइढ। इस समय तक जनता तक किसी भारतीय नेता या संगठन की पहुँच नहीं थी। वास्तविकता तो यह है कि अभी तक किसी भी बड़े संगठन का राष्ट्रीय फलक पर प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था। भारतेन्दु अपनी उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से जन साधारण के जागरण का प्रयास कर रहे थे। वह जनता भीतर किसी असीमित शक्तियों को जानते थे। आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी जनता को शामिल

करने में सफल होते थे। जनसाधारण के राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने से उसे एक नयी दिषा व उर्जा मिली।

हिंदी के प्रारंभिक नाट्यालोचकों ने 'अंधेर नगरी' प्रहसन को अत्यन्त साधारण कोटि की रचना बताया है। 'अंधेर नगरी' के विषय में ब्रजरत्नदास जी लिखते हें कि–'इसमें दिखलाया गया है कि लोभ बुरा है और भले बुरे की पहचान रखनी चाहिए ऐसा न करने का क्या फल होता है? वह भी प्रदर्षितकिया गया हैं।[2] ठीक कुछ इसी प्रकार की टिपण्णी डॉ0 लक्ष्मीसागर वाष्णेय जी 'भारतेन्दु हरिष्चन्द्र' नामक अपनी पुस्तक में करते हैं– 'अंधेर नगरी' प्रहसन की कथावस्तु साधारण है। कहीं–कहीं उसमें ऐसे अंष आ गये है, जो देष की तत्कालीन अवस्था पर प्रकाष डालते हैं। प्रहसन का कोई महान उद्देष्य प्रतीत नहीं होता है। साथ हीं उसमें अति नाटकीयता है और हास्य भी उच्चकोटि का नहीं है।[3]

दोनों ही टिपण्णीयाँ वर्तमान समय में स्वीकार्य नहीं कही जा सकती है। 'अंधेरनगरी' प्रहसन विषय, भाव व रंगमंच तीनों ही कसौटियों पर खरा उतरता है। दोनों ही समीक्षक प्रहसन में छुपे हुए व्यंग्य की गहरायी तक उतर नहीं पाये है। दरअसल इसे प्रारंभिक नाट्यालोचन की सीमा ही कहा जा सकता है।

लाई लिटन के समय में 'भारातीय भाषा समाचार पत्र अधिनियम मार्च 1878[4] आ चुका थां ऐसे में भारतीय भाषा के लेखकों व समाचार पत्रों को अंग्रेजी शासन की नीतियों की खुलकर आलोचना करना संभव न रह गया था। कई समाचार पत्रों ने रातोंरात या तो अपनी भाषा हीं बदल दी या फिर कई बंद हो गए।

इस समस्या से बचने हेतु भारतेन्दु ने प्रतीक व वयंग्य का सहारा लिया, जो कथ्य को कहने में सफल भी रहा। पूरे प्रहसन में दो दृष्य बाजार का दृष्य और राजसभा का दृष्य सर्वाधिक प्रभावी सिद्ध हुए हैं। बाजार का पूरा दृष्य जहाँ राज वयवस्था पर गंभीर टिप्पणी करता हैं वहीं राजसभा का दृष्य अंग्रेजों की नवीन न्याय–व्यवस्था की पोल खोलकर रख देता है।

बाजार दृष्य में कबाववाला, घासीराम, पाचकवाला, कुजड़िन, जातवाला इत्यादि सभी पत्र उँची आवाज में अपनी वस्तुएँ बेचने हेतु उनमें अनेक गुणों के होने का दावा कर रहे हैं। यह ठीक कुछ उसी प्रकार है, जैसे वर्तमान समय की बड़ी–बड़ी कंपनीयाँ विज्ञापनों के द्वारा अपने उत्पादों को बेचने हेतु उनका विज्ञापन करी एवं करवाती हैं।

घासीराम–

"चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूरा टिकस लगाते।"

घासीराम की ये पंक्तियाँ ततकालीन समय की नौकरषाही की खामियों को उजागर करती हैं।

घासीराम की ये पंक्तियाँ तत्कालीन समय की नौकरषाही की खामियों को उजागर करती हैं। 'पाचक वाला' की लम्बी–चौड़ी उक्तियाँ राजयव्यवस्था और अंग्रेजी शासनकाल की लगभग सभी खामियों को उजागर करके रख देती है। "हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरना इसका काम।"[6] ये पंक्तियाँ मद्रास के बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के प्रेसीडेंट जॉन सुलीवन की पंक्तियों वाला ही भाव व्यक्त करती हैं। उन्होंने अंग्रेजी शासन व राज्यवयवस्था पर टिपण्णी की थी कि–"हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पन्ज के रूप में काम करती है जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु ले लेती है फिर टेम्स के किनारे पर निचोड़ देती है।"[7] आगे चलकर चूरन के बहाने प्रहसन में कहा गया है कि चूरन यानि अंग्रेज जब से भारत में आये हैं तबसे भारत की अर्थव्यवस्था का आकार व शक्ति सभी कम हो रहा है। चूरन के

माध्यम से ही छोटे अधिकारियों के बीच फैली रिष्वतखोरी, महाजनों द्वारा छोटे व गरीब लोगों का जमा पैसा न देना व पुलिस वालों द्वारा स्वयं ही कानून की धज्जियाँ उड़ाने को बखूबी स्पष्ट किया गया है।

बजार दृष्य में कुजाड़न का यह कहना कि 'ले हिनदुस्तान का मेवा फूट और बैर।' भारतीय जनमानस में व्याप्त संघर्षों एवं उसके कुफल को व्यक्त करता है। जिसको आधार बनाकर अंग्रेजों ने लम्बे समय तक भारत को गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रखा। 'जातवाला' द्वारा जात, वेद, धर्म, कुल, मरजादा, सच्चाई, बड़ाई सब टके सेर में बेचना तत्कालीन धार्मिक स्थिति की बानगी है। इस समय धर्म आचरण का विषय न रहकर व्यापार का रूप ले चुका था।

चौथे दृष्य के अंतर्गत राजसभा को चित्रित किया गया है। राजा जिसे जनता का पोाषक व रक्षक माना जाता है। वह अत्यन्त ही भीरू प्रकृति का है। सेवक की आवाज सुनकर हीं वह डर जाता है। राजा बार–बार शराब माँगता है। इससे राजे–रजवाड़ों की विलासिता–पूर्ण जीवन को संकेतित किया गया है। राजा को अपराध होने पर न्याय करने से मतलब है, न्याय हुआ अथवा नहीं राजा को इसकी परवाह नहीं है। आधुनिक समय में न्याय करने के साथ 'न्याय होता दिखे' इस बात पर अधिक बल दिया जाता हैं पूरा दृष्य इस बात की बानगी करता है कि यह विष्वास जनता के बीच बना रहे कि इस व्यवस्था में न्याय होता है, साथ ही इस बात का भय भी की अपराध करने पर सजा हो सकती है।

पाँचवें दृष्य में पुनः गोवर्धनदास के गीत के माध्यम से उस समय के यथार्थ को बताने का प्रयास किया गया है। सत्य का अनुसरण करने वाले लोगों की स्थिति दयनीय है। समाज में दुष्ट एवं छल करने वाले लोगों का बोलबाला हैं जो लोग बाहर से सभ्य दिखलायी पड़ते हैं, वह भीतर से छल एवं कपट से भरे पड़े है। राजसभा में भी ऐसे हीं लोग भारी पड़ते हैं। सत्य कहने पर दोष उसी मढ़ दिये जाते है जबकि झूठे लोग अनेक प्रकार से पद एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर रहे हैं। छली लोगों की एकता के आगे किसी की नहीं चलती हैं ऐसी स्थिति अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय राजे–रजवाड़ों के दरबारों में विद्यमान थी। राज्य की बागडोर राजा के हाथों में नहीं है, सारा राजकाज का कार्य छोटे नौकरषाह चलाते हैं।

अंत में जब गोर्वधनदास पूछता है िकइस शहर में उस फकीर के अलावा कोई और मोटा आदमी नहीं है तो प्यादे का उत्तर कुछ इस प्रकार का होता है–

1. प्यादाः "इस में दो बात है– एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़े तो वह न जाने क्या बात बनावै कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दषा है। इससे तुम्ही को फाँसी देंगे।"[8]

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट है िकइस समय कोई भी व्यक्ति अपने मन के मुताबिक आचरण नहीं कर सकता था। दूसरी बात इस तरह इषारा करती है कि अंधेर नगरी के सभी लोग छल–प्रपंच में एक से बढ़कर एक थे। अतः प्यादों को भी डर था कि कहीं कोई समस्या उन पर न बन आवे। यहाँ साधू महात्मा से तात्पर्य धार्मिक व्यक्ति से कम सामान्य आचरण करने वाले तथा छल–प्रपंच से दूर रहने वाले व्यक्ति से अधिक है।

डॉ0 बच्चन सिंह अंधेरी नगरी के विषय में लिखते है कि "अंधेर नगरी" भारतेन्दु का सर्वाधिक सफल नाट्य–प्रयोग है। इसे 'भारत दुर्दषा' की अगली कड़ी मानना चाहिए। 'भारत दुर्दषा' का रूपबंध भी इससे मिलता–जुलता है, पर इसकी व्यंग्यात्मकता अधिक गहरी और चोट अधिक मार्मिक है। भारत–दुर्दषा की तरह यह भी राजनीतिक नाटक है, किंतु अपनी व्यजंनात्मकता में पहले को बहुत पीछे छोड़ देता है।"[9]

अंत में परवर्ती नाटककार व आलोचक मुद्राराक्षस द्वारा भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के लेखन पर लगाये गये आक्षेपों की पड़ताल कर लेना भी समीचीन प्रतीत होता है। वे भारतेन्दु के विषय में लिखते हैं– "वे (भारतेन्दु) समय का बहुत महत्वपूर्ण लेखन कर रहे थे पर ऊपरी तौर पर लोकानुरंजन (लोकानुरंजक?) दीखने वाला यह सारा लेखन हिन्दू सांप्रदायिक आंदोलन का भाला लेकर चला था।"[10] उनका यह आक्षेप भारतेन्दु द्वारा गो व श्रुति जैसी धार्मिक बातों के समुन्नत होने की बात कहने पर आधारित है। ध्यातव्य हो कि भारतेन्दु वैष्णव मतानुयायी थे और वैष्णव संप्रदाय में गो व वेदों दोनों को समादर प्राप्त है। उनके लेखन में किसी भी सम्प्रदाय के प्रति दुराव रखने वाली कोई सीधी टिप्पणी नहीं नजर आती है।

मुद्राराक्षस आगे यह प्रष्न खड़ा करते हैं कि भारतेन्दू अपनी राजभक्ति के कारण रानी विक्टोरिया या लाट साहब को अंधेर नगरी का राजा नहीं बना सकते थे। उन्होंने चौपअ राजा के प्रतीक को अवध के नवाब वाजिद अली शाह का चरित्र माना है और कहते हैं। दरअसल यह उक्ति 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' नवाब की शासन–व्यवस्था पर टिपण्णी है।

आलोचक महोदय आगे चलकर वाजिद अली शाह के शासन–व्यबस्था पर प्रषस्तिपूर्ण शैली में प्रकाष डालते हुए कहते हैं कि नवाब के शासनतंत्र की खूबी यह थी कि उसमें वर्ण–व्यवस्था और हिन्दू धर्म के लिए कोई जगह नहीं था, मुसलमान भेद–भाव के बिना मस्जिद में नमाज पढ़ सकते थे और मुसलमान भी कृष्ण कन्हैया बन सकता था। बस, नवाब की यहीं समरस धर्मदृष्टि भारतेन्दु को कभी स्वीकार्य नहीं था क्योंकि वहाँ 'षुद्र–सवर्ण' भेद मान्यता नहीं पाता था।

अंतिम और सर्वाधिक गंभीर आक्षेप कि "यह भाजी और खाजा यही है। भाजी शुद्र या पृथाग्जन थे और खाजा सवर्ण थे। उन्हें (भारतेन्दू को) इस बात पर गहरी तकलीफ था कि भाजी यानि शूद्र और खाजा यानि सवर्ण एक बराबर हो रहे है।..... साधु के माध्यम से भारतेन्दू एक हिन्दू की गुकार लगाते है।"

आलोचक महोदय द्वारा लगाये गये सभी आरोप कितने तर्कसंगत है, यह कहना बेहद जटिल है कयोंकि, आक्षेपों के पीछे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं प्रस्तुत किये गये है। ये आरोप कल्पना–प्रसूत, निराधार और कोरे बौद्धिक–विलास से प्रतीत होते हैं। पहला आक्षेप कि अंधेरे नगरी का राजा वाजिद अली शाह है, तो भारतेन्दू ने साफ व स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि– "अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेषा।"

उपर्युक्त पंक्ति रानी विक्टोरिया के भारत की शासिका होने की तरफ साफ तार पर इषारा करती है। इतिहास के बारे में सामान्य जानकारी रखने वाले को भी यह बात पता होगी की 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के पश्चात् भारत की शासिका महारानी विक्टोरिया को घोषित कर दिया गया था। ऐसे में अंधेर नगरी का शासक वाजिद अली शाह कैसे ठहरते हैं? वह आलोचक महोदय जी जानें। अवध के नवाब की शासन व्यवस्था जितनी प्रषंसस आलोचक द्वारा प्रस्तुत की गयी है वह इतिहास सम्मत हो ऐसा भी नहीं है। इतिहास लेखकों ने ऐसे कोई भी प्रमाण नहीं दिये हैं, जैसा कि आलोचक महोदय ने वाजिद अली शाह के कसीदे पढ़े हैं। वाजिद अली शाह में पराक्रम का ऐसा अभाव ाि कि अवध अंग्रेजों द्वारा 1856 में हड़प लेने के बावजूद 1857 की क्रांति का नेतृत्व लखनऊ में बेगम हजरत महल ने किया न कि नवाब वाजिद अली शाह ने।

आगे चलकर प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी में भी अवध के नवाबों की अकर्मण्यता का बखूबी जिक्र किया गया है।

खाजा व भाजी के एक भाव बिकने पर भारतेन्दू को आपत्ति इसलिए है कि खाजा पूर्वी उत्तर प्रदेश में मांगलिक अवसरों पर भेंअ स्वरूप दिया जाने वाला मिष्ठान है जबकि भाजी सामान्य रूप से प्रत्येक दिन उपयोग में लायी जाने वाली वस्तु। खाजे के साथ भारतेन्दू लगातार भारतीय संस्कृति व भाषा पर हो रहे हमलों से बेखबर नहीं थे। जिसकी एक झलक वे अपनी 'निज भाषा उन्नति है सब उन्नति के मूल' नामक कविता में खिला चुके थे।

अंत में राजा को फाँसी दिलवाकर अप्रत्यक्ष तौर पर 1881 में हीं भारतेन्दु ने अंग्रेजी शासन के अंत की घोषणा कर दी थी।

प्रत्येक शासन–व्यवस्था का एक आधार–स्तंभ होता है, जिस पर वह टिकी होता है। भारत के देषी राजे–रजवाड़ों की स्वामी भक्ति पर अंग्रेजी राज बहुत हद तक निर्भर करता था। अतः प्रहसन के अंत में भारतेन्दू ने उस आधार को ही ढहा दिया है। महन्त का यह कथन इसी तरफ इषारा करता है–

"जहाँ न धर्म न बुद्धि नहीं, नीति न सुजान समाज।

ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज।।"

संदर्भ–ग्रंथ–सूची :

1. भारतेन्दु एक नई दृष्टि, लहरी राम मीणा, पृष्ठ–86
2. हिंदी नाट्य साहित्यः ब्रजरत्नदास, पृष्ठ–81
3. भारतेन्दू हरिष्चन्द्रः लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृष्ठ–96
4. आधुनिक भारत का इतिहासः ग्रोवर एवं यषपाल, पृष्ठ–208
5. भारतेन्दू के संपूर्ण नाटकः सं0– गोविन्द चातक, पृष्ठ–532
6. वही, पृष्ठ–533
7. आधुनिक भारत का इतिहासः ग्रोवर एवं यषपाल, पृष्ठ–441
8. भारतेन्दू के संपूर्ण नाटकः सं0– गोविन्द चातक, पृष्ठ–540
9. हिन्दी नाटकः डॉ0 बच्चन सिंह, पृष्ठ–36
10. आलोचना का समाजषास्त्रः मुद्राराक्षस, ने0प0हा0, पृष्ठ–13
11. वहीं, पृष्ठ–15
12. भारतेन्दु के सम्पूर्ण नाटकः सं0–गोविन्द चातक, पृष्ठ–540
13. वही, पृष्ठ–543

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Comparative analysis of etiquette as reflected in contemporary Russian and Hindi literature

PUSHPA KUMARI
Ph.D. Student, Russian,
Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Abstract: Etiquette means proper code that should be followed in order to behave properly with each other in a society. It forms the basis of a civilized society. They control the accepted behavior in a group or situations. The rules for etiquette are different in different society. Depending on various day- to-day situations and contextdifferent forms of etiquette exist.For example- etiquette in formal meeting, classroom situations, family and relations, etc. One has to follow etiquette in every situation he is in. Etiquette is categorized into two forms: Verbal etiquette and Nonverbal etiquette. This paper will study verbal and nonverbal etiquette in contemporary Russian and Hindi literature and linguistic and cultural analysis will be done in order to studythe importance and role of etiquette in Russian and Indian societies.

Keywords: *etiquette, verbal etiquette, nonverbal etiquette, gesture, body posture, facial expression, formal meeting, classroom situations, family and relations, cultural analysis, linguistic analysis, contemporary Hindi literature, Russian literature*.

Knowledge of a language is not complete without the practical knowledge of etiquette of the concerned society in which the language is spoken. A language has many facets to it. Language does not only mean system of words put together in a way to give a certain meaning, but also includes set of rules for its proper use. How to say a word, when to say a word and what to say in front of a particular person is defined in a society. These rules must be followed for better interaction and healthy dialogue. These set of rules form the basis of etiquette. Etiquette is set of rules deemed proper by a society to be followed by everybody. Crapanzanosays: "Etiquette refers generally to the practices and forms, most commonly of behaviour, that are prescribed by social and ceremonial convention or by authority". (Crapanzano, 2001, p. 627)[1] These rules can be regarding verbal communication or non-verbal communication. This leads to the classification of etiquette into verbal and non-verbal. The term ‘verbal etiquette’ is often referred as ‘speech etiquette’.

The word “etiquette” is of French origin which means “code of behaviour”. These are the rules and norms of courtesy and politeness that are followed by particular society, social class

or group. Judith Martin says "Etiquette is more flexible, less frightening, and a lot cheaper than law. It asks for voluntary compliance. Obeying the restraints of etiquette on our individual freedom to do anything legal we wish, regardless of its effect on others, is the price we pay for living peacefully, perhaps even pleasantly, in communities." (Martin, 1993, p. 351)[2]

Every language has some peculiarities as far as etiquette is concerned. These peculiarities are expressed in the use of certain words in grammatical expressions and how and when they are used. One of the basic tenets of etiquette is to show respect to the interlocutor. Thus, while addressing someone senior Russians use first name and patronym. For example, 'Aleksey Aleksandrovich', 'Natal'ya Ivanovna.' There is no equivalent of this form of address in Hindi. Hindi uses a different expression to show respect to the interlocutor. This is done by using the particle 'Ji' (जी) for which there is no equivalent in Russian. The particle Ji (जी) can be used after the first name or surname, for example: Anilji (अनिल जी), Sharmaji (शर्माजी).

Every society has its own rules for proper conduct, which includes dress code, body posture, gestures and other body movements. These rules make up the non-verbal etiquette of the society. For example, in every society, there is a proper dress code for marriage and death ceremony, formal and informal gatherings, indoors and outdoors etc. In India folding hands and saying 'pranam' or bending down and touching feet of elders is part of etiquette and is intrinsic to Indian culture.

Countries with different cultural and historical background have different ways of thinking and different geographical circumstances. These differences make the manner of communication different from each other. Thus, some society may have its own set of rules which vary to such an extent that one particular society's rule may seem inappropriate to the other society. For language to function properly one must follow rules set by a particular society and accepted by its people. As a complex social system every society creates rules of behaviour for individuals regarding proper conduct. These rules are etiquette – the system of rules of person's external culture, his/her behaviour, good manners, etc.

Etiquette exists in two forms of behaviour: verbal (speech) and non-verbal, which are closely connected to each other and are interdependent. The expressions like excuse me/prostite, sorry/izvinite, welcome/privestvuyu vas, hello/privet/zdrastvuyte, how are you/kakvashidela/ kakpozhivayeteetc. are some examples of verbal etiquette. They are used in a communication to make it cultured and polite. Whereas, touching feet of elders and folding hands while greeting in India, handshake and removing cap and bending a little forward to show sign of respect in Russia and other western countries are examples of non-verbal etiquette.

For better co-existence in a society it is important to follow the rules of a certain group or circle. Not knowing the correct forms of etiquette while communicating with someone, may raise conflicts and misunderstanding. For example a person not knowing Indian culture may come wearing black cloth in a death ceremony. His/her intentions may be good and influenced by his/her own culture, but will be deemed inappropriate in Indian society. Similarly, there are contradictions in table manners between India and Russia. In Russia a

guest has to leave a bit of the food he gets on his plate, which shows he has eaten well and has been hosted well, whereas, Indians may think that the guests did not like the food.

History of Etiquette:Over the period, every nation has contributed its peculiarity and specialty of its national character to the development of etiquette. Most of the customs remained just a national treasure, but some were accepted by other nations.

The ability to control oneself is the most important feature of etiquette. Indeed, as civilization develops, etiquette becomes a form of curbing the natural instincts and passions of man. Other common standards of etiquette meet the immediate needs for cleanliness, tidiness, i.e. in people's hygiene. The rules of etiquette are very specific and are aimed at regulating the external form of communication; they give directions for behaviour in predetermined situations. The rules of etiquette determine how a person communicates with other people, his/her behaviour, gestures, ways of greeting, table manners, etc.

Use of speech etiquette depends on various situations. These situations are very important in any conversation. In any standard communication one should always take into account the various factor like gender, age, place (formal or informal occasion), time etc.

Kapkan and Likhacheva in their book "Speech etiquette" define one or the other communication situation as etiquette by two main signs: firstly, when people entering into communication differ in their social status and roles (men and women, older and younger, friends and acquaintances, bosses and subordinates etc.), and secondly, when they build up communication taking into account these differences. Situations in which these differences are not taken into account and do not affect the communication strategy, strictly speaking, are not etiquette. (Kapkan and Likhacheva2017)[3]

In any society, there are etiquette standards that allow you to maintain a certain order in relations among people, coordinate their actions and behaviors, and eliminate possible communicative tensions. For example every society has different rules for official and non-official occasions. People also have to act differently in formal and informal interactions.It helps in establishing contact, seeking attention and set the basis for the speaker to enter into the conversation. Quite often the interlocutor finds continuing the conversation difficult after the greetings. But, etiquette helps in such situations. A well-educated person will always find a decent topic for conversation, make communication interesting and useful. Etiquette helps in binding the conversation together.

Use of etiquette is manifestation of politeness and respectful attitude towards the interlocutor. The formal situation requires an even, polite, friendly attitude towards the interlocutor. For example, it is unacceptable if the younger in position refers to the elder as "ty" in Russian.

Etiquette also has regulatory function. It accounts for regulation of people's behaviour in society. Etiquette makes people predict about others. It indicates that a person belongs to a specific social and cultural environment or strata. It determines the place occupied by a person in the social hierarchy. For example people using harsh words or cuss words give the impression of being uncultured, uneducated or belonging to lower strata of the society.

Conflict prevention is the main function of etiquette. In every walk of life, if a person follows proper etiquette, he/she reduces the likelihood of conflict with others. For example, if one accidentally touches someone, apology should be made. If one doesn't seek apology, there is a possibility of conflict.Someone might misconceive that the improper act was intentional. A well-mannered person, expressing his displeasure, will do it within the framework of decency.

As we know India and Russia share strong ties with each other for long, they have bilateral relations in various fields and therefore both the countries communicate very often. To understand each other well, one needs to understand the cultural differences between India and Russia. In the international panorama, knowledge of the norms of etiquette of a nation helps a person in establishing good connections and understanding their culture.

It is well-known that literary compositions are full of instances where we find use of proper verbal and non-verbal etiquette. Let us take examples from both of the literature to understand this.

1. -Izvinite, pozhalusyta…-progovorila Lena.

-Za chto? -ne ponyal Aleksandr.

-Za to, chtoyanichego ne mogupridumat.

-I ty izvini, - sakazal Aleksandr.

V golovunichego ne shlo. (Page. 30, Derevonakryshe, V. S. Tokareva)[4]

2.अम्मी जी, गलती मेरी है। मुझे माफ कर दीजिए।

मै कुछ न कहूँगी। डॉक्टर साहब आप ही तुम्हारा कान खींचेंगे। दूसरों के वश में पड़ा मरीज मौत से पहले ही मरा हुआ होता है। (पृष्ठ संख्या–39, ऐ लड़की, कृष्णा सोबती)[5]

Both the excerpts mentioned above have example of speech etiquette in them. They contain a typical expression of apology. The expressions'Izvinite, pozhalusyta' and 'मुझे माफकरदीजिए'are similar and have the same usage in both the languages. Although, both the languages possess more such expressions to convey the meaning, but these two remain the most common. This corresponds to the fact that some similar situation evoke familiar responses in both the cultures.

4. वह ससुर के चरणों में झुकी थी और उन्होंने सर पर हाथ रख कर कहा था, "बहूरानी, फूलो–फलो"। (पृष्ठ संख्या–1) दादी अम्मा, कृष्णा सोबती)[6]

The first underlined expressions mentioned in the 3rd example are very typical of Indian culture. The expression 'चरणों में झुकी थी' is an example of non-verbal etiquette. In Indian society, younger people bow down and touch the feet of elders as a mark of respect. The expression 'सर पर हाथ रख कर कहा' is the form of response to the bowing down and touching of feet by the young ones. This is a sign of affection and love towards the young ones. The expression 'बहूरानी, फूलो–फलो।' is blessing given by the father-in-law to his daughter-in-law. The expression is very intrinsic of Indian culture, where elders bless young ones to succeed in

life. In case of married women, the same expression even has the added blessing for bearing children. We do not find similar expressions in contemporary Russian literature.

It is clear from that speech etiquette of any two country when compared can have both similarities and differences. These similarities suggest that no matter how different the culture is there has to be some similar situations and the differences denotes the peculiarities of any culture that can't be found in others cultures.

References:

1. Crapanzano, V. (2001). The Etiquette of Consciousness. *Social Research, Altered States of Consciousness, 68*(3), 627-649. Retrieved 01 31, 2019, from https://www.jstor.org/stable/40971903
2. Formanovskaya, N.I. (1989). Rechevoi Etiket I Kul'tura Obshcheniya. Moskva: Vvsshaya shkola.
3. Formanovskaya, N.I. & Shevstova, S.I. (1990). Rechevoi Etiket. Moskva: Vvsshaya shkola.
4. Judith , M. (1993). A Philosophy of Etiquette. *American Philosophical Society.137*, pp. 350-356. American Philosophical Society.
5. Tokareva, V. S. (2007). Derevo na kryshe (sbornik). Sant- Petersburg: Azbuka-Attikus.
6. Kapkan, M. V., & Likhacheva, L. S. (2017). Delovoy etiket. Yekaterinburg: Izdatel'stvo Ural'skogo universiteta.
7. सोबती, क.(1993). ऐ लड़की, नयी दिल्लीः राजकमल प्रकाशन..
8. सोबती, क) .n.d.). दादी अम्मा, from http://www.abhivyakti-hindi.org/gauravgatha/2013/dadi_amma/dadi_amma1.htm

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

The Prose Style of Sir Walter Scott : A Critical Analysis

Subhash Kumar

During his literary career Sir Walter Scott wrote ones thirty novels. He presented the history of France, England and Scotland in a life-like and realistic manner. He could best interpret and re-construct the near past. In novels like *Waverley, Guy Mannering, The Talisman, The Antiquary, Redgauntlet, The Heart of Midlothian, Rob Roy, The legend of Montrose, The Fortunes of Nigel* and other novels, one comes across the recreation of the past times and places and people, a sort of flashback, as it were, only through Scott's use of a lively and impressionistic prose and narrative style suffered with irony, realism, humour, chivalry and emotiveness. As a historical novelist, Scott rather eschewed the use of the archaic or old fashioned language in order to make his works intelligible to the common readers of all times. Hence, the popularity and wide readership of Scott's novels. His language is very much approximate to the common speech with the common place mannerisms. Yet, his prose is heightened with poetry and with as much archaism as is necessary for creating an illusion of the past. Baker very aptly remarks that a historical novel is:

"Just a novel of manners as a contemporary might have written though in a language of today. Being fiction, it should not consist of history or pretended history. Well-known events and personages should be subordinated, exactly as they would be, if the novelist were writing of his own day."[1]

Scott was one of the world's most natural story-tellers. This art he blended with his wonderful imaginative power and past events and characters living and real for us. Rightly observes Compton-Rickett:

"Scott brought to converge upon the novel the same scattered influence of romanticism that he did in poetry; enriching its thin arid founts of inspiration with his wealth of antiquarian delight in the colour and moment of bygone times, and his intimate knowledge of Scottish life." [2]

In Scott's tales are to be found the romantic, the historical, the comedy of manners, all elements of English fiction. His was the alchemy that transmuted the 'horrid' elements into the pure gold of the creative imagination. What Richardson, Fielding and Smollett had done in holding a mirror upto the eighteenth century way of life, Scott did fir the remote centuries

of which his contemporaries knew nothing. He took names and dates from the history primer and transformed them into literature. Almost like an enchanter Scott walked through the tomb of time and quickened into life their ghostly apparitions. Although Scott had been preceded by some writers of historical fiction, yet Scott excelled them all and set a new trend of finely blending the gothic romance and the historical fiction with the flourish and miasma of his magical prose style. Not a single simile, metaphor or parallel is dispensable; so succinctly perfect and immaculately appealing is his prose style.

As one of the most vigorous and fast writers of fiction, Scott rolled out twenty-eight novels in almost eighteen years. He wrote hurriedly and without much revision because of him the total effect or the spirit of the novel mattered most. So he could not give, intentionally or unintentionally, that polish and craftsmanship, skill, structure and plot construction to his novels which Thomas Hardy or Jane Austen gave to their novels. Nevertheless, Scott, like Shakespeare and Dickens, peopled his novels with a large and variegated galaxy of characters, both historical and fictional, male and female. As a master creator of fictional characters, Scott displays a fecundity resembling that of nature itself. And he derives this fecundity from his compreh acquaintance with all sorts of men and women, of turns and twists of situations in life. In the large variety of characters, he is like Shakespeare. As in Shakespeare's plays so in his novels there is God's plenty.

Scott draws not only common men and women but also uncommon, imbalanced, eccentric beings. For Example, in *The Bride of Lammermoor*, we have witches, and in *The Heart of the Midlothian* characters such as Meg Merrilies, Madge Wildfire and her father and Edie Ochiltree who are not normal beings. What one values in Scott is the galaxy of characters, characters shaped by a historic living past, moulded by the forces of religion, politics and fanaticism on the one hand, and hospitality and social consciousness, on the other. Hospitality and selfhood are the two distinct marks of Scott's novels. Heroic figures like Claver house, humorous delineations of eccentricity accreting round a hard core of commonsense like Jonathan Oldbuck, portraits of fanaticism like Balfour of Burley and old Deans, and all the long line of surely realized figures, such as the laird of Dumbiedikes and Seargent Bothwell. Through them, the pastof a country comes to life and presented especially and humorously by turns.

Common criticisms of the *Waverley* Novels in relation to the Highlands generally fall into two broad categories. The first of these sees in Scott's work the creation of a mythic identity for the Highlands; a series of signs or emblems which fixes the region somewhat artificially in readers' minds, so that the Highlands, as Charles Withers suggests, have become both real an area of upland.

This myth includes all the trappings of what may be referred to as the 'tourist board' image of Scotland-romantic scenery, heather, claymores, bagpipes and tartan-clad clansmen-and it is this image of the Highlands which commentators frequently suggest is inscribed in Scott's fiction, creating what Edwin Muir described famously as a Scotland of 'half flesh and blood and half pasteboard'.[3] Muir's criticisms have been pervasive, and were frequently reiterated throughout the twentieth century. Andrew Hook, for example, reinforces this view

of Scott in The History of Scottish Literature, writing:

"Through Scott the aura of romance finally settled upon Scotland. Scotland's colourful and passionate history, her lochs and rivers and mountains, her loyal, valorous, and proud people, her tradition of poetry and song all these aspects of Scotland that had already acquired considerable romantic appeal now appeared in a new and totally irresistible form." [4]

It is also a view of Scott's work embodied more recently in the Scottish National Portrait Gallery's O Caledonia! exhibition in 1999 where Scott and a romantic model of the Highlands were yet again portrayed as inescapably intertwined.[5] Read in this way Scott's work is held responsible for creating an identity for the Highlands which, while good for the tourist industry, creates a set of negative cultural inscriptions which modern Scotland may now wish to shake off.

Hand in hand with this criticism goes a second and perhaps even more condemnatory reading of Scott's work. At the very moment when Scott is constructing this romantic image for the Highlands, we are told, he is simultaneously consigning its 'real' identity to the dustbin of history. 'Scott reduced Scottish history to a series of isolated narratives which could not be integrated into the fundamental dynamic of history'[6] writes Cairns Craig, and while he may suggest that by taking Scotland 'out of history' this leaves its writers free to explore 'the place where history encountered those forces which could not be made to submit to historical amelioration',[7] other writers have interpreted this aspect of Scott's work less favourably. David Richards, for example, writes:

"Scott's novels are about absent subjects; it is only when the Highlands are constructed as historically invisible that they can re- emerge as textually visible and capable of bearing the burden of a historical discourse from which they are excluded as an extinct species." [8]

The cultural markers of that 'museum of history and culture' which Scott is accused of having inscribed in our national identity arise, however, not only from the Waverley Novels, but also from his poetry, and, to an extent greater than usual for a writer, from the evidence of his life. Long before turning to novel writing Scott had already established himself as a poet, and many of the images associated with Scott and the Highlands may be attributed to works like The Lady of the Lake rather than to his fiction. Our modern perceptions of Scott's attitudes to the Highlands are also shaped by the construction of what may be seen, on the face of it, as a museum of antiquities at Abbotsford;[9] or, even more pertinently, to Scott's stage management of the visit of George IV to Edinburgh, which took place from 14 August to 29 August, 1822.

If Scott's intention was to portray Scotland in a good light, and to do so by establishing its own cultural identity, there can be no doubt that this was achieved. The poet Crabbe, for example, arrived unexpectedly to visit Scott in the midst of the celebrations, and Lockhart, Scott's biographer, writes that Crabbe was soon aware that he had landed in what appeared both geographically and symbolically another country:

"It seemed as if he had never for one moment conceived that the same island, in

which his peaceful parsonage stood, contained actually a race of men, and gentlemen too, owning no affinity with Englishmen, either in blood or in speech, and still proud in wearing, whenever opportunity served, a national dress of their own." [10]

The king clearly had similar views by the end of his visit, for even Scott was somewhat taken aback when, at a dinner given by the Magistrates of Edinburgh in the Parliament House, the King toasted, '"The Chieftains and Clans of Scotland and prosperity to the Land of Cakes"'. 'So completely had this hallucination taken possession', writes Lockhart, 'that nobody seems to have been startled at the time by language which thus distinctly conveyed his Majesty's impression that the marking and crowning glory of Scotland consisted in the Highland clans and their chieftains'.[11]

To state that in the Waverley Novels Scott is seeking to establish an identity for Scotland, and that that identity is intrinsically linked to that of the Highlands, is of course to say nothing new, for it could be argued that whatever good intentions Scott may have had, the result is that he unfortunately ties that Scottish identity to a set of empty romantic images, and simultaneously, as we have seen, consigns those images to a distant and disappearing past—lamented, but inevitably subsumed by the forces of history and progress. Such readings of Scott's work are basically variations on what became the standard twentieth-century reading expounded by Georg Lukács in his study The Historical Novel.[12] Lukács, of course, sees in Scott's work an essentially pragmatic view of society; one where oppositional conflict is resolved into a synthesis in order that society may move forward. Read thus, romance is subjugated to rationality and Highlands to Lowlands, in order that Britain may move forward into post-Union prosperity. Seen in this light, *Waverley*, for example, may be read within what has become a standard critique whereby the English hero, Edward Waverley, a youth brought up on reading too much romance, is briefly attracted to the romantic connotations of the Jacobite Highland cause (most notably encapsulated in his attraction to a woman) only to wake from this dream; to realise that the future lies with the government forces, the Hanoverian dynasty, and a more suitable woman; and to utter the much-quoted lines that 'the romance of his life was ended, and that its real history had now commenced'.[13]Lukács's reading is in many ways convincing, and it certainly played a significant role in attracting much-deserved critical attention to Scott in the second half of the twentieth century.

This approach to Scott's novels is, surprisingly, frequently overlooked. Too often the novels are read as if they are merely an extension of Scott's public persona, or as if his actions as a public figure and his statements of belief in reviews and historical writings can be unquestioningly imported into any reading of his fictional texts. While, of course, it would be ridiculous to suggest that nothing of Scott the man made its way into his fiction, it seems a mistake to assume too much when reading the Waverley Novels. Perhaps even more significantly, while as historical novels the texts strain at generic boundaries, the Tales, Romances and Novels of the Author of Waverley, are ultimately fictional, not historical texts, something which seems forgotten when, for example, Murray Pittock describes Scott's fiction as having an unfortunate 'fictional slant' beneath 'his tempting claim to be writing history'.[14]

Yet to approach the Waverley Novels via their essentially fictional nature is supported by Scott himself and indeed implicit in the anonymous publication of them. By publishing in this way, Scott seems to be deliberately putting distance between his public self and the fictional space of the texts, a process continued in the 'Chinese box' effects of the layers of Introductions, Notes and Prefaces which eventually surround the novels. It is also an approach to fictionimplicit in Scott's own description of his creative methods. In the often quoted 'Introductory Epistle' to *The Fortunes of Nigel* the Author of *Waverley* comments:

"I think there is a dæmon who seats himself on the feather of my pen when I begin to write, and leads it astray from the purpose ... If I resist the temptation, as you advise me ... I am no more the same author, than the dog in a wheel, condemned to go round and round for hours, is like the same dog merrily chasing his own tail, and gambolling in all the frolic of unrestrained freedom. In short, on such occasions, I think I am bewitched" **15**

Scott was an artist, not a scholar. There may have been more accurate interpretations of history before him, but there are no more artistic ones than Scott's. He violated chronology; he invented situations; he allowed his imagination free play with the costume cupboard and the make-up box; but in making the past come alive he was gloriously successful. He saw history as a pageant sweepingby with tableaux, characters and moments of high drama. But behind the changing sceneswas a movement, a pattern, which he discerned and tried to interpret. His view of history was Elizabethan rather than modern – he saw the great struggles as expressions of moral destiny, not as a record of events. If Scott glamourised the past, it was partly because he saw in the past centuries the values which modern life was rapidly destroying. He loved the spirit of the Middle Ages which he thought bound men in the brotherhood of Christ; he saw these bonds being cast away in the exchange for a soulless 'cash nexus,' while in the economic freedom of laissez faire he saw not individualism but indifference and selfishness.

Above all it was the poetry of distance that exercised its magic upon him, fascinated, towards a visionary magnificence, a richness and a glory. When he approached the less remote past, the attraction was warmer and more saddining. He drew near to catch the last flicker of the flames before the grey ashes cooled for ever. V.S. Pritchet is of the opinion:

"He (Scott) is certainly the first novelist to describe the political influence of religion and the peculiar significance of superstitions and legend in the mind: and he used them to illustrate the promptings of unconscious guilt and fear….; Scott does not use his apparitions and legends merely for the purpose of putting a shiver or a laugh in his story. They are there to convey hidden processes of mind."**38**

Scott boldly projected the present into the past, using his knowledge of contemporary life to humanise his old world characters. Manners may change and fashions alter, but human nature remains constant; and thus the readers have the apparent paradox that Scott's success as a historical novelist lay in his study realism that he made the men of Robin Hood's day and Shakespeare's day alive and actual by virtue of his acquaintance with the men that lived around the Tweed of his own day. He is, in many aspects, higher than his followers such as Ainsworth, James, Lytton, Kingsley, Hugo and Dumas.

References

1. Baker, E.M., *The History of the English Novel*, Vol. VI, Macmillan Co. Ltd., London, 1963, p. 209
2. Compton-Rickett, Arthur, *A History of English Literature*, Cambridge University Press, 1956 (Reprint), p. 323
3. Edwin Muir, *Scott and Scotland: The Predicament of the Scottish Writer* (London 1936), 13. 4Andrew Hook, 'Scotland and Romanticism: the international scene' in The History of Scottish Literature, gen. ed. Cairns Craig,
4. vols. (Aberdeen 1987–8) ii, 1660–1800, ed. Andrew Hook (Aberdeen 1987), 307–21, at 319.
5. *O Caledonia!:Sir Walter Scott and the Creation of Scotland*, Scottish National Portrait Gallery, 7 May–17 October, 1999.
6. Cairns Craig, *Out of History: Narrative Paradigms in Scottish and English Culture* (Edinburgh 1996), 39.
7. Ibid., 44.
8. David Richards, *Masks of Difference: Cultural Representations in Literature, Anthropology and Art* (Cambridge 1994), 121.
9. An interesting perspective on how Scott regarded his antiquarian collections is offered in a manuscript in the possession of the Faculty of Advocates, published as Reliquiae Totcosienses, edd. Gerard Carruthers and Alison Lumsden (Edinburgh 2004).
10. J. G. Lockhart, *Memoirs of the Life of Sir Walter Scott*, Bart., 7 vols. (Edinburgh 1837–8) v, 197
11. Ibid. v, 206
12. Georg Lukács, *The Historical Novel*, trans. Hannah and Stanley Mitchell (London 1962) (published originally in Russian in 1938).
13. Walter Scott, *Waverley*, Magnum Opus edition, vols. i and ii, at ii, 296; page numbers will hereafter be given in brackets after quotation.
14. Pittock, *The Invention of Scotland*, 85.
15. 'Introductory Epistle' in Walter Scott, *The Fortunes of Nigel*, EEWN vol. xiii, ed. Frank Jordan (Edinburgh 2004), 10
16. David Hewitt, *'Walter Scott', in The History of Scottish Literature* iii, The Nineteenth Century, ed. Douglas Gifford (Aberdeen 1988), 65–87, at 71. Womack, *Improvement and Romance*, 47
17. Prince Charles did not return to Britain in 1765, but he did visit London in 1750. For more detailed historical background recounted in the novel see Charles Petrie, *The Jacobite Movement* (London: Eyre & Spottiswoode, 1959), pp. 418-19; 'Historical Note to Redgauntlet' in Redgauntlet, p. 442.
18. See Bruce Lenman, *The Jacobite Risings in Britain* 1689-1746 (London: Methuen, 1980), p. 260; Colin Kidd, 'The Rehabilitation of Scottish Jacobitism', The Scottish Historical Review, 77:203 (1998), pp. 58-76.
19. Johnson, *Sir Walter Scott*, I, p. 604
20. Millgate, *Walter Scott: The Making of the Novelist*, p. 148.

21. D'Arcy, Subversive Scott, p. 126.
22. Sulkes, 'The Code of Hospitality in the Waverley Novels: A Study of Sir Walter Scott's Fictions', p. 57.
23. Murray Pittock, 'Introduction: Scott and the European Nationalities Question', in *The Reception of Sir Walter Scott in Europe*, ed. by Murray Pittock (London: Continuum, 2007), pp.1-10 (p. 3).
24. Georg Lukács, *The Historical Novel* (1937), trans. by Hannah and Stanley Mitchell (London: Merlin, 1962), p. 44.
25. Cf. Pratt, *Imperial Eyes*, p. 3.
26. See James Watt, 'Scott, the Scottish Enlightenment, and Romantic Orientalism', in *Scotland and the Borders of Romanticism* (Cambridge: Cambridge University Press, 2004), p. 99
27. Qtd. In Mundra, J.N. & Sahni, C.L., *Advanced Literary Essays*, Prakash Book Depot, Bareilly, 1965, p. 156
28. Ibid, p. 157
29. Ibid.
30. Ibid., p. 159
31. Groot, Jerome de, *The Historical Novel* (Routledge: Oxon, 2010), p. 2
32. Lukacs, op. cit., p. 42
33. Lockhart, J.G., *Memoirs of the life of Sir Walter Scott*, Bart. (5 vols; 1837-38; reprint, Adam and Charles Black, 1893), ch. Lxxxii.
34. Sutherland, John, *The Life of Walter Scott*, (Oxford, 1995), pp. 167-70.
35. Raysor, T.M. (ed.) *Coleridge's Miscellaneous Criticism*, OUP, 1936, p. 324.
36. Scott, Sir Walter, *Waverley*, Penguin Books, 1994, chapter Lxviii.
37. Ibid.
38. V.S. Pritchet, *The Living Novel*, (Bloomsbury, 1946), p. 171.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

छायावाद कवियों की सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना

पंकज
प्रवक्ता–हिन्दी
रा0उ0मा0 बाल विद्यालय, सराय रोहिल्ला, दिल्ली

छायावादी कविता में जहां एक ओर राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुयी है वहीं पर उसमें समाजिक चेतना का भी आभाव नहीं है। कोई भी जीवंत साहित्य राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना की अवहेलना करके न तो प्रासंगिक हो सकता है और न ही दीर्घजीवी हो सकता है। जयशंकर प्रसाद जी ने स्वंय कहा है कि ''जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कार्य न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द वैचित्य तथा अलंकारो पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नही बिठा सकते जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृति को स्पंदित करके उसमें जीवन डालने का उद्योग किया है। छायावादी कविता में भी सामाजिक समस्याओं के प्रति एक जागरुक दृष्टि देखने को मिलती है। तभी तो छायावादी कवि सुमित्रानदंन पंत जी ने यह कहा है कि, ''सुन्दर हे विहग, सुमन सुन्दर। मानव तुम सबसे सुन्दरतम।'' जयशंकर प्रसाद जी ने भी स्पष्ट लिखा है कि, ''जीवन की जटिल समस्या है बढ़ी जटा सी कैसी। उमड़ी है धूल हृदय में किसकी विभूति है ऐसी।'' समाज की विषम अवस्था से छायावादी कवि का हृदय हाहाकार करने लगता है। तभी तो सुमित्रानंदन पंत 'ताज' जैसी कविता लिखने में सक्षम हो पाये है। 'परिवर्तन' कविता में पंत जी ने देश के अतीत को याद करते हुये आठ–आठ आँसू बहाये है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की ''यमुना के प्रति'' कविता में भी अतीत के स्वर्णपट पर वर्तमान की विषम अवस्था को देखकर हीनता और हाहाकार के भाव को व्यक्त किया गया है। निराला जी कि ''विधवा'' 'भिक्षुक' और ''वह तोड़ती पत्थर'' शीर्षक कविताओं में आज के समाज के प्रति उनकी जागरूकता ही व्यक्त हुयी है।

'निराला जी के काव्य में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुयी है जो क्रमशः विश्वमंगल में परिणत होती गयी है। उनकी ''वर दे वीणावादिनी वर दे' कविता इसका उदाहरण है।

'जग को ज्योतिर्मय कर दो
प्रिय कोमल पदगामिनी मन्द उतर
जीवन–मृत तरू–तृण गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस–हँस निज पथ आलोकित कर
नूतन जीवन भर दो।

महादेवी वर्मा के गीतों में भी सामाजिक अथवा राष्ट्रीय चेतना की अन्तर्धारा जीवन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है तभी तो वे कहती है कि–

'मेरे हँसते अधर नहीं
जग की आँसू लड़ियाँ देखो''

सुमित्रानंदन पंत जी ने स्त्रियों की विषम अवस्था के लिये पुरूषों को दोषी माना है और अपनी कविताओं में स्त्रियों को उनके अधिकार दे देने की बात कही है।

मुक्त करो नारी को मानव युग वंदिनी नारी को
युग–युग की निर्मम कारा से जननी, सखी, प्यारी को।''

छायावादी कविता में एक ओर तो राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना देखने को मिलती है, साथ ही साथ विषम परिस्थितियों को परिवर्तित करते हुये नवनिर्माण की भावना भी विद्यमान है। जयशंकर प्रसाद जी ने ''बीती विभावरी जागरी'' जैसी कविता लिखकर सोयी हुयी राष्ट्रीय चेतना जगाने का सार्थक प्रयास किया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने ''जागो फिर एक बार'' कविता के माध्यम से जागृति का संदेश दिया है। वेदना की कवयित्री महोदवी वर्मा भी राष्ट्रीय भावना से अछूती नही रह पायी है।

चिर सजग आँखें उनीदीं
आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना
अचल हिमगिरि के हृदय में
आज चाहे कम्प हो ले
या प्रलय के आँसूओं में
शून्य अलसित व्योम रो ले
पर तुझे है नाश पथ पर
चिन्ह अपने छोड़ जाना।''

महादेवी की 'जाग बेसुध जाग' कविता भी इसी प्रकार की है। कहने का तात्पर्य है कि छायावादी कविता में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का पूरी तरह अभाव नही है। यद्यपि यह सच है कि छायावादी काव्य कल्पना प्रधान वैयक्तिक एवं रोमांटिक है किंतु उसमें राष्ट्रीय सांस्कृति चेतना व सामाजिक जीवन के प्रति भी सार्थक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। ये अभिव्यक्तियाँ केवल अभिव्यक्तियाँ नही है, इनमें जीवन का स्पन्दन हैः समाज से जुड़ने व नवनिर्माण की प्रवृत्ति भी प्रसंगानुकूल अभिव्यक्त होती गयी है। ऐसी स्थिति में छायावाद को केवल कल्पना व भावना में विचरण करने वाला काव्य न मानकर राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का स्वर गुंजायमान करने वाला काव्य भी स्वीकार करना चाहिये। यद्यपि यह सच है कि छायावादोत्तर काव्य में इस प्रकार के भाव अधिक है किंतु ऐसे भावों की नींव तो छायावादी कवियों ने ही तैयार कर दी थी।

छायावादी युग ने भारतीय जीवन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आधुनिकता की प्रक्रिया भले ही आन्तरिक शक्ति बनकर न आई हो किन्तु उसने एक नवीन चेतना को अवश्य जन्म दिया है। पुनर्जागरण तथा रूढ़ियों से मुक्ति का कार्य छायावादी युग के कवियों ने तीव्र गति से किया। इस युग के कवियों ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध सूक्ष्म भावनाओं को महत्व दिया, तत्कालीन रूढ़ियों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों के आक्षेपों के विरूद्ध भारत के प्राणवान मूल्यों की प्रतिष्ठा की। छायावादी कवियों ने भारतीय जीवन में नवीन सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना के संचार में महती भूमिका का निर्वाह किया।

छायावादी काव्य अपने काव्य व शिल्प के कारण पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की क्रमिक एवं व्यवस्थित प्रतिक्रिया है। रीतिकालीन जड़ता और निष्प्राणता, अतिरिक्त श्रृंगारिकता भारतेन्दुयुगीन प्रचारात्मकता और

द्विवेदीयुगीन नीरसता आदि प्रचलित परम्पराओं से मुक्ति का प्रयास छायावदी कवियों की रचनाओं में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ये प्रवृत्तियाँ तत्कालीन सामाजिक व राष्ट्रीय परिस्थितियों की देन है। छायावाद की विचारणा में अद्वैत दर्शन, धर्म के क्षेत्र में मानववाद, राजनीति में विश्व वंधुत्व, साहित्य में कलावाद और समाज में समन्वयवाद जैसी प्रवृत्तियाँ मिलती है। छायावाद सर्वात्मवाद का पोषक रहा है, वही धर्म के क्षेत्र में यह मानव का गुणगान करता हुआ मानवतावाद की ओर बढ़ता चला गया है। 'निराला' के 'बादलराग' में भारतीयों की आत्मा में जागृति का मंत्र फूँका गया है तो 'जागो फिर एक बार' में समग्र राष्ट्र के प्रति आह्वान किया गया है। जयशंकर प्रसाद जी ने तो कामायनी में लिखा भी है–

औरो को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर दो सबको सुखी बनाओं।।

डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में, इस कविता का गौरव अक्षय है। उसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति काव्य ही कर सकता है। ''यद्यपि छायावादी कवियों की सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना का फलक उतना विस्तृत नही है परन्तु छायावादी कवियों ने अपने ढंग से अपनी सीमाओं के बावजूद सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना को अपनी कविता में वाणी दी है।

निराला ने अपनी 'बादलराग' कविता में जीर्ण शीर्ण कृषक के माध्यम से जागरण का संदेश मुखरित किया है–

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ए विप्लव के वीर।

सुमित्रानंदन पंत ने नवीन चेतना का आह्वान इस प्रकार किया है–

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण।
हिमताप पीत मधुवात भीत, तुम बीत राग जड़ पुराचीन।।''

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहासं स0 डा0नगेन्द्र, मयूर पेपर–बैक्स नोएडा 2007 ई0
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2007 ई.
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–2010 ई.
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'–बच्चन सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2009 ई.
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास डा. हृदयेश मिश्र व शिव–लोचन पाण्डेय, भारती–भवन पटना 2006 ई0

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Advertisement is essential for Marketing System of Agro-Industries in Bihar

Arti Jha
Assistant Prof.
Department of Commerce,
Madhepura College Madhepura, B.N.M.U.

The success of our agriculture business is dependent on the effective use of strategic marketing. Agricultural marketing is beneficial for increasing farm income, eliminating economic waste, widening markets and more.

Agricultural advertising is a vital component for the success of our business. The business, trade and investment scenario in Bihar is neither so good, nor so bad. What Bihar needs today is aggressive marketing of its claim as a good investment destination. Bihar is the eastern state of Indi, bordered by Nepal in the North, Uttar Pradesh in the west and Meghalaya in the east. Its third largest state by population after Uttar Pradesh and Maharashtra with a serration of 918. On 15th November 2000, Southern Bihar was ceded to form the new state of Jharkhand. Agriculture is still an important sector in Bihar.

"Advertising is a powerful communication tool directed towards specific target customers in order to carry the messages regarding a particular product, service of ideas, meaningfully and persuasively with a view to achieve certain specific objectives such as, to establish brand loyalty, expansion of the expansion of the existing markets, increased sales volume, etc."

Advertising is multidimensional. It is a form of mass communication, a powerful marketing tool, a component of the economic system, a means of financing the mass media, a social institution, an art form, an Instrument of business management, a field of employment and a profession.

The term advertising originates from the Latin word 'adverto', which means to turn round. Advertising thus denotes the means employed to draw attention to any object or purpose. In the marketing context, advertising has been defined "as a paid and non-personal form of presentation and promotion of ideas, goods or services by an identified sponsor". There is not only an identified sponsor, but also an identified media and message behind every advertisement. Through an advertisement, the

advertiser intends to spread his ideas about his products/offerings among his customers and prospects. Popularization of the products is the basic aim of the activity.

The basic significance and dimension of advertising of a concern is to increase its sales volume and profits. However, theses can be achieved by adopting a variety of strategies, the principal objectives of an effective advertising system is related to increase the sales volume by multiplying product uses or increasing the unit of purchases, to facilitate launching a new product or a new brand in the market, to support the existing sales force of the organization in order to make the job sales personnel less difficult and more efficient, to get more access to such customers who are otherwise inaccessible on account of topographical or transportation barriers, to enter a new market segment which are hitherto untapped, to better the dealer relations in order to argument the indirect distribution, to augment the industry's sale for the betterment of the entire society.

Advertising broadens the knowledge of the consumers. With the aid of advertising, consumers find and buy necessary products, without much waste of time. This speeds up the sales of commodities, increases the efficiency of labor in distribution, and diminishes the costs of selling. It is an accepted fact that without market stimulus of heavy advertising, consumers might have waited another sixty years for the product evaluation that took place in less than ten years- it took after all over sixty years from the invention of the safety razor before the first acceptable stainless steel blades appeared in the market. These words are more than enough to testify the potentialities of advertising in the field of modern marketing system. The main benefits of advertising may be narrated as follows:

(a) It increases sales volume by creating attraction towards the product.

(b) It helps easy introduction of new products into the markets by the same manufacturer.

(c) It also helps to create an image and reputation not only of the products but also of the customers. In this way, it creates the goodwill for the manufacturer.

(d) Retail price maintenance is also possible by advertising where price appeal the promotional strategy.

(e) It helps to establish a direct contact between manufacturers and consumers.

(f) It leads to smoothen the demands of the product. It saves the product from seasonal fluctuations by discovering new and new of the product.

(g) It creates a high responsive market and thereby quickness the turnover that results in lower inventory.

(h) Selling cost per unit is reduced because of increased sale volume. Consequently, product overheads are also reduced due to mass production.

(i) Advertisement gives the employees a feeling of pride in their jobs and to` be in the service of such a concern of repute. It, thus inspires the executives and workers to improve their efficiency.

Rural marketers need to cast their net wider though advertisement there are indications that there might be a slowdown in rural consumption while rural incomes continue to rise, the rate of growth has slowed and marketing is already seeing signs of demand plummeting in urban centers.

The primary objective of the study will analyze to role of advertisement in rural marketing and its opportunities, problems and prospects. The study will be mainly based on:

(i) To analyze the role of advertisement in rural marketing in order to identify the significant features.

(ii) To estimate and determine the advertisement for rural markets.

(iii) To taste the empirical relationship between advertisement and rural markets and rural people.

(iv) To analyze the impact of globalization and advertisement on rural markets in India.

References:

(i) Fundamentals of Marketing, William J. Stantion, Mc. Graw- Hill, 1981

(ii) The Business Planning Guide:- Creating a plan for Success in Your own Business, 8th Edition.

(iii) Wiley and Sons, 1985

(iv) Wicks A. (1989), "Advertising research – an elicit view from the UK", Journal of the Market Research Vol, 31 N04 pp 527-35

(v) Ogilvy, D. (1963), Confessions of an Advertising Man, Ballantine Books, New York, NY

(vi) Messner, F.R. (1963), Industrial Advertising- Planning, Creating, Evaluating and Merchandising It more Effectively, Mc Graw- Hill, New York, NY

(vii) Krugman, H.E. (1965), "The impact of television advertising learning without involvement", Public Opinion Quaterly Vol. 29 No.3, PP–349-56.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Darama Kiya Hai?

ڈرامہ کیا ہے ؟

ڈاکٹر عابدہ نازؔ

Dr. Abda Naz
G.D. College Begusarai

ڈرامہ کے مختلف نام ۔(۱) رہس(۲)ناٹک(۳)جلسہ (۴)نائیا(۵)کھیل

یہ نام ڈرامہ میں عموماً مستعمل رہے ہیں یہ وہ اصطلاحات ہیں جو مختلف ادوار میں اردو نثر میں اس صنف کو دی گئیں ۔ انگریزی میں ''لفظ ڈرامہ انگریزی زبان کے لفظ Draw''سے ماخوذ ہے جس کے معنی ہیں کر کے دکھانا۔یہ وہ امتیازی خصائص ہیں جو دراصل ڈرامے کی صنف کو افسانوی نثر یعنی داستان ناول اور افسانے سے ممیز کرتے ہیں ۔آپ ہم جانتےہیں کہ داستان ناول اور افسانے میں کہانی بنیادی محرک کے طور پر سامنے آتی ہے یہ کہانی ہی ہے جو دراصل کسی نثر پارے کو افسانوی نثر میں تبدیل کرتی ہے وہ کبھی ہمارے سامنے ناول کے روپ میں آتی ہے تو کبھی افسانے کے طرز پر آجاتی ہے ۔ہم کبھی دیکھتے ہیں کہ طویل داستانوں کا روپ دھار کر ہمارے سامنے کہانی نت نئے طلسمات دکھاتی ہے ۔ڈرامہ بھی کہانی کے بغیر مکمل نہیں ہوتا ۔فرق یہ ہے کہ ڈرامہ پڑھنے کی نہیں دیکھنے کی چیز ہے ۔ڈرامہ ضابطہ تحریر میں لانے سے پہلے کر کے دکھانےکی چیز ہے اور یہی وہ بات ہے جو افسانوی نثر سے ڈرامے کی صنف کو الگ کردیتی ہے ۔ورنہ داستان ہو ،ناول ہو ،افسانہ ہو ،ڈرامہ ہو،یا فلم ہو بنیادی عنصر داستان یعنی کہانی ہے ۔کوئی بھی صنف کہانی کے بغیر مکمل نہیں ہوتی ۔

ہم ڈرامہ کے فن کے حوالے سے بات کریں تو دیگر مختلف علوم کی طرح ڈرامے کے فن کے حوالے سے بھی ہمیں پہلی روشنی اہل یونان سے ملتی ہے ۔

ارسطو نے افلاطون کے جب مختلف افکار کا جواب دیا یعنی جب افلاطون نے اپنی کتاب Republicیا جمہوریہ میں یہ کہا کہ شاعر کیوں کہ لوگوں کے جذبات کو بر انگیختہ کرتے ہیں ۔جذبات کو انتہا کی طرف لے کر جاتے ہیں تو ارسطو نے اپنی ایک کتاب جس کا عربی میں ترجمہ کیاگیا ۔''بوطیقا''کے نام سے بعد میں یہ کتاب اردو میں رواج پا گئی۔بو طیقا میں ارسطو نے ڈرامے کے مختصر عناصر کا تجزیہ کیا ہے اور ہمیں بتایا کہ دراصل کون سا اور کس طرح کا ڈرامہ کامیاب ڈرامہ ہے ۔

ڈرامے کے بنیادی طور پر ہم تین عناصر شمارکرا سکتے ہیں ۔ہم یہ کہہ سکتے ہیں کہ تین وہ بنیادی عناصر ہیں جو ڈرامے کے لئے لازمی ہیں ۔پلاٹ ۔کردار ۔مکالمہ

پلاٹ : پلاٹ واقعات کا تسلسل ہے ۔اس کے ذریعہ کہانی آگے بڑھتی ہے اور اگر کسی ڈرامےکا پلاٹ مضبوط نہ ہو تو دراصل یہ صنف افراط وتفریط کا شکار ہو جاتی ہے ۔واقعات بکھر کر رہ جاتے ہیں ایک ڈرامہ نگار کو یہ بات ذہن میں رکھنا پڑتا ہے کہ یہ اگر اسٹیج کے لئے لکھا جارہا ہے تو ظاہر ہے کہ واقعات کا تسلسل ضرری ہے ۔

کردار :کردار نگاری پیش کرتے ہوئے یہ بات ذہن میں رہنی چاہئے کہ ڈرامے کے کرداروں کا لباس، ان کی شخصیت یا ان میں آنے والا جوتغیر ہے وہ فی الفور ہونا چاہئے ۔اگر وہ اسٹیج ہے تو اسے تبدیل کیا جاسکے اور اگر

کیمرہ ہے تو اس کے لئے کم از کم وہ ضروریات ہم باہم پہنچا سکیں جو اس کے تاثر کو بدلنے کے لئے ضروری ہیں ۔

ڈرامے کا ارتقاء : اگر ہم یہ کہیں کہ ڈرامہ دنیا ئے ادب کی قدیم ترین صنف ہے تو یہ بات غلط نہیں ہو گی ۔حضرت انسان روز ازل ہی سے تقلید اور نقل کرنے کا شائق رہا ہے ۔ہم جانتے ہیں کہ پیدا ہونے والا بچہ جب عہد طفولیت سے گذرتا ہے تو دراصل یہ نقل کرنے کی صلاحیت یا حرص ہے جواسے اس بات پر آمادہ کرتی ہے کہ وہ اپنے والدین ،اپنے بہن بھائیوں اور اپنے گردونواح کے لوگوں کی طرح حرکات وسکنات کرنا سیکھتا ہے ،وہ بولنا سیکھتا ہے ، وہ زبان جسے آپ اور میں آج اگر سیکھنے بیٹھیں تو ہمیں بہت مشکل ہو گی ،اگر کوئی بھی زبان جو ہمیں نہیں آتی تو ہمارے لئے اس کو سیکھنا مشکل ہوگا لیکن آپ دیکھئے کہ بچہ دیکھتے ہی دیکھتے وہ زبانیں بہت تیزی سے سیکھ لیتا ہے،جو ہم بڑے ہو کر مشکل سے سیکھتے ہیں کیوں کہ نقل اورتقلید کی صلاحیت دراصل بچوں میں بڑوں سے کہیں زیادہ ہو تی ہے ۔انسان نقل کرتے ہوئے دیکھنا اور بذات خودنقل کرنا جبلی طور پر پسند کرتے ہیں اور یہ بات آج سےنہیں بلکہ انسان میں ازمنہ قدیم سے ہے۔

نقل کرنے کے حوالے سےڈرامے کاآغاز تو شاید ہزاروں سال قبل ہو گیا تھا اور اس وقت ہم یہ بھی نہیں جانتے تھے کہ نقل کا یہ فن جو انسان نے فطرت سے حاصل کیا ہے ۔بالآخربعد ازاں جاکر باقاعدہ طور پر ایک صنف کی صورت حال اختیار کر جائے گا ۔بہر حال اگر ہم ڈرامے کے فن کے حوالے سے بات کریں تو فنی طورپر ڈرامے کاآغاز اہل یونان سے ہوا جہاں مسفوکلیز۔سکائلز۔یور پیڈیزاور ایسے دوسرے بہت سے ڈرامہ نگار ہمارے سامنے آئے اور پھر بعد ازاں ارسطو نے باقاعدہ طور پر بوطیقا میں ڈرامے کےمختلف عناصر کی وضاحت کر کے ڈرامے کو ایک صنف کے طور پر باقاعدہ ابھارنے میں اہم کردار ادا کیا ۔چھٹی صدی قبل از مسیح میں ڈرامہ اہل یونان میں آیابعد ازاں اس کے اصول وضوابط کا تعین کیا گیا ۔افلاطون نے تو اس کو بیان کیا تھا اس کے نتیجے میں ارسطو کو یہ موقع ملا کہ وہ اس ڈرامے کو ایک جداگانہ فن کے طور پر ہمارے سامنے لائے اور پھر بعد ازاں آہستہ آہستہ یہ فن اٹلی میں پہنچا پھر جرمنی پہنچا اور دسویں سے بارہویں صدی عیسوی کے دوران یہ فن سپین ،فرانس اور انگلستان میں پھیل گیا اور یوں یورپ میں ڈرامے کا باقاعدہ طور پر آغاز ہو گیا اگر ہندوستان کی بات کی جائے تو ہندوستان میں ڈرامہ اہل یورپ سے نہیں آیا عموماًلوگ یہ بات کرتے ہیں کہ ڈرامہ یا دوسری بہت سی اصناف مثال کے طور پر افسانہ نگاری یا مضمون نویسی یا ایسی دوسری اصناف دراصل ہم لوگوں نے اہل یورپ سے حاصل کئےہیں ۔لیکن حقیقت یہ ہے کہڈرامہ باقاعدہ طور پر اہل یونان کی دین ہیں ۔

قدیم زمانے میں جو ڈرامے لکھے گئے اس میں گیت اور سنگیت کی بھر مار ہوتی تھی اور اس نے ڈرامے کی تکنیک کو متاثر اور مجروح کیا ۔مگر اس سے دو باتیں واضح ہو تی ہیں ۔اول یہ کہ سنگیت ہی کی خصوصیت تھی جس نے اپنی منظومات اور اپنے رقص کی بدولت یونانی المیہ کو انفرادیت بخشی ۔ثانیاًیہ کہ ڈرامے کا تمام عمل اول سے آخر تک کورس کی موجودگی میں پیش ہوتا تھا اور ایک ہی جگہ ایک ہی مقام پر رہ کر کیا جاتا تھا ۔لہذا وقت اور مقام کی دونوں حدیں ڈرامے کی تعمیر کے لئے قابل قبول اصول کی حیثت اختیار کر گئیں اگر وقت کی پابندی وجود میں آئی تو اس کے لئے کورس کی موجودگی ایک واضح وجہ تھی ۔

اگر ہم عہد الزابیتھ اور شیکسپیئر کے ڈراموں کا جائزہ لیں تو معلوم ہو گا کہ اس وقت منظر عام کو پیش کرنے والے سیزی کے متحرک پردے رائج نہیں تھے اور اسی لئے ڈراما نگار کو منظر بعد منظر مخصوص مقام متعین کرنے کی ضرورت نہ تھی ۔اسٹیج کے زیب وزینت سے ڈراموں کی حرکت میں تیزی اور سرعت آتی ہے ۔اگر اس وقت کے اسٹیج کو نظر میں رکھیں تو منظر میں ردو بدل ممکن تھا ۔ یہی وجہ ہے کہ قدیم ڈرامے موجود ہ ڈرامے سے بالکل ہی مختلف نظر آتےہیں ۔آج کے دور میں اگر ہم شیکسپیئر کے ڈراموں کو اسٹیج کرناچاہیں تو بہت سی دشواریوں کا سامنا کر نا پڑے گا ۔

اردو میں ابتدائی ڈراموں کی نمائش سے اس وقت کی کم مائیگی کا بھی پتہ چلتا ہے ۔امانت لکھنوی نے ''اندر سبھا''لکھا ۔پھر اس کی پیروی میں دوسرے لوگوں نے کئی ڈرامے لکھے ۔

اندر سبھا:ایک منظوم ڈراما ہے جسے اردو کا سب سے پہلا ڈراما تسلیم کیا گیا ہے ۔شمالی ہند میں سب سے پہلے ۱۲۶۷ھ میں مداری لال کا ''ماہ منیر''لکھا گیا اور دوسری مرتبہ عام نمائش ''اندرسبھا''کی ۱۲۷۰ھ میں ہوئی ۔''پارسی وکٹوریہ ناٹک منڈلی ''نے اردو میں ڈرامہ سہراب ورستم لکھاجو بہت مقبول ہوا ۔پھر گجراتی سے ہی ترجمہ کردہ ''خورشید''لکھا گیا۔اس طرح دوسرے ناٹک گروپ والوں کو بھی اردو میں ڈرامہ لکھنے کا شوق ہوا جس کے لئے اردو داں ڈراما نویس منشی کے طور پر ملاز م رکھے گئے ،جن میں محمود میاں رونق بنارسی ،حافظ عبد اللہ حسینی ،میاں ظریف ،مرزا نظر بیگ ،کریم الدین مراد علی اور الف خاں حباب کے نام مشہور ہوئے۔ان لوگوں کی تالیفات میں طلسمات ،دیوپری اور مافوق الفطرت عناصر کی بہتات ہے ،اس وقت مکالمے تقریباًسب مقفی اورمسجع ہوا کرتے تھے ،زبان اور فن کی بہت سی خامیاں بھی ہوتی تھیں ۔الف حسن خاں نے یہ مشورہ دیا کہ ڈراما میں لکھنو کی معیاری زبان استعمال کی جانی چاہئے ۔

مہدی حسن احسن ؔنے ڈراما میں اصطلاحات کا بیڑا اٹھایا اور زبان اور فن کے لحاظ سے ڈراما نگاری کو فروغ بخشا ۔انہوں نے ''چندراوتی ''تحریر کی جس سے وہ مشہور ہوئے ،آغا حشر کاشمیری ان کے معاصرین میں ہیں ،جنہوں نےفنی طور پر ڈراما کو وسعت بخشی ،پر زور مکالمےلکھے ،جاندار کردار کی تخلیق کی ،ڈراما نگاری کو مافوق الفطرت عناصر سے پاک کر کے ہمارے زندگی کے اجتماعی مسائل کو جگہ دی ۔ڈرامے کو تعلیم یافتہ لوگوں کے دیکھنے کے لائق بنایا ۔

آگے چل کر امتیاز علی تاج کے ڈرامے ''انار کلی ''نے اردو ڈراما نویسی کے باب میں ایک انوکھا اضافہ کیا اور ڈرامےکےاسٹیج کو حبیب تنویر نےاستحکام بخشا۔ان کا مشہور زمانہ ڈراما ''آگرہ بازار''آج بھی یادگار ہے ،محمد حسن نے بھی کئی اہم اردو ڈرامے تحریر کئے ۔ان کے ڈراموں میں ''ضحاک ''کو بہت شہرت ملی ،غرض کہ اس طرح ڈرامہ کا سفر ترقی کی طرف گامزن ہے ۔

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

समकालीन कथा और आलोचना

डॉ. अमल सिंह "भिक्षुक"
हिन्दी प्राध्यापक,
ईश्वर दयाल भागवत प्रसाद सिंह महाविद्यालय,
गढ़नोखा, रोहतास (बिहार) भारत

जाहिर है कि लम्बी अवधि तक हिन्दी आलोचना केवल कविता या किन्हीं सैद्धांतिक चर्चाओं के आकर्षण–पाश में आबद्ध होकर लिखी जाती रही है। वह कथा–साहित्य के बदलते परिदृश्य की भावभूमि को नज़रअंदाज करती रही है। विडम्बना यह थी कि आलोचक कविता या सिद्धांतों की ऊँची चोटियों से नीचे उतरने में अपनी इनसेल्टी/तौहिनी समझ रहे थे। पर साम्प्रतिक दौर में उपन्यास और कहानी की प्राणवत्ता और उसकी सक्रियता ने मज़बूर कर दिया है कि हिन्दी आलोचना अब कविता या किन्हीं सैद्धांतिक चर्चाओं तक ही सीमित न रहे, उससे चिपकी न रहे, वह आकर्षण–पाश से मुक्त होकर बाहर आए।

शुरू–शुरू में जिस तरह स्वच्छंदतावादी और छायावादी कवियों ने अपने कविता–संकलनों की लम्बी–लम्बी भूमिकाएँ स्वयं लिखी थीं, ठीक उसी तरह इस दिशा में कहानीकारों ने भी स्वयं पहल की, आलोचना के क्षेत्र में एक नई शुरूआत की। जब अपनी रचनाओं की व्याख्या–विश्लेषण करते हुए कथाकारों ने अपनी रचना–प्रक्रिया पर प्रकाश डालना स्वयं शुरू की, तो हमारे सामने एक और रूप आलोचना का आया। उन्होंने आलोचक को बिचौलिया मानने से इनकार ही नहीं किया, बल्कि उसकी दलाली/एजेन्टी /कमीशनखोरी पर से उनका विश्वास ही उठ गया। वे अपने–अपने दृष्टिकोण पाठकों के समक्ष स्वयं ही रखने लगे, अपने विचारों को स्वयं ही प्रेषित करने लगे। उनका दृष्टिकोण /विचार पुस्तकों के रूप में छपने लगे। इस दिशा में कार्य करने वाले कथाकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, सुरेन्द्र चौधरी, शिवप्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं।

बकौल डॉ. प्रेमशंकर, 'पर जब बात आगे बढ़ी, तो रचनाकारों में एक 'तल्खी' दिखाई देती है, जिसमें उसका दर्द यह भी था कि जो काम आलोचना को करना था, वह उसे करना पड़ रहा है, किसी अनिवार्य विवशता में। आलोचकों का कमाल यह है कि वह इतने मौलिक हो गए हैं कि वे हममें वह तलाश रहे हैं जो यहाँ है ही नहीं।'[1] उनका मानना है कि आलोचना का एक परिदृश्य यह कि हम पहले किन्हीं आशयों पर पहुँचे हुए होते हैं। हमारा तो रंगीन चश्मा है, उसी से हमें देखना–समझना है। भाड़ में जाए आलोचना की तटस्थता या उसकी रचना–यात्रा। हमें तो अपने शिविर बनाने हैं और इसके लिए पारस्परिक प्रशंसा या 'म्युचुअल एडमिरेशन' जरूरी है। इसे ध्यान में रखकर हम अपना खाता–बही खोले हुए हैं और गलत–सही इन्दराजकरते है। जब जमाना दल–बदल और पाक्षिक/साप्ताहिक मैत्री का हो, तब तो स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। हम किसी प्रतिगामी से हाथ मिलाकर उसे अपने अखाड़े का पट्ठा सिद्ध करना चाहते हैं और सही 'जेनुइन' लेखक को लतियाने की भूल करते हैं। 'गलत जगह समझौता, गलत जगह लड़ाई, 'हिन्दी में सिर फुटौवल, लतखोरी का नज़ारा आलोचना को अप्रामाणिक, अविश्वसनीय बनाता है। हमारे राष्ट्रीय चरित्र के संकट की एक तस्वीर हिन्दी–आलोचना में भी देखी जा सकती है।[2]

बहरहाल, कथा–समीक्षा की एक पद्धति डॉ. नामवर सिंह ने निकालने की चेष्टा की है। राजेंद्र यादव, धनंजय वर्मा आदि ने आरोप लगाया है कि वे 'कविता' के आलोचक हैं, 'कहानी' की ओर तो टहलते हुए आ निकले। किन्तु इस आरोप में अधिक दम नहीं है। डॉ. नामवर सिंह के विषय में परमानन्द श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है कि – 'अधकचरे मार्क्सवादियों की तरह कारणतावाद के सहारे रचना में समाज या सामाजिक संघर्ष जाँचने में नामवर की दिलचस्पी नहीं है।'[3] वे सामान्य और विशेष, देश और काल के द्वंद्व को पहचानने वाले आलोचक हैं।[4] हालांकि उनमें जमाने–उखड़ने की मसीहाई प्रवृत्ति खूब है, अन्तर्विरोधों की भी कमी कम नहीं है, मार्क्सवादी आलोचना को कोरे समाजशास्त्रीय विश्लेषण से बाहर निकालने, आलोचना को टटकी किन्तु सार्थक शब्दावली देने तथा नयी कहानी को नए तरीके से जाँचने के लिहाज़ से उनकी समीक्षात्मक उपलब्धियाँ कमतर नहीं हैं।[5] नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा के कथा–साहित्य को वजनी माना है; किन्तु रामदरश मिश्र ने उनको उल्लेखनी कथाकार स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि उनका लेखन रचनात्मक स्तर पर लिखने के लिए बाध्य नहीं करता है। राजेंद्र यादव की 'प्रतीक्षा' और 'रेणु' की 'रस–प्रिया' की तुलना में उन्हें 'रस–प्रिया' अधिक मार्मिक–सहज लगती है। उनकी समीक्षा में केवल 'कथ्य' ही नहीं, 'रूप' की मीमांसा का दर्शन भी होता है। शायद इसीलिए उन्हें 'अनुभूतिहीन, कथ्यहीन, संवेगहीन, निरातंत्र कौशल' आश्वस्त नहीं कर पाते। वे कथ्य के खोखलेपन को कथन–कौशल से ढँकने के विरोधी हैं।[6] डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय भी 'कथ्य' को महत्त्व देते हुए 'कथ्य के आंतरिकीकरण' को कथा–रचना की पहली शर्त मानते हैं।[7]

जब कथा–आंदोलन जोर पकड़ने लगा, तब उसको पत्र–पत्रिकाओं में और गोष्ठियों में बहस होने लगा। इस मुद्दे पर बहस–मुबाहसे का सिलसिला लम्बा खींचता चला गया। इस संदर्भ में देवी शंकर अवस्थी, इन्द्रनाथ मदान, धनंजय वर्मा, परमानंद श्रीवास्तव, मधुरेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने स्वीकार किया कि कविता के अलावे अन्य विधाओं में समकाल की समीक्षा की सक्रियता उसके विस्तार की सूचना है।

यों तो प्रत्येक कला न्यूनाधिक अपने युग की छाप लिए होती है जिसमें वह रची जाती है; किंतु महान् कला अपने वक़्त की स्पन्दन से गहराई के साथ जुड़ी रहती है। वह काल–सिद्ध होती है, काल–बद्ध नहीं। ऐसी कला अपने समय की सीमाओं का अतिक्रमण भी करती हैं। यह अपने वक़्त की हरारत से जितना अधिक चिपकी रहती है, उसमें अपने युग की सीमाओं का अतिक्रमण करने की शक्ति अधिक होती है। इसी तरह हर रचना को अतिक्रमण करना चाहिए। यह अतिक्रमण ही रचना को एक अलग पहचान देती है। इस अतिक्रमण के बाद ही आप नये मार्गों की तलाश करते हैं। यदि आप पुरानी चीजों का अतिक्रमण नहीं करेंगे तो नयेपन की रचना नहीं कर सकते। ऐसा नहीं कर पाते तो अतिक्रमण का कोई अर्थ नहीं है। कई बार यह जरूरी होता है कि चीजों को 'लार्जर दैन लाइफ' प्रस्तुत किया जाए या जीवन को विस्तारित किया जाए। ऐसे में आलोचक एक खास किस्म की चीजें पढ़ते–पढ़ते रूढ़ हो चुके होते हैं, उन्हें परेशानी होती है। पठनीयता की भी अपनी रूढ़ियाँ होती हैं और कहानियाँ इन्हीं रूढ़ियों की शिकार बन जाती हैं। आलोचक कई बार नयेपन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है। हमारे भाषा–साहित्य का सबसे बड़ा संकट है यह। हिन्दी–साहित्य में कथा–समीक्षा का विकास न होना, इसी संकट का प्रतिफल माना गया है। सच तो यह है कि एक ही उपकरण से प्रत्येक कहानी को विश्लेषित नहीं किया जा सकता। कारण कि हरेक कहानी अपने लिए स्वतंत्र आलोचकीय उपकरणों की मांग करती है।

वैसे तो कोई भी समीक्षक किसी भी रचना पर अपने मन मुताबिक टिप्पणी करने के लिए स्वतंत्र है। प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में अपनी–अपनी जमीन, अपना–अपना आसमां होता है। एक ही घर के दो व्यक्ति एक जैसे नहीं लिख सकते। यदि लिखेंगे भी तो अलग–अलग 'टोन' में। दृष्टांत स्वरूप, मृदुलागर्ग और मंजुल भगत को ही लें। दोनों सगी बहने हैं। बावजूद इसके, दोनों की रचनाओं में

भाव–भाषा भिन्न कोणों पर केन्द्रित रहती हैं। आज जो कथाएँ लिखी जा रही हैं, उन पर हो रही फुटकर समीक्षाएँ पर्याप्त नहीं हैं। यह कहने में संकोच नहीं कि कथालोचना पर अभी हिन्दी में गंभीर कार्य नहीं हुआ है। यह क्षेत्र खाली है। यहाँ एक बड़ा शून्य है। मज़ा यह है कि फुटकर टिप्पणियों की तरह जो समीक्षाएँ छपती रही हैं, वह रचनाकारों के आत्मीय संबंधों पर आधारित होती हैं। ऐसी समीक्षाएँ रिव्हयू हैं, आलोचना नहीं। आलोचना–कर्म केवल समाचार पत्रों–पत्रिकाओं के रिव्हयू कालम में छपे नाम देखने की उत्कट अभिलाषा रखने वाले लोगों के बस की बात नहीं है। अतएव, रिव्हयू लिख देने से कोई आलोचक नहीं हो जाता। ऐसा करने से पाठकों को रचना की सही पहचान और परख नहीं हो पाती। कभी–कभी गंभीर पत्रिकाओं में भी सतही, सपाट किस्म की पुस्तकों की लम्बी–लम्बी समीक्षाएँ नज़र आती हैं और कभी–कभी महत्वपूर्ण पुस्तकों का कोई नामलेवा ही नहीं मिलते। साहित्य में पूर्वाग्रहों–दुराग्रहों से बचने की जरूरत है। कुछ आलोचक कथा साहित्य का निरपेक्ष मूल्यांकन करने ही इच्छा जरूर रखते हैं, किंतु इसके लिए संभावनाशील रचनाकारों पर जमकर काम करने की योजना नहीं बना पाते।

मधुरेश ने अपने को केवल कथा–समीक्षा तक ही समेट लिया है। भले ही वे सामाजिक प्रतिबद्धता के हामी हैं, लेकिन इसे स्वीकारते नहीं हैं आरोपित मूल्य के रूप में। उनकी रचना में सामाजिकता का आग्रह है, इसलिए कि जहाँ यह दृष्टि नहीं, वहाँ विकृतियों–कुंठाओं की अस्पष्ट, अर्थहीन एवं निष्प्रयोजन अभिव्यक्ति के खतरे अधिक हैं। उन्होंने उन कहानियों को सराहा है जिनमें 'सामाजिक विसंगतियों के प्रति निर्भय प्रतिरोध की भावना और नये सामाजिक मूल्यों की तलाश' हैं। उन्हें वह कहानी आश्वस्त करती है जो व्यवस्था का विरोध और आम आदमी की पक्षधर होती है। उनका मानना है कि केवल जुलूस, भीड़ और दिशाहीन आंदोलन को लेकर आम आदमी की कहानी नहीं लिखी जा सकती। उनका यह तर्क निर्भ्रांत है। उन्होंने रचना के अनुशीलन में 'विचारधारा' को महत्वपूर्ण माना है और उसकी संरचना पर भी विचार व्यक्त किया है। दो टूक निर्णयशीलता उनकी समीक्षा की विशेषता है, किंतु 'उच्छेदवादी' मनोवृत्ति का उनमें अभाव है।

बकौल अखिलेश, "कथा–संसार का इतना समृद्ध एवं उर्वर परिदृश्य बहुत दिनों बाद उपस्थित हुआ है। एक साथ इतनी कथा–पीढ़ियाँ इतनी उत्कृष्ट लेखन कर रही हैं कि यह विरल है। श्री लाल शुक्ल, कृष्णा सोबती से लेकर युवतम पीढ़ी तक इस समय सक्रिय हैं। यह कितना अनोखा दृश्य है कि उदय प्रकाश, संजीव, असगर वज़ाहत, अलका सरावगी, शिवमूर्ति, गीतांजलि श्री जैसे कथाकार बेहतरीन रचनाएँ लेकर आ रहे हैं, तो दूसरी तरफ शशिभूषण द्विवेदी, पंकज मिश्रा, नीलाक्षी सिंह जैसे युवा रचनाकारों की कहानियाँ, प्रतिभा के विस्फोट के रूप में देखी जा रही है।"[8] लेकिन कर्मेन्दु शिशिर का मानना है कि समकालीन कहानी का परिदृश्य बहुत ही अस्पष्ट अवधारणा है। हिन्दी में अभी प्रेमचंद से चर्चा शुरू होकर अपवाद में उदय प्रकाश तक पहुँचकर खत्म हो जाती है। कई पीढ़ियों के लोग, कई धाराओं के लेखक परिदृश्य पर छितराए हुए हैं। हिन्दी कहानी को लेकर आलोचना इतनी पिछड़ी और बकवास भरी है कि आप इसमें किसी लेखक की जगह को ठीक–ठीक इंगित नहीं कर सकते। यह आगे होने वाला काम है। उसमें उनकी पहचान होनी बाकी है। लेकिन जब कोई कथाकार लिख रहा होता है तो उसकी उपेक्षा कोई कैसे करेगा? समकालीन कहानी का परिदृश्य पहले आलोचनात्मक रूप से स्पष्ट तो हो।[9] शायद यह इसलिए कहा गया है कि आज के कथा–परिदृश्य पर कई तरह के अबूझ प्रयोग चल रहे हैं। दलित और स्त्री विषय पर विमर्शमूलक कहानियाँ लिखी जा रही हैं। यही क्यों, उत्तर आधुनिक और पारंपरिक शैली में भी। इन सब प्रयोगों को लेकर आलोचना पहले अपना रूख तो स्पष्ट करे। खैर, प्रयोगों को लेकर बहुत चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। प्रयोग सफल भी हो सकते हैं और असफल भी। कभी–कभी असफल प्रयोगों में भी भविष्य के रास्ते छुपे होते हैं जिससे कालांतर में दिशाएँ नज़र आने लगती हैं।

स्त्री–विमर्श को बहुत चालाकी से कुछ संपादकों ने देह–विमर्श में बदल दिया हैं। पेटिकोट उतारना, भोगना, भोगवाना – क्या यही स्त्री–विमर्श है? सच तो यह है कि दलित–विमर्श के सामने खड़े प्रश्नों से जूझने के बाद रचनात्मकता के नए रास्ते खुलते। पर, यहाँ भी प्रपंच चल रहा है और बहुत चालाकी के साथ इन प्रश्नों से कतराते हुए पूरे विमर्श को तात्कालिक स्वीकृति या अस्वीकृति की एक लिप्सा में उलझाकर रख दिया गया है। संपादकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो भाषा में 'खिलंदड़ेपन' और कलात्मकता के नाम पर कहानियों में यथार्थ की धार को कुंद कर रहा है। यह सब संपादकों द्वारा गिरोह बाजी के चक्कर में हो रहा है। कुछ कथाकार तात्कालिक यश–प्रसिद्धि के लिए इन गिरोह बाज संपादकों के ध्वज वाहक बन जाते हैं। खैर, यह कोई नई बात नहीं है। समय–समय पर ऐसा होता रहा है।

सम–सामयिक कहानियों का जो परिदृश्य है उसमें कई पीढ़ियों और प्रवृत्तियों के लोग अपनी–अपनी त्वरा के साथ यहाँ सक्रिय हैं। कुछ कथाकार पारंपरिक कथा–शैली का अतिक्रमण कर नये प्रयोग कर रहे हैं। इनकी कहानियों में जीवन की गहराई से चुपके–चुपके एक खास किस्म की कलात्मक आक्रामकता के साथ यथार्थ उपस्थित होता है। जब जीवन की जटिलताएँ बढ़ेगी, तो यथार्थ का बहुत सारा अंश अपने मूल रूप में बाहरी आवरण बदलकर आज के कथा–साहित्य में ज्यों का त्यों उपस्थित होगा ही। इधर यथार्थ के नये रूप दिखलाई पड़ रहे हैं। इन दोनों स्थितियों पर कथाकारों की गिद्ध–दृष्टि है। पुराने यथार्थ के बढ़ते कदम के साथ नये यथार्थ को भी कथाकारों ने उद्‌घाटित किया है। पहले से, समकालीन हिन्दी कथा रचना का परिदृश्य और अधिक फैला है। विगत कुछ वर्षों से कथा–आलोचना के क्षेत्र में कुछ युवा–समीक्षक अपना कमर कसने लगे हैं जो हिन्दी कथा–आलोचना के लिए शुभ संकेत है।

सन्दर्भ

1. द्रष्टव्य, समकालीन आलोचना (संपादक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह) में संकलित 'समकालीन आलोचना : कुछ प्रश्न' आलेख। पृ.39
2. वही – पृ. 40
3. पूर्वाग्रह – 44–45, पृ. 50
4. पहल – 34, पृ. 17
5. द्रष्टव्य, समकालीन आलोचना, संपादक –डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पृ. 74
6. हिंदी कहानी अंतरंग पहचान, पृ. 71
7. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य, पृ. 2
8. जनपथ–11, पृ. 20
9. जनपथ–11, पृ. 14

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Sir Walter Scott's Art of Historical Fiction

Subhash Kumar

Sir Walter Scott has been called the father of the historical novel in England. He blended facts and fiction, history and romance in his historical novels. He was a past master in the art of handling characters imaginatively with gusto and delight against a given historical background. He was gifted with a fecund imagination to re-live the past in all its vividness in his imagination. Scott presented the spirit of time as well as the spirit of place. With him, history was also a scenic matter, and in this rich visual abundance, he survives today so that we can still read him with surprise and delight. He had all the necessary gifts for achieving success as a historical novelist. He conceived of a novel in which history would be allied with romance, in such a manner that the past should be recreated with all its vigour and liveliness and with all the semblance of reality that it actually had.

Scott's great success as a historical novelist lies in the fact that he successfully recreated the life of the past in his novels. He imparted life to the dry bones of history. He achieved success in re-vitalising the past, for he completely indentified himself with the social and political life of the times he described or portrayed in his novels. For him the past, often by virtue of some chance revelation or contact, ceased to be the past and became in his consciousness as immediate as the present. "For Scott the dry bones re-assembled themselves" says Una Pope-Hennesy, "and became clothed in flesh, and rubble reconstituted itself into setting for pageantry. Automatically in him the past was re-born, re-animated, re-realised, and ceased in any dry-as-dust sense to be history." [1]

"His novels show the strong tide of imagination," says S.D. Neill, "released by the Romantic movement sweeping back into the past, flushing the stones of history with colour and bright-ness." [2] The same critic further points out that, "The past lived again in his pages; not the dust-dreary reconstruction of pedants, but warm, breathing, excitingly alive. The reading public at last found the author for which it was waiting – one who could create the past because he had lived it, in his friends, in his ancestors, in his memories. Beside him the Terror novelists with their gimcrack castles, their theatrica villains, stilted language and air of unreality appeared as the synthesis of makeshifts they were."[3]

Scott presented the past history of France and England and Scotland in a life-like and realistic manner. Scott's favourite period was the stretch of Scottish history from the Covenanters to the Jacobites. He could best interpret and reconstruct the near past. His favourite periods were those which were not very remote the Reformation to the last civil struggles of the eighteenth century. "He organises his subjects round the great religious or Political conflicts which during these two hundred years most seriously impaired the moral

unity of the Scottish people." In *The Monastery, The Abbot, Kenil-worth*, Scott revives sixteenth century life in England. In *The Legend of Montrose* and *The Fortune of Nigel*, he takes us to the seventeenth century and places his novel during the times of James Ist. In *Guy Mannering*, *Old Mortality*, *Rob Roy*, and *The Heart of Midlothian*, we have the recreation of the eighteenth century. In *Quentin Durward* we are taken to the reign of Louis XI in France. In *Ivanhoe* we are further transported to the early Middle-Ages and the days of Crusades. We meet with Richard Coeur de Lion, the black-hearted John and the glamorous figure of Robin Hood in *Ivanhoe*.

The range of Scott's novel is fairly wide and covers three centuries of English, Scottish, and European History. He was thus an inspired, an exalted pageant-master, of enormous energy and sparing no expense, who organised a procession through the ages, from the medieval to the nineteenth century moment, in which every degree of humanity played a part, and wore the appropriate costume. Kings and queens, outlaws and cut-throats, men of law and of war, girls and crones, witches and even ghosts, took their place in that procession, hundreds of them, winding their way out of the past, making the recognisable gestures, speaking the expected words. Louis XI of France in Quentin Durward, James I in the Fortunes of Nigel, Queen Elizabeth in Kenilworth, these are a few examples of the vivid evocation of which Scott was capable, while at the same time they show that he was a pageant-master rather than a historian, and a historian rather than a novelist.

Scott succeeded in presenting these past ages of history in his historical novels because of his lively imagination with which he re-lived those times. But merely relieving the past was not enough for him. He boldly projected the present into the past, and used his knowledge of contemporary life to humanise his old world characters. Manners may change and fashions alter, but human nature remain constant; and thus we have the apparent paradox that Scott's success as an historical novelist lay in his sturdy realism that he made the men of Robin Hood's day and Shakespeare's day alive and actual by virtue of his acquaintance with the men that lived around the Tweed of his own day.

Scott used the facts of history for purpose of romance. He did not care for strict historical truth. "Scott did not scruple distant facts, cutting them about to fit the episodic forms of his tales;" says Church, "but in doing so he always enriched their significance with a poetic wealth of his own; thereby proving once again how the approach to life of the novelist and the poet in the same; through terms of an inspired imagery, interpreting always through the particular to the general, and never resting content with a mere cataloguing of facts or a scientific recording." "He permitted himself only the same licence as Shakespeare in changing the sequence of events occasionally for dramatic effect, but characters and motives remained inviolate." [4]

In *Kenilworth* he represented Shakespeare's plays as already in the mouths of couriers and statesmen though he laid the scene in the eighteenth year of Queen Elizabeth when Shakespeare was hardly old enough to rob an orchard. This historical basis of Wood Stock and Red Gaunlet is thoroughly untrustworthy. In the Abbot historical truth is wantonly violated in making all senators the devoted followers of Mary Queen of Scots. In Wood Stock

it is represented that Shakespeare died in 1590 without writing his tragedies. Thus in the historical novels Scott never bothered about historical accuracy. His novels are like the historical dramas of Shakespeare in which creative imagination plays a vital and significant part to revitalise the social and political manners, ways, and life of the people. "Scott makes us live again," says Cazamian, "in past centuries, and makes innumerable human beings of his invention visible, familiar and skin to ourselves; whether he entirely creates them, recreates their souls and borrows their names history." [5]

Though Scott made certain deviations from the facts of history by colouring them with his romantic imagination, yet he did not disregard the sanctity of history. He presented historical personages and characters like Richard and Saladin, Queen Elizabeth; Marry Queen of Score, Monmouth, James I with great gusto and delight. The old historical figures are recreated by Scott with the same zest as the life of the times in which they lived. He did not show any partiality in the presentation of historical characters. "It was his desire" says Cazamian, "to keep the scales even and to grant all parties and men the same kindly interest and here he was almost always successful." [6]

The main interest in Scott's historical novels in often not historical, and the historical interest is at least always divided with a purely fictitious interest. In *Waverley* the hero and heroine are not historical; and the same is true of *OldMortality, Ivanhoe, The Fortunes of Nigel* and The Abbot. Kenilworth is different only in appearance. Amy Robsart bears an historical name, but she is really the typical tragic heroine, and Leicester is the conventional villain with some facts taken from the Earl of Leicester's life for an historical semblance. The attention is thus distracted from Elizabeth, Mary, James, Cromwell, and the young Stuart Pretenders. In adopting this method of dealing with history – which was in part Shakespeare's also – Scott was able to give within the vaguely defined boundaries of fact and legend a very free play to his imagination.

Scott added the air of romance to the historical facts in the splendid reconstruction of the past. Scott brought to converge upon the novel the same scattered influences of romanticism says Compton Rickett, "that he did in poetry; enriching its thin arid founts of inspiration with his wealth of antiquarian lore, his open air enthusiasm, his delight in the colour and moment of bygone times, and his intimate knowledge of Scottish life." It was Scott "who could put into history the poetry of history, and who could put into veracious tales of medieval days the romance of the medieval times"

In the presentation of the historical novels of the past, Scott used the language of the times in which he himself lived. He realized that pedantic fidelity to period and precisely archaic language, however titillating to the student, resulted in unreadable fiction, and his own creative sense led him to make a more electric use of his material. Rejecting antiquarian realism and over-accuracy, he favoured a language approximating to common speech, but heightened with poetry and with just enough of archaism to create an illusion of the past. The average reader of novels at that time would demand no more.

But in the main, *The Antiquary* is concerned with people who are living in the past: Sir Arthur is in thrall to the glories of his pedigree to the extent that he cannot react pracually

to his present loss of fortune and imminent bankruptcy, and is fool enough to trust his remaining assets to the flattering and fraudulent adept, Dousterswivel, whom everyone else can easily see through; the Earl of Glenallan is existing in penitential misery, to expiate what he believes to have been the sin of incest in the past; even Oldbuck, with his memories of his lost love and his absorption in his antiquarian studies, is living largely in the past, though he is not incapacitated by it, as Wardour and Glenallan are, and is able to react promptly and efficiently when danger comes. These are set in contrast with the characters of lower social rank who are not paralysed by the past and are able to live in the present, like Edie Ochiltree and the Mucklebackits, especially as exemplified by the reaction od Saunders Mucklebackit, found by Oldbuck mending the boat in which his son Steenie has just been drowned:

"I am glad, he said in a tone of sympathy – 'I am glad, Saunders, that you feel yourself able to make this exertion.'

And what would ye have me to do, answered the fisher gruffly, unless I wanted to see four children starve, because ane is drowned? It's weelwi' you gentles, that can sit in the house wi' handkerchers at your een when ye lose a friend; but like the o; osmaun to out wark again, if our hearts were beating as hard as my hammer…..and I am a dour carle, battered by foul weather at sea and land till I am maist as senseless as hersell. She maun be mended though again the morning tide – that's a thing o' necessity." (A., ch. XXXIV)

His dignity and perseverance in his loss are contrasted with the complete abandonment of all worldly duties by the Earl of Glenallan in similar circumstances, just as the sturdy independence and robust health of the blue-gown beggar, Edie Ochiltree, is contrasted with the feebleness and decrepitude that Glenallan's useless and self-inflicted penances have brought on him. Oldbuck, the plebeian Whig, steers a canny middle course between the two extremes. He is regarded with a slightly patronizing good will, not unmixed with contempt, by the gossips of Fairport:

"Twa letters for Monkbarns – they're frae some o' his learned friends now; see sae close as they're written, down to the very seal – and a' to save sending a double letter – that's just like Monkbarns himsell. When he gets a frank he fills it up exact to the weight of an unce, that a carvy-seed would sink the scale – but he's ne'er a grain abune it. WeelIwit I wad be broken if I were to gie sic weight to the folk that come here to buy our pepper and brimstone, and suchlike sweetmeats.

He's a shabby body the laird o' Monbarns said Mrs Heuk-bane; he'll make as muckle about buying a forequarter o' lamb in August as about a back sey o' beef'. (A., ch. XV)

In spite of the comedy of scenes like this, and of Edie's and Steenie's persecution of Dousterswivel and of Hector's encounter with the seal, there is a curiously ominous atmosphere looming over the whole book; it implies a threat from the future, not entirely related to the shadows cast by the past. The country is at war, social unrest is in the ait, there is a general feeling of insecurity and of the vanity of human wishes. One is reminded, again and again, of Scott's deep admiration for Samuel Johnson."

References

1. Qtd. In Mundra, J.N. &Sahni, C.L., *Advanced Literary Essays*, Prakash Book Depot, Bareilly, 1965, p. 156
2. Ibid, p. 157
3. Ibid.
4. Ibid., p. 158
5. Ibid., p. 159
6. Ibid.,
7. Groot, Jerome de, *The Historical Novel* (Routledge: Oxon, 2010), p. 2
8. Lukacs, Georg, *The Historical Novel,* trans. Hannah and Stanley Mitchell (Penguin: Harmondsworth, 1962), p.15.
9. Groot, op. cit., p. 25.
10. Lukacs, op. cit., p. 42
11. Cf. Mc Garry, David D. and White Sarah Harriman, *Historical Fiction Guide: Annotated Chronological, Geographical and Topical List of Five Thousand Selected Historical Novels* (The Scarecrow Press, Inc: New York, 1963), p. 17.
12. Lamont, Claire (ed.), *Sir Walter Scott Waverley; or, 'Tis Sixty Years Since* (Oxford University Press; Oxford, New York, 1986), p.vii.
13. Scott, Sir Walter, Waverley, p. 24
14. Ibid., p. 34
15. Ibid., p. 56
16. Maxwell, Richard, *The Historical Novel in Europe,* 1650-1950 (Cambridge University Press: Cambridge, 2009), p.2.
17. Ibid., p. 11
18. Ibid., p. 13
19. Ibid., p. 14
20. Groot, op.cit., p. 29
21. Slotkin, Richard, '*Fiction for the purposes of History', Rethinking History*, 2005, pp. 221-236
22. Ibid., p. 222
23. Lockhart, J.G., *Memoirs of the life of Sir Walter Scott*, Bart. (5 vols; 1837-38; reprint, Adam and Charles Black, 1893), ch.Lxxxii.
24. Sutherland, John, *The Life of Walter Scott*, (Oxford, 1995), pp. 167-70.
25. He was later to set sown his views of them in his *Lives of the Novelist*s (1820).
26. Scott, op. cit., General Preface, 1829 edn.
27. First published in *The Critical Review*, August, 1794.
28. Scott, Sir Walter, *Ivanhoe,*new Jersey: penguin Classics, 1984, p. xxvii.
29. Raysor, T.M. (ed.) *Coleridge's Miscellaneous Criticism*, OUP, 1936, p. 324.
30. Scott, Sir Walter, *Waverley*, Penguin Books, 1994, chapter Lxviii.
31. Ibid.,
32. Sutherland, John, *The Life of Walter Scott*, (Oxford, 1995), pp. 190-191.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा लिखित 'पारस' नामक कहानी संग्रह में नारी पात्रों की भूमिकाएँ

अनिता कुमारी

मुहल्ला– जानी बाजार, पैठान टोली,
सासाराम, रोहतास (बिहार) पिन–821115

कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा लिखित 'पारस' नामक कहानी–संग्रह में नारी पात्रों की अनेक भूमिका है। इन नारी चरित्रों के अध्ययन से हम भारतीय परिवारों सहित नारी–जगत के अन्तर्मन का परत–दर–परत मनोभाव भी पढ़ लेते है साथ ही उनकी अनेकानेक स्थितियाँ हमारे सामने स्वंयमेव उपस्थिव हो जाती है। 'पारस' नामक संग्रह की पहली कहानी 'अन्तर्दाह' है जिसकी महिला पात्र इन्द्राणी है। सरला नामक महिला ने उसके रूप–सौंदर्य का वर्णन निम्नांकित रूपों में किया है– 'मैने देखा, उसकी उम्र छब्बीस साल के लगभग थी। जब वह हँसती थी, तो उसके गालों पर नन्हे– नन्हे गड्ढे पढ़ जाते थे जो बेहद सुन्दर दिखाई पड़ते थे। इनसे उसके चेहरे पर एक भोलापन दिखाई देता था और उसकी उम्र भी कम मालूम पड़ती थी। गठा हुआ शरीर था उसका। रंग उजला रंग उजला गोरा था। कद ऊँच्चा था। नाक नक्श सब ऐसे थे, जैसे बड़ी मेहनत से साँचे में ढाले गए हों। चोली कट के लाल ब्लाउज पर सफेद साड़ी पहने थी वह। चुस्त कपड़ों में बड़ी स्मार्ट दिखाई पड़ती थी। जूड़े में प्लास्टिक का सफेद फीता बंधा था। उसकी बायी कलाई पर काले पट्टी मे लगी हुई घड़ी थी और दायीं कलाई पर मीने के कामदार कंगनों के बीच काँच की पतली–पतली चूड़ियाँ थी। ऊँची एड़ी के सफेद सैंडिल पहने थी वह"।[1] इन्द्राणी का जन्म काफी सुखी–सम्पन्न परिवार में हुआ था इसलिए इसका सपना था कि मेरा विवाह वैसे आदमी से होगा जो पुरस्कार बाँटते तो सरला भी साथ जाती ओर इसे भी लोग सम्मान भरी नजरों से देखते। यह सब देख इन्द्राणी को लगता, मै जमींदार घराने की थी फिर भी मेरा विवाह लेक्चरर से हुआ और सरला का कमिश्नर से। इन्द्राणी सरला से काफी खूबसूरत भी थी जिस पर उसे गर्व होता रहता था। कहानीकार के श्ब्दों में– "स्त्री के लिए सौंदर्य बड़ी भारी चीज होती हे। उसका अहंकार भी थोड़ा या बहुत उसे अवश्य होता है। इन्द्राणी को भी अहंकार था अपने सौंदर्य का। पर सरला की सम्पन्नता तथा ठाट देखकर ऐसे जोर की चोट लगी थी उसके मन पर कि छिन्न–भिन्न हो गया था उसका अहंकार। उसे लगा कि सौंदर्य में सरला से बाजी मारकर जिन्दगी की सबसे बड़ी बाजी मैं हार गई थी सरला से।"[2] 'बिरहा' कहानी की सरजू छोटे सिंह की प्रेमिका है। गाँव में जब भी कोई पर्व–त्योहार या उत्सव होता, स्त्री–पुरूष टोली बनाकर गीत गाते हुए अपनी खुशी का अजहार करते थे। सरजू भी कजरी के अवसर पर गाती और छोटे सिंह भी। छोटे सिंह के परिवार में तीन भाई और एक विधवा माँ थी। दोनों भाइयो ने मिलकर छोटे सिंह को दूकान खोलवा दिया था इस कारण वह वहीं बैठता था। कुछ दिन बाद लोग उसे साव जी भी कहने लगे थे। सरजू जब भी दूकार पर सामान खरीदने जाती छोटे सिंह मूक बनकर अपने प्रेम का प्रदर्शन करता इस तरह सरजू जब कई बार दूकान पर जाती– "छोटे सिंह उसे सामान दे देता, उतनी देर तक ताकता रहता उसी की ओर , लेकिन कुछ कह नही पाता स्पष्ट शब्दों में। प्रेम में बोलने की जरूरत होती भी कहाँ हैं? नयन ही कह देते हैं , और सरजू में भी नजरों ही नजरों में बातचीत होने लगीं।"[3] 'भावना' कहानी की भावना एक ऐसी नारी है

जिसका विवाह अजय से होनेवाली था। जब भवना को यह मालूम हुआ कि अजय शराबी है तो भावना ने विवाह करने से इंकार कर दिया, इस पर अजय ने प्रस्ताव दिया– तुम्हें पा लूंगा तो सब कुछ सुधर जाएगा। इस पर भावना बोली– "मैं कोई सुधारक तो नही हूँ और न बाना चाहती हूँ"।[4] बाद में भावना का विवाह सोमेश से हुआ। उसने प्रथम रात्रि में मिलन के समय कहा था– "देखो भावना, मैं आपनी माँ को बहुत प्यार करता हुँ साथ ही मुझे किसी बुरी चीज की लत नही है। हाँ, कभी–कभी मित्रो के बीच बैठकर थोड़ी–सी पी लेता हूँ। आशा है, तुम इन चिजों में ब्यर्थ की रोक–टोक लगाकर मुझे परसान नही करोगी"।[5] इतना ही नहीं, जब सोमेश घूमने जाता है तो कभी–कभी भावना जिद करती है कि मैं भी आपके साथ चलूगी। इस पर सोमेश कहता है– "हर वस्तु और हर व्यक्ति का चौबीसों घंटा साथ रहना मुझे पंसद नही"[6] सोमेश के आचरण से– "भावना की भावनाओं पर जैसे तुशारापात हो गया। उसे लगता , यह सब अजय की आत्मा का श्राप है। उसमें कौन–सी कमी है? दिन भर चुपचाप घर में अकेले पड़े–पड़े उसका मन विद्रोह कर उठता। भला यह भी कोई जीवन है जिसमें गति नही , चपलता नही , बस हर समय बीरान– सा लगा रहता है। सोमेश कितना अभागा है। मेरा प्यार तो प्रथम दिन ही उसने ठुकरा दिया। मैं भी निपट मूर्ख हो गई हुँ कि अपना आत्मसमर्पण स्वीकार न होने पर भी उसी व्यक्ति के सुख के लिए जी रही हूँ"।[7] 'सुलह' कहानी की मंजू सोम कह पत्नी है। मंजू काफी सम्पन्न घराने की लड़की थी। जिस तरह की सुख सुविधाओं में वह पली–बढ़ी थी सोम के घर आते ही उसे विश्वास हो गया कि अपने घर जैसी सुविधा यहाँ मिलने वाली नही थी। इस कारण वह मन–ही–मन दुखी रहती। सोम ने मंजू की भावनाओं को भाँप लिया था उसे देखकर बोला– "मंजू, रोओ मत रानी। तुम्हारा एक–एक आँसू मुझे दुखी कर रहा है। मैं जानता हुँ कि यह घर और यहाँ कि परिस्थितियाँ तुम्हारे अनुकूल नही है। पर रानी तुम इस अँधेरे घर में रोशनी बनकर चमकोगी। तुम इतनी सुकुमार फूल–सी कोमल होगी, यह मै नहीं जानता था। तुम्हारे लिए मै सर्वथा अयोग्य हूँ फिर भी इतना विश्वास रखो, कि जीवन–भर तुम्हीं मेरे हृदय पर राज्य करोगी"।[8] 'पारस' कहानी की इरा रवि की पत्नी है। वह अपने भीतर पति की जैसी अवधारण रखती है उसे व्यक्त करते हुए रवि से कहती है– "जानते हो न कि पारस, एक छोटे–से बेकार लौह को भी अपने स्पर्श से एक अपूर्व सुन्दर स्वर्ण का रूप दे डालता है। और यही कार्य एक भारतीय पति का होता है। यह कहना शायद अतिशयोक्ति न होगी। पति की छेनी का एक–एक टकारव के साथ उसकी पत्नी के व्यक्तित्व और रूप का निर्माण होता है। यदि पति की छेनी का एक भी लापरवाह और असंतुलित टकराव इस कला पर हुआ , तो मूर्ति छिटकर कर टुकड़े–टुकड़े हो जाती है। विखरकर माटी चंद ढेर में सीमित हो उठती है या फिर एक कुरूप आकार के समाज में , हास्य का कारण बन जाती है"।[9] इरा का मानना हे कि अधिकांश भारतीय नारियाँ पुरूषों के साथ जिस रूप में रहती आयी हैं वे उन्मुक्त जीवन यापन नही कर पाती । उनके अनुसार– " यह कठोर सत्य है कि विवाहित जीवन में हम पुरूषों के असहयोग और तानासाही से घर में अजीब तरह का वातावरण बन जाता है जहाँ दिल से दिल मिलकर हँसते नही केवल संस्कृति व परम्पराओं की ओट में भयग्रसित पत्नी सब कुछ केवल मजबूरी – वश सहती जाती है। ऐसे घरों में रिश्तों का आधार प्रेम कहाँ ? वहाँ बहारे कब खुलकर खिलती हैं? वहाँ तो केवल मुरझाई सूरतें, दबी निगाहें, जीवन का बोझ घसीटते दृष्टिगोचर होती है। बेचारे बच्चे इस त्याग व आदर्श के पचड़े में न पड़कर माँ – बाप के सम्मिलित प्रेम के रस का स्वाद नही ले पाते। इरा भी ऐसी ही एक अधूरी तस्वीर थी। पिता के शासन से सहमी–सहमी बहुत ही दब्बू दिखाई पड़ती थी"।[10] इरा को लगता है कि भारतीय संस्कृति में नारी का वह स्थान नही है जो होना चाहिए । यही कारण है कि वह पक्षपाती संस्कृति की ओर इशारा करते हुए रवि से सवाल करती है – " रवि , तुम भी तो पुरूष हो । क्या इंकार कर सकते हो कि अपनी सुख–सुविधाओं का ध्यान रखकर ही ही तुमलोगों ने हम स्त्रियों पर अपने ही द्वारा गढ़ी संस्कृति का बोझ नहीं लाद दिया है ? लेकिन रवि हमारी संस्कृति का बोझ नही लाद दिया है ? लेकिन रवि हमारी संस्कृति

पक्षपाती क्यों है? भैया जो चाहें सो कर सकते हैं और मैं अपना विकास भी कर सकने में पराधीन हूँ"।[11] 'ग्रामसेविका' कहानी की शांता एक ऐसी नारी है जो भारतीय समाज की गलत हरकतों के कारण ठीक से जीवन यापन नही कर पाती है। 'पंचायत का न्याय' कहानी का मुख्य पात्र धनीराम मिस्त्री का काम करता था। उसकी पत्नी सोनिया काफी मिलनसार और पति के अनुसार चलने वाली नारी हैं। बीमारी के बाद जब धनीराम का निधन हो जाता है तब सोनिया धनीराम के पुराने मालिक बाबू हरदयाल की बूढ़ी माँ के साथ रहकर गाय के लिए घास लाती है और उसे खिलाती है। जब दीनू उसे घास डालते देखता है तो व्यग्य से कहता है– "अरी इस उम्र में गुलामी करती है? गुलामी करवाने के तो तेरे दिन है"।[12] 'दुखियारें' कहानी की महिला पात्र अपर्णा है जो नौकरी करती है। दस कारण उसे समय नहीं मिल पाता कि अपनी बच्ची को देख सके। यही कारण है कि वह किसी नौकरानी की तलाश करती है इसके लिए उन्होंने कई लोगों से कहा। कुछ दिन बाद सुरमइया नाम की महिला अपर्णा के घर पहुँचती है और कहती है कि आपकी जसवाड़ी वाली वहन ने हमें भेजा है। जब अपर्णा ने उससे पूछना शुरू किया–तुम काम करोगी?[13] इसका जवाब वह इस रूप में देती है जैसे वह अपने में बांध लेना चाहती थी। उसने बताया बेनी प्रसाद मुझ पर मोहित हो गया, तब मेरी माँ ने उसके साथ मेरा विवाह कर दिया। अपर्ण ने जब पूछा – तुम्हारा पति तुम्हे ठीक से रखता था ? जवाब में वह बोली– "बहुत अच्छे से रखता था तभी तो आठ बरस में आठ बच्चे हुए।"[14] फिर उसने अपने पति के बारे में बताया – कि उसे टी0 बी0 की बीमारी थी उसी से मर गया। फिर सुरमइया अपर्णा के यहाँ रहने लगी।

संदर्भ– सूची

1. कठौती– भाग–2–पारस–(अन्तर्दाह) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–09
2. कठौती– भाग–2–पारस–(अन्तर्दाह) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–15
3. कठौती– भाग–2–पारस–(बिरहा) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–21
4. कठौती– भाग–2–पारस–(भावना) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–30
5. कठौती– भाग–2–पारस–(भावना) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–30
6. कठौती– भाग–2–पारस–(भावना) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–31
7. कठौती– भाग–2–पारस–(भावना) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–31
8. कठौती– भाग–2–पारस–(सुलह) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–35
9. कठौती– भाग–2–पारस–(पारस) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–40
10. कठौती– भाग–2–पारस–(पारस) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–45
11. कठौती– भाग–2–पारस–(अन्तर्दाह) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–45
12. कठौती– भाग–2–पारस–(पंचायत कान्याय) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 सं0–67
13. कठौती – भाग–2–पारस–(दुखियारे) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–75
14. कठौती – भाग–2–पारस–(दुखियारे) कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–76

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारत में भ्रष्टाचार के कारणों की विवेचना

राजशेखर
शोद्यार्थी
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

'भ्रष्टाचार' दो शब्दों से बना है–'भ्रष्ट' और 'आचार'। 'भ्रष्ट' का अर्थ 'निकृष्ट', 'पतित', 'अनैतिक', 'कर्त्तव्यविहिन' इत्यादि और आचार का अर्थ है–'आचरण'। अतः, भ्रष्टाचार का अर्थ है–समाज एवं राष्ट्र के बनाए नियमों के विरूद्ध आचरण।

भ्रष्टाचार समाज के प्रत्येक क्षेत्र में बनाए गए नियमों एवं स्थापित मूल्यों की अवहेलना करना है। सरल शब्दों में इसे 'रिश्वत का कार्य' कहा जाता है। इस दृष्टि से सार्वजनिक पद अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विशेष स्थिति के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है।[1]

अतः, भ्रष्टाचार प्राप्त अधिकार का दुरूपयोग करना है। मैरिस सैफेल ने कहा है–"भ्रष्टाचार वह व्यवहार है, जो मानदण्डों और सार्वजनिक भूमिका निर्वाह के कर्तव्यों को संचालित करने या निजी लाभों के लिए पद के उचित उपयोग से विचलित होता है।"[2] इस तरह यह आर्थिक या प्रतिष्ठा सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भूमिका के प्रति औपचारिक कर्तव्यों से विचलन है।[3]

भ्रष्टाचार प्राचीन काल से समाज में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। आचार्य कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी श्राजकोषश से सरकारी कर्मचारियों द्वारा गबन किए जाने का संदर्भ मिलता है। सम्राट अशोक के शासन काल में भी भ्रष्टाचार कम पैमाने पर पाया जाता था। मध्युगीन समाज में भी भ्रष्टाचार सीमित रूप में ही था। ब्रिटिश शासन काल में उच्च अधिकारीयों द्वारा रिश्वत लिया जाता था। इनमें भारतीय और अंग्रेज दोनों ही शामिल थे। स्वतंत्र भारत धीरे–धीरे भ्रष्टाचार अपनी जड़ें फैलाता गया और हमारे नेता, अधिकारी, कर्मचारी इसकी गिरफ्त में आते गए। देश में एक के बाद एक कई घोटाले हुए, जिनसे हम सभी अवगत हैं। दिन–प्रतिदिन इसका क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है।

भ्रष्टाचार का सबसे मूल कारण भौतिकवादी संस्कृति है, जिसके हमारी सोचने की दिशा ही बदल दी है। मानव अधिक–से–अधिक भौतिक सुख प्राप्त करने के लिए प्रेरित है और यही करण है कि 'एन–केन्–प्रकारेण' धन–संग्रह मानव जीवन का उद्देश्य बन गया है। लोग भौतिकवादी हो गए हैं। अधिक से अधिक धन–संग्रह करना उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है। हम यह कहें कि हमारी भारतीय संस्कृति की 'अपरिग्रह' की अवधारणा परिग्रह में परिवर्तित हो गई है, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। निजी संपत्ति में अधिक–से–अधिक वृद्धि करने की प्रवृत्ति मनुष्य को भ्रष्ट बना देती है। इसके लिए वह रिश्वत, बेईमानी, चोरी, डकैती, घोटाला जैसे अनैतिक कार्यों का सहारा लेता है। अतः, नैतिक मूल्यों में अवमूल्यन के कारण भ्रष्टाचार तीव्र गति से हमारे समाज को अपने दायरे में लेता जा रहा है।

हमारी सोच विकृत हो गई है, और विकृत मानसिकता के अनुरूप हमारा आचरण हो गया है। धन आज हमारे लिए साधन और साध्य दोनों बन गया है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी भ्रष्टाचार को बढ़ाने में कम उतरदायी नहीं है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यावसायिक शिक्षा को अत्याधिक महत्त्व देती है और मूल्य–आधारित शिक्षा की अवहेलना करती है। आज व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा मनुष्य रोजगार प्राप्त कर लेता है। लेकिन, नैतिक मूल्यों को आत्मसात नहीं कर पाता है। अतः, उसे अपने मार्ग से विचलित होने मे देर नहीं लगती। वह बेईमानी एवं रिश्वत के द्वारा धन प्राप्त करना शुरू कर देता है और अपने कार्य के प्रति उसकी निष्ठा नहीं रहती है। हमारी शिक्षा प्रणाली की स्थिति इतनी घृणित हो गई है कि आज जिनके पास धन है, वही उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता है। 'डोनेशन' के द्वारा अच्छे व्यवसायिक कॉलेज में नामांकन करवाया जाता है। यह नैतिकता एवं मूल्य–आधारित शिक्षा की उपेक्षा का ही परिणाम है।

पुनः, सरकार के व्यापक क्रिया–कलाप को भी भ्रष्टाचार के कारण रूप में मान सकते है। जैसे–जैसे सरकारी कामकाज बढ़ता जा रहा है, भ्रष्टाचार की मात्र भी उतनी ही बढ़ती जा रही है। चूँकि, राज्य के कार्यों के संपादन में कोई व्यक्ति विशेष उतरदायी नहीं होता है। समाज के बड़े–बड़े सरकारी और गैरसरकारी व्यक्ति सामुदायिक साधन का व्यक्तिगत हित में प्रयोग करते हैं। प्रशासनिक शक्तियाँ एवं निर्देश कार्यकारिणी के अनेक स्तरों में निहित रहते हैं। यद्यपि, कार्यकारिणी के सभी सदस्यों का मानसिक स्तर तथा चरित्र समान नहीं होता है।

भ्रष्टाचार को निरंतर गति प्रदान करने में सामाजिक रीति–रिवाज एवं समस्याएँ भी हैं, जिन्हें हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। हमारे समाज में दहेजप्रथा की बढ़ती प्रवृति, बेटी के पिता को अतिरिक्त धन कमाने के लिए विवश कर देती है। आज जो लड़की पढ़–लिख कर नौकरी कर रही है, उसके विवाह में भी दहेज दिया जाता है। माता–पिता सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अपनी बेटी की शादी पर अत्यधिक रुपए खर्च करते हैं। ऐसी स्थिति में वे अधिक–से–अधिक धन–संग्रह में लगे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त बेरोजगारी, काम के अनुसार कम मजदूरी, मजदूरों का आर्थिक शोषण, बालश्रम, मद्यपान आदि ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं, जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था में उसी का लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, जो अधिक साधन संपन्न हैं। अतः, गलत साधन से धन प्राप्त करना व्यक्ति को भ्रष्ट बनाता है। – भ्रष्टाचार के कुछ आर्थिक कारण भी हैं। सरकार की आर्थिक नीतियाँ भी भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार है। हम विगत वर्षों पर दृष्टि डालें, तो अधिकतर घोटाले सरकार के संरक्षण में हुए हैं।

भूमंडलीकरण की नीतियों के कारण भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। भूमंडलीकरण की उदारीकृत अर्थव्यवस्था में धन का लेनदेन आसान होता है। भ्रष्टाचारी गलत साधनों से कमाई गई बड़ी–बड़ी राशियों को बहुत आसानी से छिपा सकते हैं। प्राचीन समय में जब कागजी मुद्रा का प्रचलन नहीं था तथा बैंकिग प्रणाली भी नहीं थी, तो उस समय धन–संग्रह करना कठिन था। भ्रष्टाचार के आर्थिक कारण के अंतर्गत आवश्यक वस्तु की पूर्ति में कमी को भी स्वीकार करना होगा। जो वस्तुएँ रोजाना प्रयोग में लाई जाने वाली होती है, उनकी पूर्ति बहुत कम होती है, ऐसी स्थिति में व्यापारीगण हर स्तर पर मुनाफाखोरी करते हैं और मनमानी कीमत लेते हैं। भूमंडलीकरण के इस दौर में नेता, अफसर और अपराधी के गठजोड़ का स्थान नेता, अफसर और कॉरपोरेट ने ले लिया है।[4]

भ्रष्टाचार का एक प्रमुख कारण उच्च जीवनशैली के प्रति मोह भी है। यह भ्रष्टाचार का मनोवैज्ञानिक कारण भी है। मनुष्य स्वभावतः सुख प्राप्त करना चाहता है। सुख प्राप्ति की चाहत उसे

लोभी बना देती है। वह अनुचित साधनों के द्वारा भी धन प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह साधन की पवित्रता पर ध्यान नहीं देता, बल्कि साध्य रूप में सुख पर ही अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

भ्रष्टाचार में वृद्धि अप्रभावी प्रशासनिक संगठन के कारण भी होता है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अत्याधिक शक्ति प्रदान की गई है। परिणामतः गैरजिम्मेदार त्रुटिपूर्ण सूचना व्यवस्था जैसे विकास विरोधी तत्त्व अधिक पाए जाते हैं, जो अधिकारियों को न केवल भ्रष्ट होने का अवसर प्रदान करते हैं, बल्कि भ्रष्ट तरीका अपनाने के बाद भी उनके साथ कठोर व्यवहार नहीं किया जाता है।

इस तरह, हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार के कई कारण हैं। आज जबकि अन्ना हजारे और बाबा रामदेव के नेतृत्त्व में जगह–जगह भ्रष्टाचार–विरोधी आंदोलन चल रहे हैं, तो भ्रष्टाचार के कारणों की पड़ताल जरूरी है।

संदर्भ :

1. मदन, जी. आर.; **भारत की सामाजिक समस्याएँ,** विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ.: 317
2. आहूजा, रामय **सामाजिक समस्याएँ,** रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, द्वितीय संस्करण : 2007, पृ. : 434
3. वही, पृ. : 434
4. सिंहा, नीलिमाय 'राजनैतिक भ्रष्टाचार : एक विश्लेषण', **अनुप्रयुक्त दर्शन तथा नीतिशास्त्र के आयाम,** संपादक : जटाशंकर और अन्य, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली एवं भारतीय दर्शन–परिषद्, जबलपुर (मध्य प्रदेश), 2013, पृ. : 129

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Role of MNREGA in rural employment during Coron Epide

SANTOSH YADAV
Assistant professor
Department of economics
National P.G. College, Lucknow

Not only India, but the whole world is affected by the corona epidemic. The increasing number of patients suffering from Corona virus has pushed the entire world into the darkness of anxiety. Today the whole world is using all its technology in the treatment of this epidemic but no result is coming positive. All countries of the world are proving to be dwarfs in the face of this epidemic.Corona has demolished all the powers of the world who used to use destructive weapons such as nuclear weapons and hydrogen bombs as a threat. Are destructive elements like hydrogen bombs and nuclear weapons effective in fighting this disease? Governments of all countries have tried to make people aware of this epidemic and to some extent some countries have put a stop to it.But this epidemic is one of the biggest incidents of human tragedy. Whose loss seems impossible

In a developing country like India, the Covid-19 epidemic and long stalled economic activities have brought health and income insecurity among the socio-economically weak and endangered sections, especially among migrants, daily laborers and contract laborers. Steaming the livelihood of millions of people, the Prime Minister announced on 12 May 2020 to launch a self-reliant India campaign.

Self-sufficient India will stand on five important pillars ---

1-Economy 2- Infrastructure 3- Life Human Resources 4- Demand and Supply 5-Technology. After this, the Union Finance Minister announced several relief measures including packet assistance to give new life to the rural and agricultural economy. As the goal of poverty alleviation and employment generation has been the biggest goal since the 1950s, now the government's focus is on bringing rural economic growth back on track by increasing employment opportunities for the job seekers as a whole.

MNREGA and Rural Employment: -

Increasing population Due to the risk and uncertainty of rural population and agriculture, differences in rural and urban incomes and economic troubles in the growing village, a large number of people left the village and migrated to the city. More than 42.3 crore migrant workers (according to 2011 census) are returning to the village in the next few months due to the Karona epidemic in the country.Due to which these workers or workers

may have to face the problem of unemployment in agriculture and non-agricultural sectors in the next few months due to less employment to the workforce. Therefore, the government had to think what measures would be taken so that lakhs of workers in the village could get more and more business options for livelihood.

Mahatma Gandhi National Rural Employment Act, MNREGA was launched in September 2005 with the goal of using additional labor force in the village to create quality productive community assets and entrepreneurs, as well as the use of additional labor force in the village. Went Under which it was legally mandatory for every family to provide at least 100 days of employment to one member.

MNREGA role in self-reliant rural India: -

Being a program of public work, MNREGA has proved to help the socio-economic development of the rural unemployed effectively by increasing their productive capacity, and its potential to create employment during the Corona period and use the additional labor force fruitfully Seeing the capacity of the government, the government increased its original allocation to Rs 1,1500 crore for 2020-21 and an additional Rs 40,000 crore was allocated for it under the 'Self-reliant India' package.

To understand the potential of MNREGA to ensure self-reliant rural India in future, its main objective needs to be explained and explained. According to Schedule 1, paragraph (3) of 2005, MNREGA has the following provision -

1) -Each rural household has the right to get employment for a minimum of 100 days in a financial year.

2) - Ensuring social inclusion.

3) - Strengthen the base structure of the poor.

4) - Strengthening Panchayati Raj Institution.

This article seeks to find an answer to the question whether MNREGA will be able to play a big role in ensuring rural employment income in the present time or in the Corona era.

MGNREGA - Implementation Status -

MNREGA has been implemented in 2.5 lakh gram panchayats of 693 districts. About 25% of the total 13.82 crores of registered villagers in May 2020 were people who were actively working. Between 2016-17 to 2019-20, the Government of India released Rs.2,29,445 crores. 1,79,869 of which was spent on taxes (about 75%) of wages.

236 crore workers as annual employment, an average of Rs 44,967 crore has been paid to create Labor Day. Thus, between 2016 and 2019, 78% of the funds released by the Center under MGNREGA were used to provide labor.Accordingly, out of the current allocation of Rs.1, 01,500 crores, about 79,200 crores will be available for payment in 2020-21 whereas in 2019-20 it cost an average of Rs.251 crores to create a labor day employment. So if we talk If we make a precise strategy for implementation at the ground level, then 400 million laborers' days can be created under MNREGA.

Will MNREGA change the picture?MGNREGA is able to give poor rural families the power to withstand economic shocks. It can handle the situation to deal with the effects of cycles of functioning in a large rural economy like India. The Kovid epidemic caused lockdowns across the country and resulted in signs of a prolonged business environment.MNREGA can effectively increase rural economic activities through income distribution, which will increase purchasing capacity of rural population. Increase in personal income will also increase the expenditure on fertilizers and unnecessary items, due to which the post-corona period will accelerate in the crisis-ridden economy.

During the Corona epidemic, when the workers were returning to the village, the district administration first of all wanted to ensure that the migrants returned to their villages from the cities and metros were gathered and the workers were informed about the current scheme run by the government Went For this, a door-to-door survey was conducted to the Gram Panchayat to register all those additional workers who are seeking employment in the next 15 to 30 days.

In view of the huge withdrawal from cities to villages, the approval list of MGNREGA projects of 2020-21 may not be sufficient to meet the potential demand for work arising in rural areas after Kovid-19. Therefore, review of already ongoing works should be undertaken and additional labor budgeting exercise should be undertaken to ensure block or gram panchayat-wise additional projects and its timely technical and financial sanction.

For the year 2020-21, by marking additional tasks under MNREGA and prioritizing it, efforts will be made to ensure creation of more quality community assets in the area of national resource management and agriculture and allied activities.

In National Resource Management Functions-

1) Construction of water security such as ponds for farming, wells, soil check-dams, stop dams and other water-conservation structures with special focus on increasing ground water, including sources of drinking water, 2) Infusion i.e. watershed management work 3) Sufficient minor irrigation works 4) To clear silt from irrigation tankers and other water bodies 5) Forests, plantations and horticulture on common land and forest land.6) Common land may include land development works. If all these works are planned in a systematic manner and priority is set and the law

If it is fulfilled honestly without ignoring the provisions of the government, these will generate unlimited opportunities for socio-economic growth of the community in the coming years.

In Section 16 (4) of MNREGA 2005, Gram Panchayats have been empowered to prepare the plan for development and keep the projects ready for implementation on demand. Because of how well decentralized planning has been done at the grassroots level, there should be sufficient strength in human resources at the Gram Panchayat level. The committee of experts brought from the Departments of Agriculture, Rural Development, Panchayati Raj, Soil Conservation Forest, etc. should be asked to directly help the Gram Panchayat Can So that the works of MNREGA can be implemented effectively.

Workplace facilities such as medical aid, drinking water, childcare or crèche facilities are permitted in the MNREGA. Provision has also been made for mask soap water sanitizer etc., to avoid the danger of Kovid-19 and mask soap water sanitizer will be provided today as long as the risk of corona is not reduced.

More and more people came for employment as labor payments were assured to the workers who worked beyond time. Payment was often delayed due to the delay in preparation of the primary account book according to the primary assessment of the work. But now according to the work, the book is done every week immediately after the master is over. Work is calculated according to the work and the MNREGA is filled in the MIS. From where it is sent directly to the account of the workers.

But a review of MGNREGA works shows that a huge amount of money goes into the planning. But there is no focus on creation of quality assets, flawed work plan and design, wrong selection of projects and work places, no survey of work, Due to incorrect estimation of work design, inefficient implementation of works and lack of adequate technical monitoring, it could not create quality community assets.Therefore, before using the funds of MNREGA, it must be taken to take stock of the project's ability to prepare assets and technical behavior.

If we talk about agriculture then during the Konrona epidemic there is one such ray. In the year 2019-20, the agriculture sector grew by 3.7% GDP and is expected to increase by 2.5 to 3% in 2020-21. Therefore, a proper action plan and implementation can help the migrants to return to farming. A total of 260 works are permitted in MNREGA, of which around 160 are connected with agricultural works. 60% of the work at the district level is used for agriculture and allied activities.Such as canals, ponds, drains in the fields and water conservation structures etc. The law also allows works like irrigation garden SC / ST and below poverty line families to develop private land of small and marginal farmers. About 87% of the farmers are small or marginal farmers, who own more than 40% of the total cultivable land.Therefore, MNREGA is playing an important role in increasing agricultural productivity by encouraging additional labor force to take up farming and make temporary workers into farmers.

Mahatma Gandhi National Rural Employment Scheme is able to meet the challenges of rural income and employment during the epidemic and it is playing an important role in building a self-reliant India. Undoubtedly, the additional allocation for MNREGA will increase public investment in rural areas. And there will be appropriate local options for supporting the rural labor force.The MGNREGA program has the potential to ensure livelihood security and the state implementing it can rejuvenate the rural economy if it takes even more positive steps in order to fulfill the legal provisions with a well-planned approach.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

महादेवी वर्मा : नीर भरी दुःख की बदली

दिवाकर कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
रांची विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा आधुनिक मीरा के नाम से जानी जाती है। वे नीर भरी दुःख की बदली है। जो अपने करूण जल से जगत को तृप्त करती है। उनका कवि एवं गद्यकार रूप दोनों समान रूप से मूल्यवान है। उन्होने वेदना को अपने काव्य का विषय बनाया है। वे कहती है। ''मेरी आहे सोती है इन होठों की ओठो में। मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में।'' उनकी चार प्रमुख रचनाओं नीहार सन् 1930 ई0, रश्मि सन् 1932 ई0, सान्ध्यगीत सन् 1936 ई0, काव्य संग्रह यामा सन् 1940 में प्रकाशित हुआ है। उनकी कविताओं में आरम्भ से ही विस्मय, जिज्ञासा व्यथा और आध्यात्मिकता के भाव मिलते है। उनके पाँचों काव्य संग्रह कालानुवर्ती और प्रतीकात्मक है। ''नीहार'' जीवन की ऊषाकाल की रचना है। जिसमे सत्य कुहाजाल में छिपा रहकर भी मोहक और कुतूहलपूर्ण प्रतीत होता है।

''रश्मि'' युवावस्था के आरम्भिक दिनो की रचना है जब सत्य की किरणें आत्मा में ज्ञान की ज्वाला जगा देती है। ''नीरजा'' कवयित्री की प्रौढ़ मानसिकता पूर्ण स्थिति की कृति है। जिसमें दिन के उज्ज्वल प्रकाश में कमलिनी की तरह वह अपने साधनामार्ग पर अपना सौरभ विखेर देती है। ''सान्ध्यगीत'' में जीवन की करूणाद्रता और वैराग्य भावना के साथ आत्मा की अपने आध्यात्मिक घर को लौट चलने की प्रवृत्ति वर्तमान है।''[1] सन् 1942 ई0 में ''दीपशिखा'' साधना की साधनावस्था है। यदि हम दीपशिखा को लेकर पाँच रचनाओं का क्रमिक अध्ययन का संयोजन करें तो कवयित्री के भावों का इतिहास विवृत हो जाता है। दीपशिखा में आत्मविश्लेषण, आत्मसंदर्शन में प्रवर्तित हो जाता है। छायावाद विद्रोह का काव्य है। महादेवी का भाव दमित होकर उदात्त हो जाता है। तथा उदात्ता के बाद वे प्रि यतम से मिलकर मिटना नहीं चाहती है। उनके सभी गीतों में अनुभूति एवं विचार की अन्विति है। वे आर्त क्रंदन के पीछे छिप हुए भावातिरेक को दीर्घ निःश्वास में छिपाती है। महादेवी अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणव निवेदन करती है। किन्तु उनका प्रणव दुःख प्रधान है। वे प्रिय से पार्थक्य बनाये रखना चाहती है। टैगोर की भांति वे मुक्ति नहीं चाहती है उनके वे भाव आधुनिकता के प्रमाण है।

उनका दुःखवाद अकर्मणता का व्यंजक नही है। वे दुःख को केवल व्यक्तिगत जीवन सन्दर्भ में स्वीकर करती हैं। सामाजिक जीवन के प्रसंग में वे अथक–अमर साधना में विश्वास करती है। वे मिटने के अधिकार को अमर लोक से श्रेयस्कर एवं काम्य मानती है। वे कहती है कि 'अमरता मनाती है मरण त्यौहार' उनका दुःखवाद किसी सीमा तक समाज कल्याण से जुड़ा हुआ है। वे अपने जीवन की तुलना ''नीर भरी दुःख की बदली'' से करती है या दीपशिखा से करती है। वहां अध्यात्मिक साधना के साथ–साथ लोक कल्याण की भावना विद्यमान है। बदली या घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है। दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है, किन्तु परिवेश को आलोकित करता है उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती है।''[2] ''ये अमरता नापते पद वाँध देगे अंक सस्तृति से तिमिर में स्वर्ण वेला।''

महादेवी वर्मा के काव्य में जो रहस्यवाद आया है। उससे उनके जीवन पर बौद्ध दर्शन एवं उपनिषद का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है। बौद्धदर्शन की करूणा उनकी लोक विधायिनी पीड़ा बनकर प्रस्तुत होती है। यहां महादेवी लोक से जुड़ जाती है। उनका यह जुड़ाव ही उनकी काव्य साधना को सर्जनात्मक एवं मंगलमय बना देता है। उनकी पीड़ा जगत–पीड़ा बन जाती है।

''आँसू'' के अन्तिम भाग की भांति उनकी करूणा विश्व कल्याणी बन जाती है। सभी छायावादी कवियों की भांति रूप एवं प्रतिरूपों बभूव का सर्ववादी दर्शन उनके काव्य में विद्यमान है परिणामतः उनकी आध्यात्मिक साधना में लोक साधना का अन्वय हो जाता है। उनके विचाार से सृष्टि उस एक आसीम सत्य की ही सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है इसलिए सृष्टि के प्रति प्रेम और मूल सत्य के प्रेम में समानता है ''मै कण–कण मे ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का।''

महादेवी कवयित्री ही नहीं विदुषी भी है, यही करण है कि उन्होने सूक्ष्मग्राही विम्बों का सुन्दर प्रयोग कर अपनी अभिव्यक्ति के मन्तव्य के अनुसार अनुरेखित किया है। दीपक, दीपशिखा उनके प्रिय बिम्ब है। दीपक एक ओर अध्यात्मिक प्रकाश देता है तो दूसरी ओर वही दीपक संसार के लिए प्रकाश भी फैलाता है। जिसमें पथिक अपना मार्ग खोज पाता हैं इसी प्रकार प्रभात वर्णन उन्होने सूर्य का प्रकाश स्रोत मान आकाश की छिपी हुई वेदी तारों के लावों को विखेरे हुए दिखाकर प्रकृति में उपासना का बिम्ब उभारा है। ''महोदवी ने कमल, बदली आदि प्रतीकों के माध्यम से बिम्बों का मर्मस्वर्शी प्रयोग किया है। उनके कतिपय बिम्बों में दीवानी चोटें, ढरकीला आश्रम, स्वपनिल हाला, मूक प्यास, उंजला दुख, तत्वोतः महादेवी भावों की चित्रकार है। उनके इन चित्रों विचार स्फीत के साथ–साथ संवेदना गुनगुनाती है।''[3] उनके निर्गुन के प्रति प्रणय भाव की अभिव्यक्ति पर प्रश्न उठाये गये है। जिसपर आचार्य शुक्ल कहते हैं कि ''कहां तक वे वास्तविक अनुभतियां और कहां तक रमणीय की अनुभूतियाँ है यह नहीं कहा जा सकता यदि रचनाकार महादेवी को ही अनुभूति की वास्तविकता माना जाए तो वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता है।''[4] किन्तु यदि पाठक की प्रतिक्रिया को सम्प्रेष्णीयता का आधार माना जाये तो निरगुण लोकोत्तर सत्ता के विषय में कोई सर्वमान्य समाधान नहीं मिलेगा किन्तु इस विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि जायसी और कबीर के विषय में भी इस प्रकार की शंका उठाई गयी है। यहाँ तक सूर के माधुर्य भाव पर भी शंका उठाई गई है। अतः इसे केन्द्र ीय वस्तु बनाना समाचीन नहीं लगता।

महत्वपूर्ण यह है कि महादेवी की अनुभूति केवल व्यक्तिपरक अध्यात्मिकता की अनुभूति ही नही उसमें लोक कल्याण की भावना भी है जो अडिग आस्था, अटूट साधना और आत्मबलिदान के रूप में उनके गीतों में बिखरी हुई है कवयित्री ने रहस्य साधना को स्वीकार करके उसे लोक कल्याण के साथ जोड़कर अपने युग बोध के अनुरूप ढालने की कोशिश की है इसके लिए उन्होने सांकेतिकता और सूक्ष्मता के अतिरिक्त प्रतीक विधान और आलंकारिता का संयोजन किया है। उनके समाजिक सरोकर को उनके गद्य साहित्य में ढूढ़ा जा सकता है। उदाहरणार्थ उन्होने ''मेरा परिवार'' में निम्न जीवों को स्थान दिया है नीलकन्ठ मोर, गिल्लू, सोना, खरगोश, गौरा, नीलू, निक्को, रोजी रानी (घोड़ी) आदि अनेक प्राणियों की जीवन कथा भी मर्म स्पर्शिनी करूण कथा है। उन्होने पशु पंक्षियो को भी माँ की ममता दी है। उन्हे पाला है बड़ा किया है। उन्होने पशु पक्षियों को भी माँ की ममता दी है। उन्हे पाला है, बड़ा किया है बीमारियों में दवा की है। उनके हर्ष में पुलकित हुई है और दुःख में व्यथित उनके वियोग में उदास हुई है। ये पशु पक्षी उनके परिवार के सदस्य बन गये है। इनमें प्रत्येक की पारिवारिक हैसियत रही है। जो महादेवी के करूणा का ज्वलन्त प्रमाण है। उनकी करूण भवना की सम्पक्ति उनकी छायावाद की व्याख्या में प्रस्तुत हुई है। ''छायावाद तो करूणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही रहा है और उसी रूप में उसकी उपयोगिता है। वैसी महादवी

का गद्य साहित्य भी उनके काव्य के समान्तर ही है। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखायें, पथ के साथी और मेरा परिवार उनके मर्म में बसी हुई प्रतिमाओं को मूर्त करती है।''[5] महादेवी वर्मा की विरहानुभूति के दर्शन हमें उनके काव्य में होते है। करूण भावना का उद्रेक भी यहां मिलता है। उनके गद्य साहित्य में उनकी मानवीय भावना का करूण सरस प्र वाह दिखाई देता है।

इस प्रकार से महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व में मानवीय संवेदना रचनात्मक रूप में विद्यमान है। विरह प्रेम का अंग है तथा करूणा ममता की। इन्ही दोनो से मानवता का जन्म होता है। वर्मा जी ने एक मर्मस्पर्शी सरस शैली का प्रवर्तन किया है। जो हिन्दी साहित्य की अभिनव कला है।

संदर्भ :

1. डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा सम्पादकः हिन्दी साहित्य कोष भाग दो पृ ष्ठ–436।
2. डॉ0 नगेन्द्र सम्पादक–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ ष्ठ–539।
3. डॉ0 केदारनाथ सिंह–आधु निक हिन्दी कविता में विम्बविधान पृष्ठ–191।
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ ष्ठ–704।
5. डॉ रामचन्द्र तिवारी–हिन्दी का गद्य साहित्य पृ ष्ठ 703

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारतीय अर्थ व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका

रण विजय सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
वाणिज्य विभाग,
ई.द.भा.प्र.सिंह महाविद्यालय
गढ़ – नोखा (रोहतास),
(वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा)

लघु स्तरीय उद्योग के अन्तर्गत उन समस्त इकाईयों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें स्थायी सम्पत्तियों के रूप में पलाण्ट एवं मशीनरी पर पूँजी की मात्रा 25 लाख रूपये से अधिक लेकिन 5 करोड़ रूपए से कम हो। कारखाना अधिनियम के अनुसार लघु उघोगों का अर्थ उन औद्योगिक इकाईयों से है जिसमें विद्युत शक्ति के प्रयोग की दशा में 50 श्रमिक तथा बिना विद्युत शक्ति के प्रयोग की दशा में 100 श्रमिक तक कार्य करते हों ।

कुटीर उद्योग क्षेत्र में उन व्यावसायिक उपक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी संयंत्र एवं मशीनरी में 25 लाख रूपये तक की पूँजी विनियोजित की गयी हो । इसी प्रकार सूक्ष्म उद्यम वे उद्यम हैं जिनमें पलाण्ट एवं मशीनरी में विनियोग की राशि एक लाख रूपये तक सीमित हो।

लघु एवं कुटीर उद्योग किसी भी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जहाँ तक भारत का प्रश्न हैं इसकी विशाल जनसंख्या को देखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। लघु एवं कुटीर उद्योग भारतीय जनसंख्या को राजगार देने, भारत के कुल उत्पाद में हिस्सेदारी निभाना, अर्द्ध बेरोजगारी को कम करने तथा कम पूँजी आवश्यकता के कारणभारत जैसे विकासशील देश के लिए अधिक महप्वपूर्ण हो जाते हैं। वर्ष 2012–13 के उपलब्ध आँकडों के अनुसार MSME क्षेत्र में 467.5 लाख इकाईयाँ कार्यरत हैं जिसमें कुल 12,68,764 करोड़ रूपये का निवेश हुआ था।वर्ष 2012–13 में MSME क्षेत्र द्वारा 18,09,976 करोड़ रूपए का कुल उत्पादन हुआ था तथा कुल 10 करोड़ 61 लाख 40 हजार व्यक्तियों को रोजगार देने में सफलता मिली। वर्ष 2015–16 में MSME क्षेत्र द्वारा भारत के कुल निर्यात में 49.86 प्रतिशत का योगदान रहा है। इनका विस्तृत आँकड़ा निम्नतालिका में दिया गया है जो वर्ष 2014–15 तक के हैं।

मध्यम लघु एवं अति लघु उद्योगों की निष्पत्ति

वर्ष	MSME की संख्या (लाख में)	स्थिर परिसंपतियों का बाजार मूल्य (करोड़ रूपए)	उत्पादन कुल मूल्य (करोड़ रूपए)	रोजगार (लाख में)
2001–02	105.2	1,54,349	2,82,270	249.3
2002–03	109.5	1,62,317	3,14,850	260.3
2003–04	114.0	1,70,219	3,64,547	271.4

2004–05	118.6	1,78,699	4, 29,796	282.6
2005–06	123.4	1,88,113	4,97,842	294.9
2006–07	361.8	8,68,544	11,98,818	805.2
2007–08	377.4	9,20,460	13,22,777	842.0
2008–09	393.7	9,77,115	13,75,589	880.8
2009–10	410.8	10,38,546	14,88,352	921.8
2010–11	428.7	11,05,934	16,53,622	965.2
2011–12	447.6	11,82,758	17,88,574	1,011.7
2012–13	467.5	12,68,764	18,09,976	1,061.4
2013–14	488.5	13,63,700	–	1,114.3
2014–15	510.6	14,71,913	–	1,171.3

लघु एवं कुटीर उद्योगों के भूमिका को भारत के आर्थिक परिपेक्ष्य में निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता हैं।

1. लघु क्षेत्र का विस्तार और उसका औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा :–

लधु औद्योगिक इकाइयों की संख्या 2001–02 में 105.2 लाख थी जो 2005 –06 में बढ़कर 123.4 लाख हो गई। मध्यम लघु और अति लघु जिसे अंग्रेजी में संक्षिप्त में MSMEलिखा जाता है इन इकाईयों की संख्या 2006–07 में 361.8 लाख थी जो 2014–15 में बढ़कर 510.6 लाख हो गई। जहाँ तक उत्पादन का संबंध है, 2001–02 में लघु औद्योगिक इकाईयों का उत्पादन 2,82,270 करोड़ रूपए के बराबर था जो 2005–06 में बढ़कर 4,97,842 करोड़ रूपए हो गया। MSME का 2006–07 में उत्पादन 11,98,818 करोड़ रूपए था जो 2012–13 में बढ़कर 18,09,976 करोड़ रूपए तक पहुँच गया। MSME क्षेत्र परंपरागत से लेकर उच्चय प्रौद्योगिकी वाली विभिन्न प्रकार की 6000 से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करता है। इस क्षेत्र की 68.21 प्रतिशत (अर्थात दो तिहाई से अधिक) इकाईयाँ सेवा प्रदायक इकाईयां तथा बाकी 31.79 प्रतिशत इकाइयां विनिर्माण क्षेत्र में लगी हुई इकाइयां है। उल्लेखनीय है कि कुल कार्यरत MSME इकाइयों में 200.19 लाख इकाइयां (कुल का 55.34 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 161.57 लाख इकाइयां (कुल का 44.66 प्रतिशत) शहरी क्षेत्रों में काम कर रही हैं। अनुमान है कि 2014–15 में MSME क्षेत्र में सकल घरेलु उत्पाद का 7.0 प्रतिशत तथा विनिर्मित उत्पादन का (Manufactured output) का 37.3 प्रतिशत प्रदान किया है ।

2. रोजगार अवसरों का सृजन :–

लघु एवं कुटीर उद्योगों में 2001–02 में 249.3 लाख लोग तथा 2005–06 में 294.9 लाख लोग कार्यरत थे। मध्यम उद्योग एवं अति लघु क्षेत्र में 2006–07 में 805.2 लाख तथा 2014.15 में 1171.3 लाख लोग कार्यरत थे। वस्तुतः भारत में कृषि के बाद रोजगार प्रदान करने वाला दुसरा सबसे बड़ा क्षेत्र लघु एवं कुटीर उद्योगों का हो भारत के गम्भीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व स्वतः सिद्ध है। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि अति लघु एवं लघु औद्योगिक इकाइयों में श्रम की गहनता बड़े उद्योगों की तुलना में लगभग चार गुणा है।

3. लघु इकाइयों की कार्यकुशलता :–

लघु उद्योगों तथा बड़े उद्योगों में से अधिक कार्यकुशल कौन है इस बारे में विवाद है। इसका कारण यह है कि कार्यकुशलता को कई अलग– अलग ढ़ंग से परिभाषित किया जा सकता है। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण अध्ययन भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा नेशनल कौंसिल ऑफ अप्लाइड़ इकोनौमिक रिसर्च की सहायता से किया गया अध्ययन है। इसमें 1980से 1994 तक के प्रयोग किया गया है। इस अघ्ययन के अनुसार कुल विनिर्माण क्षेत्र की पूँजी में केवल 7 से 15 प्रतिशत हिस्सा होने पर भी लघु उद्योगों ने कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग पाँचवा हिस्सा (लगभग 20 प्रतिशत) तथा कुल वद्धित मूल्य का 13 से 27 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया ।

4. राष्ट्रीय आय का बेहतर वितरण :–

लघु एवं कुटीर उद्योगों के समर्थन में एक महत्पूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि उनकी सहायता से राष्ट्रीय आय का अधिक बेहतर न्यायोचित वितरण हो सकता है। ऐसा दो कारणो से होता है, एक तो लघु उद्योगों का स्वामित्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक विस्तृत एवं छितरा हुआ है तथा दुसरे, लघु उद्योगों की रोजगार सृजन की सामर्थ्य बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक है।

5. उद्योगों का क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण :–

औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति पर विचार कारने पर यह स्पष्ट है कि भारत में बड़े उद्योगों का केन्द्रीकरण महाराष्ट्र,पश्चिम बंगाल ,तमिलनाडु तथा गुजरात में बहुत ज्यादा है। इससे देश में औद्योगिक दृष्टि से क्षेत्रीय असमानताओं में और अधिक वृद्धि हुई है। उद्योगों के केन्द्रीयकरण से नगरों में भी भीड़ तथा आवास की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लघु उद्योगों की स्थापना प्रायःस्थानीय मांग को पूरा करने के लिए की जाती है। अतः इन्हें सभी राज्यों में सुविधा पूर्वक स्थापित किया जा सकता है। आधुनिक लघु उद्योग क्षेत्र विशेष की अर्थ व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन करने में भी समर्थ होते हैं इसका प्रमाण पंजाब की अर्थव्यवस्था है। जहाँ औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध महाराष्ट्र से भी ज्यादा लधु औद्योगिक इकाइयां हैं।

6. स्थानीय पूँजी एवं उद्यम का उपयोगः–

देश के विभिन्न भागों में ऐसे बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं जिनकी मांग बड़े उद्योगों द्वारा नहीं की जाती। इसके अलावा कुछ साधन बड़े उद्योगों की पहुँच में नहीं होते।लघु उद्योग इन साधनों को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ कसबों के उद्योमियों की क्षमता का उपयोग लघु उद्योगों में ही हो सकता है । इसी प्रकार बड़े शहरों से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में की जाने वाली बचतों को बड़े उद्योगों के लिए संचित कर पाना संभव नही होता, परन्तु उनकी सहायता से घरेलू अथवा लघु उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। आजादी के बाद भारी संख्या में लघु उद्योंगों की स्थापना इस बात का प्रमाण हैं कि बिजली, तकनीकी ज्ञान तथा साख आदि की सुविधाएं मिल जाने पर अनेक निष्क्रिय साधनों का उप्पादन कार्यों के लिए उपयोग होने लगता है।

7. निर्यात में योगदान :–

आजादी के बाद बड़े पैमाने पर लधु उद्योगों की स्थापना के कारण निर्यात में इनका योगदान काफी बढ़ा है। बहुत सारे उद्योगों जैसे तैयार वस्त्र, खेल का सामान व चमड़ा व चमड़े से निर्मित सामान , ऊनी कपड़ों, रसायनों व सहायक पदार्थों तथा इनजिनियरिंग वस्तुओं इत्यादि में लघु उद्योगों के कुल निर्यातमें काफी वृद्धि हुई है।लद्यु उद्योगों के कुल निर्यात 1971–72 में 155 करोड़ रूपये थे जो

2012–13 में बढ़कर 6,77,318 करोड़ रूपये हो गये।इस प्रकार निर्यात आय में लघु व मध्यम उद्योगों का हिस्सा 1971–72 में 9.6 प्रतिशत से बढ़कर 2012–13 में लगभग 40प्रतिशत हों गया। वर्तमान लघु व मध्यम उद्योगों का निर्यात आय में योगदान लगभग 45 प्रतिशत है ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारत जैसे श्रम आधिक्य वाले देश में भारतीय अर्थव्यवस्था को संतुतिलएवं विकसित करने में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत में विशाल जनसंख्या , पूँजी का अभाव ऐसी परीस्थिति मे MSME की भूमिका और अधिक बढ़ जाती है। इस क्षेत्र में अर्द्धकुशल, अकुशल एवं कुशल सभी प्रकार के लोगों को रोजगार की संभावना है। इस क्षेत्र में विशेषज्ञों की सेवाऐं लेकर इनकी कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है।ये क्षेत्र एकओर राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हैं तो दुसरी ओर स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक हैं। ये क्षेत्र विकेन्द्रीकरण तथा देशीकरण एवं स्वावलम्बन में भी सहायक हैं। अतः इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ –सूची

1. Ministry of MSME, Annual Report,2015-16(Delhi ,2016) table 2.1 7and TAble 2.3p.2. Small industries Development of India. SIDBI Report On Small Scale Industries Sector 199 (Lucknow ,99)

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में

निशांत कुमार
जे०आर०एफ०, इतिहास

संन्यासी का जन्म बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिये होता है। दूसरों के लिये प्राण देने, जीवों के गगनभेदी क्रन्दन का निवारण करने, विधवाओं के आंसू पोछने, पुत्रवियोग–विधुरा के प्राणों को शांति प्रदान करने, अज्ञ अधम लोगों को जीवन संग्राम के उपयोगी बनाने, शास्त्रोपदेश–विस्तार के द्वारा सभी लोगों के ऐहिकपारमार्थिक मंगल करने और ज्ञानलोक द्वारा सबमें प्रस्तुत ब्रह्म–सिंह को जाग्रत करने के लिये ही सन्यासियों का जन्म हुआ है।[2]

स्वामी विवेकानन्द के जन्म को डेढ़ सदी बीत चुकी है। लेकिन आज भी उनके संदेश युवाओं के लिये प्रेरणा के स्त्रोत बने हुये हैं। संपूर्ण राष्ट्र के भविष्य की दिशा तय करने में भी उनके विचार विर्णायक भूमिका का निर्वहन करने की क्षमता रखते हैं। आज वेदान्त–दर्शन को विज्ञान के समान मान्यता मिलने लगी है, जिससे स्वामी जी के विचार और भी प्रासंगिक हो गये हैं। उनके ये विचार भारत ही नहीं बल्कि पश्चिमी राष्ट्र भी स्वीकार कर रहे हैं क्योंकि ये विचार मूलभूत हैं, जिसमें अखिल मानव जाति का विचार किया गया है।

हिन्दू धर्म के पुनरूद्धारक स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता के मोहन मुखर्जी स्ट्रीट के सिमुलिया मुहल्ले में मकर संक्रांति के दिन धनी–मनी दत्त परिवार में हुआ था। उनकी मां भुवनेश्वरी देवी अपने पुत्र को शिवजी का प्रसाद मानती थीं तथा उन्हें 'वीरेश्वर' के नाम से पुकारती थीं। परन्तु परिवार के सभी सदस्य उन्हें 'नरेन्द्र' व 'बिले' कहते थे। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता थे। मां बचपन से ही उन्हें रामायण और महाभारत की कहानियां सुनाया करती थीं। प्रारंभिक शिक्षा भी उन्हें मां के द्वारा ही मिली। 1879 में उन्होंने उच्च शिक्षा के लिये कलकत्ता प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। बी0ए0 की पढ़ाई के दौरान उनके पिता की आकस्मिक मृत्यु से उन पर समस्याओं का पहाड़ खड़ा हो गया। इन दुष्कर परिस्थितियों ने नरेन्द्र को विद्रोही और नास्तिक बना दिया। इसी दौरान प्रोफेसर हेस्टी साहब के कहने पर उनकी भेंट दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी श्री राममृष्ण परम हंस से हुयी। कुछ समय बाद नरेन्द्र उनके सबसे प्रिय शिष्य बन गये।[3]

15 अगस्त, 1886 को वेदान्त के प्रचार की जिम्मेदारी नरेन्द्र को सौंपकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने महासमाधि द्वारा अपनी नश्वर देह का त्याग कर दिया। 25 वर्ष की आयु में स्वामी जी ने सन्यास ग्रहण कर लिया। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि पहले स्वामी जी अपना नाम 'विविदिषानन्द' लिखा करते थे। खेतड़ी के राजा अजीत सिंह ने ही युवा सन्यासी विविदिषानन्द को 'विवेकानन्द' नाम दिया और शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रेरित किया, साथ ही उस प्रवास के लिये वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये।[4] अब वे स्वामी विवेकानन्द हो चुके थे। अपने गुरू को दिये गये वचन के कारण ही उन्होंने ''सर्वजन हितांय–सर्वजन सुखाय'' के सत्य के प्रचार के लिये भारत तथा विदेशों का भ्रमण किया। 11 सितंबर 1893 में शिकागो धर्म महासभा में

सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिभाग कर ''हिन्दू धर्म'' की विजय पताका पूरे संसार में फैला दी। वे जीवन पर्यन्त अपने गुरू के दिये वेदान्त ज्ञान का प्रचार–प्रसार भारत तथा अन्य देशों में करते रहे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 1 मई, 1897 को कलकत्ता में 'रामकृष्ण मिशन' का गठन किया जो वर्तमान में भी स्वामी जी के संदेशों को संसार भर के फैला रहा है। भारत के ये महान सन्यासी मात्र 39 वर्ष की आयु में 4 जुलाई 1902 के बेलूरमठ में महासमाधि में विलीन हो गये।[5] स्वामी जी की अमूल्य धरोहर जो उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिये छोड़ी है और जिन आदर्शों को स्वामी जी ने सदा ऊंचा रखा है, उन सबसे भारतीय युवकों को अवगत कराना अतीव आवश्यक है। आज जब संपूर्ण विश्व में राष्ट्रवाद अपने पूरे उत्कर्ष में है ऐसे में स्वामी जी के राष्ट्रवादी विचार हमें पथ प्रदर्शित करने में सहायक सिद्ध हो रहे है। राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक अथवा धार्मिक सिद्धान्त राजनीतिक चिंतन को विवेकानन्द की महत्वपूर्ण देन माना जाता है। संपूर्ण विश्व को अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखाकर सांस्कृतिक राष्ट्रवार का परिचय सबसे पहले विवेकानन्द जी ने ही कराया था। वे एक ऐसे आध्यात्मिक गुरू थे जिन्होंने धर्म को व्यवहारिक बनाया तथा भारतीय सभ्यता के निर्माण और संस्कृति के प्रसार के लिये हमेशा समर्पित रहें।[6]

राष्ट्रवाद एक भावना का संकेत भी देता है, और एक विचारधारा का संकेत भी। एक भावना के रूप में यह अपने राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के अनुराग या लगाव को व्यक्त करता है। इस अर्थ में राष्ट्रवादी वह है जो राष्ट्रहित को अन्य सब हितों से ऊंचा स्थान देता है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद यह मांग करता है कि राज्य का ढ़ांचा और राजनीतिक संगठन राष्ट्रत्व की नींव पर खड़ा होना चाहिये और प्रत्येक राज्य को किसी स्वाधीन राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिये। लेकिन वर्तमान में राष्ट्रवाद को इन दोनों के मिश्रित रूप में अधिक देखा जाता है। राष्ट्रवाद 19वीं सदी की सबसे ताकतवर विचारधारा रही है। सोलवीं और सत्रहवीं शताब्दी के आसपास यूरोप में आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय हुआ था जिसने राष्ट्रवाद के उभार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनकी सत्ता केन्द्रीकृत सम्प्रभु और अविभाज्य थी। इसके विपरीत मध्ययुगीन यूरोप में राजसत्ता किसी एक सम्प्रभु शासक या सरकार के पास रहने की बजाय बंटी हुयी थी। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों ने सत्ता का यह बंटवारा खत्म कर दिया, जिसके आधार पर राष्ट्रवाद का विचार पनप सका।[7]

सबसे पहले राष्ट्रबोध राजनैतिक दृष्टि से पश्चिम में जगा, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब साम्राज्य का पतन हुआ तो तब अमेरिका के नेतृत्व में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ। आर्थिक आधार पर अपनी मुद्रा को एक कर युरोप में एक संघीय मुद्रा 'यूरोजोन' का निर्माण हुआ किन्तु ब्रिटेन ने मुद्रा के स्तर भले ही अपना ली किन्तु अपनी राष्ट्रीय पहचान कायम रखी है जिससे आर्थिक राष्ट्रवाद को भी खोखलापन समझ आता है। इस तरह राष्ट्रवाद अपने इन दोनों ही रूपों में खरा नहीं उतर सका। अतः आज सभी देशों ने अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और मान्यताओं को स्वीकार कर उन्हें पुर्नजीवित करना शुरू कर दिया है।

उदाहरणस्वरूप सोवियत रूस को ही देखों जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मार्क्स के साम्यवाद के आधार पर लोगों में राष्ट्रप्रेम जगाना असंभव हो गया था तब धर्म को अफीम मानने वाले इस साम्यवादी देश ने अपने पारंपरिक गिरजाघरों को बंधनों से मुक्त किया और इस तरह पादरियों ने लोगों में देशभक्ति जागृत की। स्टांलिन ने उसके बाद पूरे देश में ही चर्च को उनके स्थान वापस लौटाये। आज चीन तथा अमेरिका को भी यह मर्म समझ में आ गया है। अतः अपनी जड़ों को सुदृढ़ करने के लिए चीन ने 'कनफ्यूसियस' धारणाओं को पुर्नजिवित करना प्रारम्भ कर दिया है। विश्व के 100 से अधिक विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन केन्द्र खोलने के लिए चीन सरकार ने पैसा लगाया है। अमेरिका भी

गत 25–30 वर्षो से अपने स्वतत्व की खोज में लगा है। 9–2–11 की घटना के बाद तो उसमें अधिक आग्रह आ गया है।

विवेकानन्द जी एक दूरदर्शी महापुरूष थे उन्होंने भारतीयों को यह संदेश बहुत पहले ही दे दिया था कि भारत में स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास तभी हो सकता है जब हम अपने आप से पूदें कि हम कौन है? भारतीय होने का क्या अर्थ है? इसके लिए हमें अपने स्वयं के ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर अपनी खोज करनी होगी तथा अपने पूर्वजों के धर्म व संस्कृति के आधार पर अपनी राष्ट्रीयता की खोज करनी होगी। क्योंकि उनका कहना था कि राष्ट्र की भावी महानता का निर्माण उसके अतीत की नींव पर ही किया जा सकता है। अतीत की उपेक्षा करना राष्ट्र के जीवन का निषेध करने के समान है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का निर्माण अतीत की ऐतिहासिक विरासत की सुदृढ़ नीवं पर ही करना होगा। स्वामी जी ने कहा कि जब कोई मनुष्य अपने पूर्वजों के बारे में लज्जित होने लगे, तब समझ लो कि उसका अंत आ गया। मैं यद्यपि हिन्दू जाति का एक नगण्य घटक हूँ तथापि मुझे अपनी जाति पर गर्व है। मैं स्वयं को हिन्दू कहलाने में गर्व का अनुभव करता हूँ। मुझे गर्व है कि मैं आप लोगों का एक तुच्छ सेवक हूँ। तुम ऋषियों की संतान हो, तुम्हारा देशवासी कहलाने में मैं अपना गौरव मानता हूँ। तुम उन महान ऋषियों के वंशज हो, जो संसार में अद्वितीय रहे हैं।

यही वह पुरातन भूमि है। जहां ज्ञान ने अन्य देशों में जाने से पूर्व अपनी जन्म भूमि बनाई थी, यहीं सर्वप्रथम मानव प्रकृति एवं अंतर्गत के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे, यहीं आत्मा की अमरता, एक परमपिता परमेश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओत–प्रोत एक परमात्मा–परमेश्वर के सिद्धान्त सर्वप्रथम उठे और यहीं विज्ञान, धर्म और दर्शन के उच्चतम ज्ञान की लहर बार–बार उमड़ी और समस्त संसार में छा गयी। संपूर्ण विश्व पर हमारी मातृभूमि का महान ऋण है। सारे संसार से लोग हमारी सभ्यता व संस्कृति को देखने उससे सीखने के लिये भारत आते थे, इस कारण हम जगतगुरू कहलाये, लेकिन आज हम पाश्चात्यीकरण के चक्कर में अपनी धर्म व संस्कृति को भूल रहे हैं, जो हमारी राष्ट्रीयता के लिये सही नहीं है। आज आवश्यकता है हमें अपने प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को पुनः स्थापित करने की, और फिर से अपनी अलग राष्ट्रीय पहचान बनाने की।[8]

इसके लिये हमें विवेकानन्द जी की यह बात भी ध्यान रखनी होगी कि भारत की आधार भित्ती या जीवन केन्द्र एकमात्र 'धर्म' ही है। उन्होंने कहा था कि प्राच्य और पाश्चात्य देशों में घूमकर मुझे दुनियां का कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है और मैंने सर्वत्र सब देशों का कोई न कोई ऐसा आदर्श देखा है कि जिसे उस देश का मेरूदण्ड कह सकते हैं। कहीं राजनीति कहीं समाज–संस्कृति, कहीं मानसिक उन्नति उसके मेरूदण्ड का काम करती है परंतु हमारी मातृभूमि का मेरूदण्ड धर्म–केवल धर्म ही है। उसी की नींव पर हमारा राष्ट्रीय जीवन का प्रासाद खड़ा है। भारतवासियों ने अभी भी उसका परित्याग नहीं किया है, और अन्धविश्वासों के बावजूद वह आज भी सबल है। भारत, मृत्यु की भांति, दृढतापूर्वक ईश्वर, केवल ईश्वर से चिपका हुआ है। हिन्दु का खाना धार्मिक, पीना धार्मिक, सोना धार्मिक, उसकी चाल–ढाल धार्मिक, विवाह आदि धार्मिक और यहां तक कि उसकी चोरी करने की प्रेरणा भी धार्मिक होती है। इसका एक कारण यह है कि इस देश की प्राण शक्ति–इसका ध्येय धर्म है, और चूंकि धर्म पर आघात नहीं हुआ है इसीलिये यह देश अभी तक जीवित है। इसलिये उसके पास अभी भी उन्नति की आशा है।[8]

आज संपूर्ण विश्व में राष्ट्रीयता का आधार धर्म व संस्कृति ही है। स्वामी विवेकानन्द ने ही इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का परिचय लोगों को करवाया था। संसार के सम्मुख भारतीय संस्कृति और सभ्यता का डंका बजाने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को ही जाता है। उन्होंने हिन्दू धर्म का इस आधार पर समर्थन किया था कि वह नैतिकता, मानवता और आध्यात्मिकता का एक सार्वभौमिक संदेश है। वे हिन्दू

धर्म को सब धर्मों का सार मानते थे। यहां पर हिन्दू धर्म का आधार वैज्ञानिक विवेक और दर्शन है। धर्म सनातन रीति है, इसी का सुसंस्कृत व्यवहार संस्कृति है। इसी मूलभूत आधार के कारण हिन्दू एक राष्ट्र है।

भारत के राष्ट्रीय जीवन का मूल स्त्रोत धर्म है। एक ऐसा धर्म, जो विश्व की आध्यात्मिक एकता का प्रतिपादन करता है। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म का इस आधार पर समर्थन किया था कि वह नैतिक मानववाद और आध्यात्मिक आदर्शवाद का एक सार्वभौम सन्देश है। उनके लिये हिन्दू धर्म का ऐसा व्यापक सत्य था, जो मनोवैज्ञानिकों को राजयोग के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भण्डार दे सकता था, जो सामवेद के मंत्रों तथा तुलसीदास एवं दक्षिण के आलवार के संतों के भजनों द्वारा भक्तों को प्रेरणा दे सकता था और जो वीर कर्मयोगी को गीता में श्री कृष्ण द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्म का संदेश दे सकता था। यह सभी धर्मों और संस्कृतियों को साथ लेकर चलता है। जब तक इस्लाम धर्म की लहर भारत में नहीं आयी थी, तब तक यहां के लोग यह जानते तक नहीं थे कि धर्मिक अत्याचार किसे कहते हैं। जब विधर्मी विदेशियों द्वारा हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार हुआ, तभी उन्होंने इसे पहली बार अनुभव किया। संसार की सभी जातियों में हम ही हैं जिन्होंने कभी दूसरों पर सैनिक विजय प्राप्ति का पथ नहीं अपनाया और इसी कारण हम आशीर्वाद के पात्र हैं। स्वामी जी को इसलिये हिन्दू जाति में जन्म लेने तथा भारत जैसे देश का होने पर गर्व था। इसी विश्वास के कारण वे दुनियां के समक्ष हिन्दुत्व की विजय–पताका फहराने में सफल हो सकें।

हिन्दू धर्म को स्वामी जी ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर पहचान दी है। 19वीं शताब्दी के अंत तक विश्व भारत के बारे में बहुत कम जानता था। अंग्रेजों एवं ईसाई मिशनरियों ने भारत के बारे में कई भ्रांतियां फैलाई थीं, जैसे कि भारत असभ्य एवं सपेरों का देश है, यहां पर बुराइयों की भरमार है, लोग जंगली एवं बुरी परंपराओं को मानते हैं आदि। स्वामी जी ने इस भ्रान्तियों को दूर करने के लिये पश्चिमी देशों की यात्रायें की। साथ ही स्वामी जी कहते हैं ''मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का असली कारण यह है कि हम दूसरे रास्तों से नहीं मिलत–जुलते, यही अकेला और एक मात्र कारण है। हमें कभी दूसरों के अनुभवों के साथ अपने अनुभवों को मिलान करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। हम कूपमंडूक कुएं के मेंढक बने रहे।'' वे आगे कहते हैं–हमें पश्चिम के साथ अपनी सभ्यता का आदान–प्रदान करना होगा क्योंकि 'प्रसार ही जीवन है और संकोच मृत्यु'।[10] इसीउद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 1893 में शिकागो में आयोजित 'धर्म महासभा' में भारत की ओर से सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिभाग किया था। वहां उन्होंने अमेरिका वासियों को संबोधित करते हुये कहा था कि ''मेरे अमेरिकी भाइयों और बहनों! आपने जिस हर्षोल्लास और स्नेह के साथ मेरा यहां स्वागत किया है उसके प्रति आभार प्रकट करने के लिये मेरा ह्रदय हर्ष से भर गया है। दुनियां के साधू सन्तों की सबसे प्राचीन परंपरा की आरे से मैं आपको धन्यवाद देता हूं''। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूं जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की शिक्षा दी है। हमलोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और उत्पीड़ित और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मैं आप लोगों को एक श्लोक की कुछ पंक्तियां सुनाता हूं, जिसकी आवृति मैं अपने बचपन से ही करता रहा हूँ और जिसकी आवृति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं, –

रूचीनां वैचि–यादूजुकुटिलनानापथ्जुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव[11]

अर्थात जैसे विभिन्न नदियां भिन्न–भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न–भिन्न रूचि के अनुसार टेढे–मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

भगिनी निवेदिता लिखती है–शिकागो धर्ममहासभा में जब स्वामीजी ने अपना भाषण आरंभ किया, तो उनका विषय था– 'हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक विचार' पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तो आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। उनके भीतर संपूर्ण भारतवर्ष को अपनी भावधारा का महत्व आंकने की क्षमता मिली। भारत की धर्म चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में अपने आप को प्रकाशित किया।[12]

इस तरह उन्होंने अमेरिका तथा यूरोप अन्य देशों में भारत की वैभवशाली सांस्कृतिक परंपराओं की ध्वज पताका फैलायी और वहां वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार किया।इसके लिए उन्होंने न्यूयार्क में फरवरी 1896 में वेदान्त समिति की स्थापना की। इस दौरान अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में उनके अनेक शिष्य तथा शिष्याएँ भी बनी जो उनके इस महान कार्य में उनकी सहायक बने, जिनमें से भगिनी निवेदिता और सेवियर दम्पत्ति तो उने साथ भरत भी आये। स्वामी जी के कहने पर सेवियर दम्पत्ति ने 19 मार्च 1899 को हिमालय के समीप मायावती नामक स्थान पर अद्धैत आश्रम की स्थापना की जो आज भी उनके सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार कर रहा है। इस प्रकार स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों में भारत के बारे में जो भ्रान्तियां फैली थी उन्हें दूर किया।

स्वामी जी एक महान राष्ट्र भक्त थे। उनके राष्ट्र प्रेम का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भारत लौटने से पूर्व जब उनके एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा कि–''स्वामी जी! पाश्चात्य देशों में इतने साल गुजारने के बाद अब भारतवर्ष आपको कैसा लगेगा''? भावभीने स्वर में स्वामी जी ने उत्तर दिया–''पाश्चात्य देशों में आने से पूर्व मैं भारत से प्यार करता था, पर अब तो भारत की हवा और मिट्टी तक मेरे लिए पवित्र है। भारतवर्ष मेरे लिए अब पावन तीर्थ है''।[13] स्वामी जी भारतीय संस्कृति को पुर्नजीवित कर उसके प्रचार–प्रसार द्वारा भारत को फिर से 'जगतगुरू' बनाना चाहते थे। वे भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि– हमारे सामने एक महान आदर्श है और वह आदर्श है– भारत की विश्व पर विजय'। उठो भारत, तुम अपनी आध्यात्मिकता द्वारा जगत पर विजय प्राप्त करो, जैसा कि इसी देश में पहले–पहल प्रचार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा को नहीं जीत सकता। हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह महान जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की संख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पाश्चात्य देशों पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे–धीरे पाश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी? वे लोग कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों के उपदेश जगत के सब देशों में पहुँचाने के लिए तैयार हों? कहाँ हैं वे लोग, जो इस हेतु सबकुछ छोड़ने को तैयार हो, ताकि ये कल्याणकारक उपदेश संसार के कोने–कोने तक फैल जाये। सत्य के प्रचार के लिए ऐसे वीर ह्रदय के लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यों को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियों को बाहर जाना चाहिए। जगत को इसकी चाहत है, इसके बिना जगत विनष्ट हो जायेगा। सारा पाश्चात्य जगत मानो ज्वालामुखी पर बैठा है, जो कल ही फूटकर उसे चूर–चूर कर सकता है। भारत के धार्मिक विचारों को पाश्चात्य देशों की नश–नश में भरने का यही समय है। इसलिए हे युवकों, मैं विशेषकर तुम्हीं को इसे याद रखने को कहता हूँ। हमें बाहर जाना ही पड़ेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत जीतना ही होगा। सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि एक बार

भारत पुनः विश्व पर 'आध्यात्मिक विजय' प्राप्त करे। उनके इन्हीं विचारों के कारण उनका राष्ट्रवाद अभूतपूर्व था।[14]

वर्तमान भारत में राष्ट्रवाद की स्थिति :– आज अगर हम राष्ट्रवाद की बात करें तो हमें आध्यात्मिक और सांस्कृति राष्ट्रवाद दूर–दूर तक दिखायी नहीं देता, कारण इसका स्थान वर्तमान में साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद ने जो ले लिया है। आज धर्म व जाति के नाम पर मतभेद राष्ट्र का एक आम मुद्दा बन गया है। हिन्दू और मुसलमानों के आपसी दंगों के कारण देश की एकता और राष्ट्रीयता की भावना खतरे में दिख रही है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा को साथ लेकर चलने वाला देश आज अपनी ही अंदरूनी कलह से हताश है। इसके लिए कुछ हद तक हमारी राजनीतिक व्यवस्था व सोशल मीडिया भी जिम्मेदार हैं। जहां एक ओर राजनीतिक पार्टियां अपने राजनीतिक लाभ व सत्ता प्राप्ति के लिये धर्म को आधार बनाकर वोट मांग रही हैं जिससे यह तनाव बढ़ता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान युग 'सोशल मीडिया का युग' है। और 'नौजवान काल' है जहां पर आप किसी भी विषय–वस्तु को त्वरित संचारित कर सकते हैं। आज देश में हिन्दू–मुस्लिम के छोटे से झगड़े को भी इतना बढ़ा–चढ़ा कर दिखाया जाता है जिससे तनाव बढ़ जाता है, तथा किसी भी मुद्दे को धर्म से जोड़कर दिखाया जाता है जो न तो हमारे लिये सही है न हमारे देश के लिये। हम एक राष्ट्र के निवासी हैं चाहे हम किसी भी धर्म से हो हमारा मुख्य धर्म 'राष्ट्रप्रेम' होना चाहिए तभी हम एक मजबुत राष्ट्र बना सकते हैं। जब देश की बहुधा आबादी नवयुवकों की हो तो हमारे वैचारिक और सामाजिक दायित्व और भी बढ़ जाते हैं। हम किस तरह का मार्ग देश के युवाओं को दिखाना चाहते हैं वो हमारे संचार, समाचार व पत्रकारिता की कलम पर भी बहुत सीमा तर निर्भर करता है। यदि हमारी कलम राष्ट्र के प्रति समर्पित रहेगी तो हमारा नौजवान भी राष्ट्रहित के दायरे में अपने आपको विकसित व सवंर्धित करेगा।

दूसरी ओर हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को भी भूल रहे हैं और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को अपना रहे हैं, जो हमारी राष्ट्रीयता के लिए दूसरा बड़ा खतरा है। क्योंकि अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर होने का मतलब है अपने राष्ट्र से दूर होना, जो सही नहीं है। वर्तमान सामाजिक बदलाव को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे न तो हमारी संस्कृति रह गयी है न ही हमारी सभ्यता। पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण द्वारा हमने उन बातों को अपनाया है जो हमारी संस्कृति के प्रतिकूल थीं। जिस भारतीय समाज में हम रह रहे हैं वहां की प्राचीन सभ्यतायें, मर्यादाये और नैतिक मूल्य कुछ और ही थे। ऐसे में जब हम पहनावे व खान पान में खुली सोच का अन्धानुकरण करते हैं तो हमारे वातावरण में नग्नता व रूग्णता दिखायी देती है। जब हमारे देश की अधिकारिक भाषा हिन्दी है तो क्यों उसे बोलने से लोग कतराते हैं। इस पाश्चात्यीकरण से सबसे ज्यादा हमारी युवा पीढ़ी प्रभावित हुयी है। प्रत्येक युवा अपने को मार्डन कहलाना अच्छा समझ रहा है, इस कारण वह इसको अपना रहा है। वह भूल रहा है कि भारत अपनी संस्कृति के उच्च आदशों के कारण 'विश्वगुरू' कहलाता था। यहां की सभ्यता व संस्कृति से सीखने के लिए अनेक विदेशी भारत आये थे। लेकिन इसके विपरीत आज हम विदेश जाने और वहां की संस्कृति को अपनाने में गर्व महसूस कर रहे हैं। जो हमारे राष्ट्रीय पतन का एक बड़ा कारण है।[15]

आज धर्म के नाम पर जो जन–शोषण हो रहा है वह भी हमारी राष्ट्रीयता को कमजोर कर रहा है। स्वामी जी कहते थे कि–पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं, जो हिन्दू धर्म जैसा इतने उच्च स्वर में मानवता के गौर का उपदेश देता हो और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और निम्न जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोटता हो। भारत के करोड़ों अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? तुम लोगों के घरों के चारों ओर जो पशुवत भंगी–डोम हैं। उनकी उन्नति के लिए तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिए क्या करते हो? बताओ नो। तुम उन्हें छूते भी नहीं

और उन्हें दूर–दूर' कहकर भगा देते हो। क्या हम मनुष्य हैं। अब धर्म कहां है? केवल छुआछूत में, मुझे छुओ मत, छुओ मत। क्या हमारा सनातन धर्म ऐसा सिखाता है? क्या हमारे वेदों में कहीं पर ऐसा लिखा है? यह पुरोहिती प्रपंच ही भारत के पतन का मूल कारण है। आज देश में सांप्रदायिकता और जाति के आधार पर भेदभाव बहुत बढ़ गया है। अतएव यदि भारत को महान बनाना है, इसका भविष्य उज्जवल बनाना है तो इसके लिए आवश्यक है–संगठन करने की ओर बिखरी हुई इच्छा शक्तियों को एकत्रित करने की। यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड', ब्राह्मण और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर तू–तू, मैं–मैं करते रहोगे, झगड़े और पारस्परिक विरोध के भाव को बढ़ाओगे तो समझ लो कि तुम उस शक्ति संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भाग्य गठित होने वाला है। याद रखो, 'हमारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है'। पहले हमें उनकी उन्नति के लिए कार्य करना होगा, तभी भारत का उद्धार हो सकता है।[16]

निष्कर्ष और सुझाव :– वर्तमान परिस्थिति को देखकर ही प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी को स्वामी जी के उच्च राष्ट्रीय आदर्शो से परिचित करना और उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना को जगाना है। विवेकानन्द जी ने कहा था कि नैसर्गिक और स्वस्थ राष्ट्रवाद का विकास तभी हो सकता है जब न सिर्फ धर्मो के बीच बल्कि पूरब और पश्चिमी संस्कृतियों के बीच भी स्वस्थ आदान प्रदान हो। वे कहते थे आज जरूरत है 'वेदान्त युक्त पाश्चात्य विज्ञान की'। वे पाश्चात्य राष्ट्रों से उनकी अच्छी बातों जैसे–उनके शिल्प विज्ञान और भौतिक विज्ञान को सीखने के पक्ष में थे। लेकिन साथ ही वे पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण के विरोधी थे। उन्होंने स्पष्ट कहा था– 'स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर अपने धर्म यानी अध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जायेगा, क्योंकि राष्ट्र का मेरूदण्ड (धर्म) टूट जायेगा। राष्ट्रीय भवन की नींव खिसक जायेगी। इन सबका परिणाम 'सर्वतोमुखी विनाश'।[17]

स्वामी जी ने जीवन के हर क्षेत्र में होने वाले आजके पूर्व–पश्चिम के परस्पर आदान–प्रदान को बहुत पहले ही देख लिया था कि यही आदान–प्रदान पूर्ण विश्व सभ्यता का निर्माण करेगा। स्वामी जी के अनुसार सभ्यता तभी पूर्ण होगी जब भारत अपने आध्यात्मिक संदेश का कोश संसार को देगा और बदले में उससे आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियां लेगा। वास्तव में स्वामी जी की शिक्षा वेदान्त पर आधारित 'विश्व संस्कृति' का संदेश है। वे पुनः कहते हैं–''जागो भारत! जागे, अपनी आध्यात्मिकता से संसार को जीत लो, तुम्हारा नवजागरण और जातीय जीवन का दायित्व तभी चरितार्थ होगा जब तुम अपनी युग–युग से संचित आध्यात्मिक शक्ति द्वारा विश्व पर विजय पा सकोगें''।[18]

भारत आज भी अपनी अलग राष्ट्रीय पहचान बना सकता है। विश्व को देने के लिए उसके पास अभी भी बहुत कुछ है वह अपने आध्यात्मिक आलोक द्वारा फिर से जगतगुरू बनने की क्षमता रखता है। वेदान्त का आध्यात्मिक आलोक ही भारत की बहुमूल्य धरोहर है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पहले वे भारतीय युवाओं को संगठित करना चाहते थे, क्योंकि किसी भी राष्ट्र के निर्माण में उस देश की युवाशक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, और उस देश के लिए तो यह और भी महत्वपूर्ण है जिस देश की आधी आबादी युवाशक्ति की हो। स्वामी जी ने कहा–''हमारे देश के लिए इस समय जरूरत है लोहे की तरह ठोस मांसपेशियों और मजबूत स्नायुवाले शरीरों की। आवश्यकता है इस तरह से दृढ़ इच्छा–शक्ति की, जो ब्रह्ममाण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिए अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। यही हमारे लिए परम आवश्यक है और इसका आरम्भ, स्थापना और दृढ़ीकरण अद्वैतवाद अर्थात सर्वात्मभाव के महान आदर्श को समझने तथा उसके साक्षात्कार से ही संभव है''।[19]

वे युवाओं की जागृत करने के लिए उनका आहवान करते हुए कहते हैं कि निराशा, कमजोरी, भय, आलस्य तथा ईर्ष्या युवाओं के सबसे बड़े शत्रु हैं।युवाओं का उससे बड़ा शत्रु है उनका स्वयं को कमजोर समझना। विवेकानन्द जी ने युवाओं को जीवन में लक्ष्य निर्धारण करने के लिए स्पष्ट संदेश दिया और कहा कि तुम सदैव सत्य का पालन करो, विजय तुम्हारी होगी। आने वाले भारत का भविष्य तुम्हारी कार्यशैली पर ही निर्भर करेगा। स्वामी जी ने कहा था कि हमें कुछ ऐसे युवा चाहिए जो देश के खातिर अपना सर्वस्व न्योंछावर करने को तैयार हो। ऐसे युवाओं के माध्यम से वे देश ही नहीं विश्व को भी संस्कारित करना चाह रहे थे। आज भारतीय युवा विश्व के प्रायः सभी देशों में अपनी प्रतिभा कौशल से न केवल संबंधित देश की अर्थव्यवस्था में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं अपितु बहुमूल्य विदेशी मुद्रा भेजकर व अपने देश में धन का निवेश करके राष्ट्र को समुन्नत करने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। भारत अपनी इस युवाशक्ति के आधार पर ही अपनी परंपरागत छवि का आवरण उतारकर नूतन वैशिक स्तर की अस्मिता बनाने में सफल रहा है। लेकिन इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता कि राष्ट्र के विकास की इस यात्रा में राष्ट्रवाद से जुड़ी भावनात्मक संवेदनशीलता युवाओं के जीवन से गायब होती जा रही है। अतः आज हमें आवश्यकता है कि युवाओं को उनके स्वतत्व और प्राचीन वैभव का ज्ञान कराया जाय जिससे वे स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।[20]

वास्तव में स्वामी विवेकानन्द आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं। विशेषकर भारतीय युवकों के लिए स्वामी विवेकानन्द से बढ़कर दूसरा कोई नेता नहीं हो सकता। हमारे भूतपर्वू प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने बहुत पहले ही स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा था–''मैं नहीं जानता हमारी युवा पीढ़ी में कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढ़ते हैं, परंतु मैं उन्हें यह निश्चित बता सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुतेरे युवक उनके द्वारा अत्यधिक मात्रा में प्रभावित हुये थे। मेरे विचार में, यदि वर्तमान पीढ़ी के लोग स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढ़े तो उन्हें बहुत बड़ा लाभ होगा और वे बहुत कुछ सीख पायेंगें। यदि तुम स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और लेखों को पढ़ो तो तुम्हें यह आश्चर्यजनक बात दिखायी देगी कि वे कभी पुराने नहीं प्रतीत होते। उन्होंने हमें कुछ ऐसी वस्तु दी है जो हममें अपने उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त परंपराओं के प्रति एक प्रकार का अभिमान–यदि मैं इस शब्द का व्यवहार कर सकूं–जगा देती है। स्वामी जी ने जो कुछ भी लिखा और कहा है वह हमारे लिए हितकर है और होना ही चाहिए तथा वह आने वाले लंबे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उन्होंने वर्तमान भारत को दृढ़ रूप से प्रभावित किया है, और मेरे विचार से तो हमारी युवा पीढ़ी स्वामी विवेकानन्द से निःसृत होने वाले ज्ञान, प्रेरणा एवं तेज के स्त्रोत से लाभा उठायेगी''।[21]

आज स्वामी विवेकानन्द के विचारों की इसी प्रासंगिकता को देखते हुए भारत सरकार ने घोषणा की है प्रतिवर्ष 12 जनवरी को, यानि स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती की 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में देशभर में मनाया जाए। इस संदर्भ में भारत सरकार को ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी के जीवन तथा कार्य के पश्चात निहित उनका आदर्श–यही भारतीय युवकों के प्रेरणा का बहुत बड़ा स्त्रोत हो सकता है। अतः आज के युवाओं के पास उत्तराधिकारी के रूप में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की अमूल्य धरोहर है, जिसके अनुपालन से वे विश्व में सफलता के नये आयाम स्थापित कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. स्वामी विदेहात्मानन्द, 'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान' अद्वैत आश्रम कोलकाता, 2002, पृ0 378।
2. शंकर 'विवेकानन्द की आत्मकथा', प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ0 19

3. गुप्त परशुराम, 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद', प्रतिभा प्रतिष्ठान नई दिल्ली, 2015 पृ011
4. शर्मा पं0 झाबरमल्ल, 'खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द', साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 2013, पृ0 10
5. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ0 17
6. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद, 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2016, पृ0 187
7. गाबा प्रकाश ओम, 'राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा', मयूर पेपर बुक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ0 128
8. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ0 42
9. स्वामी विवेकानन्द, 'मेरा भारत अमर भारत', रामकृष्ण मठ नागपुर, 2011, पृ015
10. 'विवेकानन्द साहित्य' भाग–4 अद्धैत आश्रम कोलकता, 2014, पृ0258
11. 'विवेकानन्द साहित्य', भाग–1, अद्धैत आश्रम कोलकता, 2014, पृ0 4
12. स्वामी अपूर्वानन्द, 'स्वामी विवेकानन्द संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश' रामकृष्ठ मठ नागपुर, 2012, पृ050
13. पूर्वोत्तर, पृ0 60
14. गुप्त परशुराम, पूर्वोक्त, पृ0 97
15. 'विवेक ज्योति', (हिन्दी त्रेमासिक), विवेकानन्द आश्रम रामपुर, 2002, पृ0 18
16. 'मेरा भारत अमर भारत', पूर्वोक्त, पृ0 20
17. 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद' पूर्वोक्त, पृ0 45
18. 'मेरा भारत अमर भारत', पूर्वोक्त, पृ0 33
19. 'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान', पूर्वोक्त, पृ0 377
20. 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद', पूर्वोक्त, पृ0 5
21. ध्यानी ममता', प्रेमचन्द्र के साहित्य पर स्वामी विवेकानन्द के चिंतन का प्रभाव', ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2013, पृ0 47

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

EXPRESSION OF SPIRITUALISM IN TAGORE'S POETRY

Bikash Kumar Bhagat

Research Scholar, B.N.M.U. Madhepura

Rabindranath Tagore is the poet of humanity, heavenly love and spiritualism. In other words he is the worshipper of supreme entity i.e God. Let us search them in Tagore's works.

Relation between God and the Individual

In fact, God is the master of the universe, and He Works on single principle behind the enumerable and variegated phenomena of the universe. Tagore is of the opinion that God pervades throughout the universe like all pervasive presence. Shankaracharya regards Brahamna as real and the universe as only Maya or unreal. We perceive many things in the universe under the influence of maya, but the reality is only the Tagore unlike shankar, does not regard the innumerable passing things as unreal; they are as much real as the one. Tagore's conception of the universe has in it a peculiar combinations of dualism and monism. God expresses Himself through the consciousness of the individual and as well as in the universe. The individual is a part of God, but he is also separate from Him, the Individual is like a river and God is like the sea. The river mixes with the sea and becomes one with it; but it is also separate from 1 it. Through a continuous process of realization the individual is trying to become one with God, which is the ultimate truth. God needs the love of the individual as much as the individual needs His. This idea is expressed in **song No 36 in Gitanjali.** The supreme person reflects the heart of existence and conveys his message of love through the blue flowers in spring. God's personality is shown through His creations of endless beauty. He does it because he captivates our hearts and awakens in us love for which He needs. He rejected the concept of the utter extinction of the individual self. The relation between man and God is the relation of eternal bound of love and union between the individual person and the universal person.

Relation Between Individual and Society.

There is no fundamental conflict between the individual and society. By extending consciousness, the entire mankind can be comprehended; and when it is done the individual personality finds its true fulfillment. An individual can be pleased not by the contraction of his self; but by the expansion of his soul. Man unlike an animal, seeks enjoyment in communion with the. All human begins; an ethical ideal is the best 'way of worshipping God. The ideal of international humanism is the highest goal of mankind; and the two fold problem of ethics and religion is solved by a realization of it with the process of reasoning. God can be best worshipped by living and adoring Divinity in man. The true religion lies in a love of

humanity; as the most concrete and visible manifestation of the supreme being is in man. In the beginning of life's evolution existence in the field of competition depend upon size or dimension, but this indefinite process of quantity could not last for long. A new element came to be gradually imported, which was related to the mind as a result of which the spirit of life went into the back ground and its place was taken by spirit of man. The spirit of man urges upon man to assert his freedom against the set rules of nature. Man with his two legs and intelligence not only easily solved the problems of his livelihood, also get enough time to think and imagine and quality entitled man to be distinct from the other forms of creation.

With its help he transgresses the limits of the individual life and feels that he has a free spirit. The boundaries of self go on constantly being expanded and in this process man goes on establishing closer union with the universe. The spirit of man is the spirit of union, the spirit of love and the spirit of realizing over selves in others. The union between the individual spirit with a spirit is done through either the path of knowledge, or the path of action or the path of devotion and love. None of these paths are of any use separately, so Tagore advocates -for a harmonious development of the human personality as whole and a synthesis of these different paths into a single one. The best path of realization consists in expressing over selves in the fields of knowledge, action and devotion and love. International humanism thus has been imparted a spiritual basis by Tagore. Tagore's main contribution to modern thought lies in the sphere of universal religion and international humanism. He has given to us what we call the Religion of Man. This is a religion of self-purification and it brought about by love and service and it rises above consideration of creed, faith or a dogma.

Tagore rejects aggressive nationalism and pleads for the ideal of internationalism. Nationalism presupposes greed, hatred and narrow competition and t dehumanizes mankind. Tagore is not merely a mystic poet and lives in a dream World of his poem as some critics in the west are inclined to think. His primary concern is with man and not with God.

To some extent George Bernard Shaw may be taken into account, but there is minute contrast. Shaw's doctrine of creative evolution with Tagore's conception of creative unity. Shaw thinks that the universe comprises two factors, life and matter, and that matter is the enemy of life cannot evolve unless it enters into and enlivens matter. Life force of Bernard Shaw is this animating principle of the universe which tries to dominate matter and uses it to raise itself to a higher level of development. Shaw's superman is men of power and talent but they are at the same time extremely selfish and brutal. Their hearts are immune of the feelings of love and sympathy. The method which Shaw has suggested for better species of humanity is by increasing the longevity of men and Women, but their does not necessarily employ a higher level of culture and refinement.

Shaw's theory of creative evolution is certainly an improvement upon the Darwinians theory is so far as he regards life as an independent principle. But he does not go farther than this. Besides he puts forward a concept of dualistic universe and cannot demand a total extinction of matter.

But Tagore is more relevant to overcome evil rampant in individual as well as in social life in present age because he regards the entire universe as essentially one. It is free from only kind of antagonism. The vast panorama that lies before uses only a manifestation of the different forms of an inherent unity; the universe of the many is in reality the universe

of one in different forms. The relation between the individual and the universe is not one of harmony and love, and the realization of this unity is the highest goal of life.

The greatness of a civilization is determined not only what is has and in what proportion but only what it expresses, and how mere production of material and accumulation of wealth do not make for civilization. Our impulses which are basically selfish and destructive, incline themselves towards higher level of excellence when they are learned with the ideal of love and unity.

Shaw presents a continuously evolving universe without static reality of the final goal. On this point too Tagore's human activities in this changing universe would remain eternally unfinished. The aim of evolution, which Tagore searches in all his writings, is not the acquisition of extraordinary powers, but the expression of higher level of consciousness. The universe as conceived by GB Shaw has only be coming and no being; but in Tagore the seam of Becoming is continually seeking to identify itself with sea of being Tagore perceives an eternal harmony between the near and beyond and with of them can be realized. Imperfection does not imply a negation of perfection, but perfection within limits.

The creative ideal seeks the ideal of perfection which gives us inspiration to express the best in us in creative activities whereby we exult in our joy with the universe. This faith in God, this faith in the reality of the ideal of perfection, has built up all that is great in the human world.

Evil to GB. Shaw is the outcome of social and economic circumstances. If a change is brought about in the external circumstances it will produce long livers and pa society in which there will be no poverty and misery. Tagore as different form this, regards evil as an inner quality or mental disease ' and one which cannot be eradicated by a change of circumstances. By a realization of our harmony with the infinite we remain good, we become evil to the extent that We are not able to realize this harmony.

Inner transformation of man is the remedy suggested by the world poet R.N Tagore to solve the problem of the modern world. He believes in the spiritual evolution of man. For him the; ultimate truth is not in the accumulation of mind but in his enlargement of sympathy across all obstacles of caste and colour. Therefore, his art in the form of poetry, drama novels, or short stories all reveal the secret reason of evils rampant in the World life and their remedy because his View of art is crystal clear.

References :-

1. Works By Tagore (in English)
2. Collected Poems and Plays of Rabindranath Tagore (1936)
3. A Tagore Reader edited by Amiya Chakravarty, 1961.
4. Gitanjali (translated by the author), 1912.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

रोहतास जिला के लघु एवम् कुटीर उद्योगों के विकास में आर्थिक संस्थानों की भूमिका

रणविजय सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
वाणिज्य विभाग,
ई.द.भा.प्र.सिंह महाविद्यालय
गढ़–नोखा (रोहतास),
(वीरकुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा)

रोहतास जिला बिहार के उन जिलों में से एक प्रमुख जिला है। इसकी स्थापना 1972 में तत्कालीन शाहाबाद जिला को विभाजित कर के किया गया था। इस जिले को भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(1) गंगाा एवं सोन नदियों से अच्छादित मैदानी क्षेत्र तथा

(2) पठारी क्षेत्र, राष्ट्रीय राज मार्ग 2 (जी.टी. रोड) से उत्तर बक्सर जिला, भोजपुर जिला कैमूर जिला का उत्तरी भाग से सटे क्षेत्र मैदानी क्षेत्र में आते हैं। इस क्षेत्र में जिला के 13 प्रखण्ड़ आते हैं। दूसरी ओर जी.टी. रोड़ से दक्षिण का भाग पठारी क्षेत्र में आता है। जिसमें जिला के 6 प्रखण्ड़ शामिल हैं। जिला का मैदानी भाग उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी से बना है जिसे धान का कटोरा कहा जाता है। दूसरी ओर पठारी क्षेत्र में कैमूर पहाड़ी पर स्थित जंगलों से प्राप्त तेन्दु पत्ता, लकड़िया एवं जड़ी–बूटियाँ वहाँ के निवासियों के लिए जीविका के साधन हैं। साथ ही पहाड़ों से पत्थर की कटाई एवं क्रेशर मशीन द्वारा पत्थर के विभिन्न उत्पाद का निर्माण एवम् अन्य व्यवसाय शामिल है। पहाड़ी पर और पहाड़ी के निचले भाग में बरसाती कृषि भी की जाती है।

रोहतास जिला मुख्यतः कृषि प्रधान जिला है। डिहरी ऑनसोन में स्थित उघोग समूह इस जिला का गौरव रहा है जिसमे कई उघोग स्थापित थे परन्तु 1980–90 के दशक में यह उघोग समूह बंद हो गया। श्रीलालू प्रसाद जी के रेलमंत्रीत्व काल में रोहतास उद्योग समूह को केन्द्र सरकार द्वारा अधिग्रहित किया गया ताकि रेल कारखाना की स्थापना की जा सके परन्तु उसके बाद की सरकारों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया वृहद् उद्योगों में अम़झोर का अभ्रक उद्योग तथा कल्याणपुर बंजारी सिमेंट उद्योग चालू है।

वर्तमान समय में रोहतास जिला में MSME क्षेत्र पर आधारित 2045 इकाईयां कार्यरत हैं जिसमें 5200 लाख रूपए की पूँजी बिनियोजित है। इसी प्रकार हस्तकरघा उद्योग की कुल 51 इकाइयों में 1025 लाख रूपए बिनियोजित है इसी प्रकार रेडिमेड वस्त्रों की 180 इकाइयों में 18 लाख रूपये तथा काष्ठ आधारित 231 इकाईयों में 12.95 लाख रुपये की पूँजी लगी हुई है। इसके अतिरिक्त कागज आधारित उद्यम (23 इकाईयां), रब्बर एवं प्लास्टिक आधारित उद्यम (35 इकाईया), इंजीनियरिंग की (127 इकाईया), मरम्मत एवं सेवा (355 ईकाइयां), चर्म उद्योग (92 इकाईयां), रसायन उद्योग (05 इकाईयां), धातु आधारित उद्यम् (307 इकाईयां), सोडावाटर (05 इकाईयां), खनिज आधारिज उद्यम (145

इकाईयां) तथा अन्य उद्यम (961 इकाईयां) रोहतास जिले की प्रमुख लघु एवं कुटीर उद्योगों में शामिल हैं। इस प्रकार इस जिला में कुल 4582 लघु एवं कुटीर उद्योग इकाईयां स्थापित हैं। जिनमें 8091,63 लाख रूपए की पूँजी विनियोजित है।

रोहतास जिला की लघु एवं कुटीर उद्योगों को विभिन्न बैंकों एवं वित्तिय संस्थानों द्वारा वित्त की व्यवस्था आवश्यकता पड़ने पर की जाती रही है। इसे निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है–

रोहतास जिला में MSME क्षेत्र को प्रदत वित्तीय सहायता लाख रूपए में।

वर्ष	लक्ष्य	उपलब्धि	उपलब्धि का प्रतिशत	वार्षिक वृद्धि प्रतिशत मे
2011–12	26253	24178	94	
2012–13	28567	27348	94.76	13.2
2013–14	30592	29575	96.68	08.15
2014–15	39157	38019	97.09	28.55
2015–16	54417	53394	98.12	40.44
2016–17	45633	63732	139.66	19.36

MSME क्षेत्र को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में सार्वजनिक क्षेत्र के बैकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, सहकारी बैंकों, विभिन्न कृषि साख समितियों तथा नवाड़ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिला में राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों की कुल संख्या 99 है। जिसमें 54 ग्रामीण क्षेत्र में, 25 अर्द्धशहरी क्षेत्र में तथा 20 शहरी क्षेत्र में हैं। इसी प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल संख्या 83 है, जिसमें 66 ग्रामीण क्षेत्र, में 12 अर्द्धशहरी क्षेत्र में तथा 5 शहरी क्षेत्र में स्थित हैं। जिला में 10 सहकारी बैंक हैं जिसमें 5 ग्रामीण क्षेत्र में 3 अर्द्धशहरी क्षेत्र में तथा 2 शहरी क्षेत्र में स्थित हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जिला में MSME क्षेत्र को उपलब्ध वित्तीय संसाधन आवश्यकता के अपेक्षाकृत बहुत कम है। यह स्थिति केवल रोहतास जिला की ही नहीं है अपितु पूरे बिहार की है। जिला में लघु एवं कुटीर उद्योगों के जो आँकड़े उपलब्ध हैं वो जमीनी हकीकत से काफी दूर हैं। जिला उद्योग केन्द्र में पंजीकृत आँकड़े सत्यता से मेल नहीं खाते। वास्तव में जमीन पर सभी इकाई या स्थापित नहीं है। कुछ इकाईयां स्थापना के बाद वित्तीय संसाधनों के अभाव में बंद हो गयी हैं तथा कुछ इकाईयां मरणासन्न अवस्था में हैं। इसलिए उन्हें वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर तथा उचित प्रबंधन द्वारा बचाया जा सकता है।

संदर्भ–सूची :

1. Existing MSME in Rohtas District Source. MSME at Patna

2. Number of PSBS Branches in RohtasDistrict Source; SLBE Committee, Bihar

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Confluence of Art & Philosophy in Raja Rao's *Kanthapura*

Degi Kumari

Raja Rao is undeniably one of the most widely acclaimed Indian writers of fiction. By virtue of the wide range of his thoughts content – philosophical, intellectual, political and social and his command of the fictional form and language, he is, undoubtedly, one of the major writers of Indian English fiction, In handling there themes, Rao employs several techniques drawn from both the East and the West, skilfully adapting these to suit his narrative purposes. The focus of interest in his works is more on impressionism than naturalism, in so far as the narrative emphasis falls on the inner individual and how one responds to the events and circumstances of the outer world. Going beyond representational realism and naturalism, he dramatizes the natural struggle as a mythic and symbolic event. Abnegating his doctoral research project in France, Rao started his serious literary writing, and launched on his first novel in English. This was *Kanthapura* (1938), which appeared by coincidence at about the same time as the first works of fictions by Mulk Raj Anand and R.K. Narayan, who had both made their fictional debut in 1935, with *Untouchable* and Swami and Friends, respectively. These three novelists were to go on to constitute the Holy Trinity of Indian Fiction in English for the succeeding half-century. Rao is one of the triumvirates of the pioneering Indian novelists in English. His contribution to the growth of the English novel in India is enormous. Each one of his novels is a trendsetter *Kanthapura*, for instance, emphatically demonstration, and for the first time in the history of Indian English writing, how the English language can be used to tell a typically Indian story without violating the native speech rhythms.

Kanthapura begins with the kind of breath taking artistic boldness and ambition that no Indian writer of English was to match until *Midnight's Children* of Salman Rushdie forty years later. The actual plot of the novel, reflecting important political, social and religious themes, is not as remarkable from the aesthetic point of views as the passages of descriptive prose. There is a definite sense of nostalgia in the

evocation of village life before the coming of Mahatma Gandhi. The lyrical opening paragraph describing *Kanthapura* is typical of his style:

"Our village – I don't think you have ever heard about – *Kanthapura* is its name and it is in the province of Kara... the forest of teak and of jack, of sandal and of sal, and hanging over bellowing gorges and leaping over elephant-haunted valleys, they turn not to the left and now to the right……."[1]

Its short "Foreword" has been quoted so frequently in critical discussions of the novel in English that it has become, in effect, the manifesto of all Indian Writing in English. "The telling has not been easy," Raja Rao here said with fetching honesty- and then explained the nature of the creative difficulty, in terms so simple and true than they still have not been improved upon" "one has to express in a language that is not one's own emotions that are one's own." He predicted that with constant use, Indian English will emerge as a distinct if not autonomous variety, like American English or Irish English.

His **Kanthapura** is a mythic soil, embedding in its structure the community's immemorial tradition and beliefs; it is a symbol of India, past, present and future. The main theme of the novel is the impact of the Gandhian freedom movement on the character of the people of Kanthapura, *Kanthapura* is a Gandhian novel. It is the picture of the resurgence of a small and slumbering village under the impact of Gandhi. The village is seen as a living entity, more vigorous than man in relation to Gandhi's freedom movement.

C.D. Narasimhaiah remarks:

"No other book on this scope and size on this theme pictures so vividly, truthfully and touchingly the story of the resurgence of India under Gandhi's leadership, its religious character, its economic and social concern, its political ideal, precisely in the way Gandhi tried to spiritualize politics."[2]

Critics have acclaimed Raja Rao as a major talent in Indian fiction. Prof. K.R. Srinivasa Iyengar, M.K. Naik and Prof. C.D. Narasimhaiah consider him as an artist whose themes and techniques are central to the contemporary Indian experience and sensibility.

Dr. Krishna Sastry says:

"Raja Rao's first novel ***Kanthapura*** describes the whole granule of the Gandhian revolution in a microscopic way."[3]

Commenting on the narrative style of *Kanthapura*, Dr. A.V. Krishna Rao aptly remarks:

"Such is the sad simple story of Kanthapura which becomes by the alchemic touch of Raja Rao merely a "Gandhi Purana" but a historically authentic saga of the Indian nationalism invested with solemn dignity and religiosity of a piece of ancient mythology." [4]

Kanthapura is indeed Raja Rao's *Ramayana*. It has a recognizable epic quality. The characters sharply divide into two, rulers and the satyagrahis; Moorthy is the leader of the non-violent movement. Bade Khan is the symbol of oppression, Bhatta is the symbol of orthodoxy and cunning range Gowda is the symbol of sense and solidity. Thus as Narasimhaiah says –

"It is a breathless tale from beginning to the end and fascinatingly told... deeply religious and spiritual resources of our people living in the remotest parts of India and build up a national movement in one lifetime." [5]

Raja Rao is one of the triumvirate of the pioneering Indian novelists in English. His contributions to the growth of the English novel in India is enormous. Each one of his novels is a trendsetter, ***Kanthapura***, for instance, demonstrates how the English language can be used to tell a typically Indian story without violating the native speech rhythms. Critics from other cultural backgrounds too have recognized this symbolic dimension; H.M. Williams, an Australian, has observed,

"Kanthapura, which looks in many ways like a realistic epic of the freedom struggle, turns out on introspection to be first of Raja Rao's explorations of the nature of India…. Raja Rao constantly invites us to see life as symbolic….." [6]

Kanthapura contains overtones of the later work- sentences can be found with the deep meditative rhythm of *The Serpent and the Rope*, such as "They have burnt our dead, too, by the Himavathy, and their ashes too have gone out to the sea" (*Kanthapura*, p. 250). The Hariharapura scenes in *The Serpent and the Rope* seem to be set almost in Kanthapura, but the later novel has a much wider canvas-from a tiny village, Rao moves to Benares, France and England.

Overall, Gandhi seems to have been deified by the old woman narrator telling the interminable tale to a 'hypothetical listener' who does not figure anywhere in the story, and Moorthy is regarded as his *avatar* in Kanthapura. Rightly remarks Meenakshi Mukherjee. About Kanthapura:

"Raja Rao's strength lies in the strength of his conviction; he aims at rendering his conviction about Gandhian ideology into art." [7]

Raja Rao's *Kanthapura* stands the scrutiny of the literary critics of various, and at times, diametrically opposite schools over a long period of time, as a superb novel deserving to be re-read. Rao, deeply influenced by Gandhi as he is, like other pioneer Indo-Anglian novelists, chooses to portray him through a local figure who appears to be his representative. Rao employs this device of literary narration in such an artistic and organic manner as to fuse the three strands of experience in *Kanthapura:* the political the social and the religious-into an inextricably woven complex story of hamlet of *Kanthapura*

Notes & References

1. Rao, Raja, Kanthapura, Bombay Oxford University Press, Champak Library, 1947, p. 1. Further page references are to this edition.
2. Narasimhaiah, C.D., *Raja Rao*, Arnold Heinmann, Indian Writers Series, 1973, p. 43.
3. Sastry, Dr. Krishna, "Raja Rao", *Triveni*, Jan, 1968, p. 8.
4. Rao, A.V. Krishna, *The Indo-Anglian Novel and the Changing Tradition*, (Thesis), "Raja Rao's *Kanthapura*"
5. Narasimhaiah, C.D., *Critical Essays on Indian Writing in English*,eds M.K. Naik, S.K. Desai & G.S. Amur, Macmillan, New Delhi, 1977, p. 248.
6. Singh, Khushwant, *Train to Pakistan*, Pearl Publications, Bombay, 1967, p. 2.
7. Mukherjee, Meenakshi, *The Twice Born Fiction*, Pencraft International, New Delhi, 2010, p. 50.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

अल्पना मिश्र के कथा – साहित्य में समाज में महिलाओं की स्थिति

डॉ0 माया कुमारी

सगुना मोड़, न्यू मैनपुरा
वार्ड नं0–10, दानापुर कैंट
पटनाा (बिहार)

अल्पना मिश्र खुद एक महिला हैं। इसलिए महिला होने के नाते समाज में जो महिलाओं की स्थिति उन्होंने देखा, उसे बखूबी समझा और अपनी कथा–साहित्य में उसे शामिल किया। मानव सभ्यता का रथ पुरुष और महिला इन दो पहियों पर चलता है। दोनों पहियों में से एक में भी किसी विकृति के आ जाने पर रथ की गति अवरूद्ध हो जायेगी। इसलिए हमारे प्रचीन समाज में पुरूष और नारी दोनों को महत्व दिया गया है। हमारे पूर्वज भी कहते हैं कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ सभी देवता निवास करते हैं। यहाँ पूजा का तात्पर्य केवल उनकी मान–मर्यादा की रक्षा तथा उनके अधिकारों की रक्षा से हैं।

अल्पना मिश्र ने अपने उपन्यास 'अन्हियारे तलछट में चमका' के द्वारा समाज में स्त्रियों की जो स्थिति है उसका बखूबी विवेचन किया है। इस उपन्यास में बिट्टो नाम की एक लड़की होती है, जो अपनी मौसी के यहाँ जाती है। बिट्टोकी मौसी का घर बनारस में है। वहाँ पर पाँच मंजील का मकान होता है जिसमें बहुत सारे परिवार एक साथ गुजर–बसर करते हैं। जब बिट्टो अपने मौसी के घर पहुँचती है तो बिट्टो खुब खुश होती है और कहती है –"अरे रे रे ––– बिट्टो, कइसे अइलू आज, चला, चला बैठका में।"[1] बिट्टो की मौसी बिट्टो का प्रेम पूर्वक हाथ पकड़कर बैठका पर लेकर जाती है। वहाँ पर बिट्टो की मौसी धीरे से बिट्टो से पूछती है – "जीजी कुछ भेजी है?"[2] "बिट्टो ने हाँ में सिर हिलाया तो उनकी मौसी खुब खुश हुई।इन पंक्तियों में उनका प्रसन्नता का भाव व्यक्त हुआ है – "मैनें सिर हिला दिया। मौसी उछाल से इधर नाचती सी गयीं, फिर उधर नाचती सी गई, फिर पास आकर बोलीं– "जानत हुउ बिट्टो हलवाई अब नाहीं है मकान में छोडि गये। एही बदे मिठाई बंद हुई गयी। किराया कुल इहै में पटाइ जात रहा।"[3] घर में के के मना किहल जाय? इसके बाद माँ का दिया कुछ पैसे, पुराने स्वेटर, कपड़े अपनी मौसी को दे देती है।

इस उपन्यास में मुन्ना जी अपनी 'शादी अपने पसंद से एक कहारिन लड़की से करता है तो बिट्टो की मौसी बिट्टो से कहती है – "कहारिन है बिट्टो/समझाओं बच के रहे। अब तक तिवारी खानदान कोई कहारिन न लाया है।"[4] तभी बिट्टो धीरे से बोल पड़ी – "प्रेम न देखे जात कुजात"– [5] बिट्टो की बातों को सुनकर बिट्टो की मौसी भड़क पड़ती है। आगे इस उपन्यास में मुन्ना बो जब बर्त्तन धो रही होती है तो पानी इधर–उधर बहने लगता है तो बिट्टो के मौसा गिरधारी गुस्से में कहने लगते हैं कि "का हो मुन्ना बो तनि पानी सम्भार के करा।"[6] बिट्टो की माँ शिक्षिका है। वह वेतन के पैसे को दादी के पैर पर रखकर उनको प्रणाम करती है और दादी 'पुत्रवती' होने का अशीशती है। लेकिन उनको आर्शीवाद लगता नहीं है क्योंकि पाँच लड़कियाँ पैदा हो गयी। छठी होकर मर गयी थी। बिट्टो की माँ के पैसे को दादी अपने बेटा यानि बिट्टो की पापा को दे देती थी। माँ को रिक्सों का किराया रोजाना माँगने

पर मिलता था। बिट्टो की माँ चार रूपये नहीं लेतीं। तमतमाकर चल देतीं। जाकर रसोई में बरतन उठाने–पटकने लगतीं। पिताजी डाँटकर कहते– "किसी और से माँगने जाओगी रूपया? जाओ, चमडी उतारके रूपया देगा।"[7] तब बिट्टो की माँ कहती है– "दूसरे का रूपया तो नहीं माँगती? अपना ही माँगती हूँ तो नहीं देते। कौन सा अपना पेट भर लूँगी? एक टेबुल खरीदनी है । कोई घर आ जाये तो अच्छा नहीं लगता।"[8] बिट्टो के पापा बाहर अपने मित्रों से कहते– "कमाने भेजो तो औरत हाथ से निकलने लगती है। रात–दिन चिक–चिक मचाती है। साला, रूपया न लाई जेवरात लाई है। घर की जरूरत न होती तो कौन भेजता?"[9] इस उपन्यास में लेखिका एक और घटना का जिक्र की है। मुन्ना घर से बाहर कमाने गया होता है और कुछ सालों बाद घर आता है और अपनी पत्नी को तंग करना शुरू करता है तो मुन्ना बो उसका डट कर मुकाबला करती है और कहती है– "पिशाच आदमी है, नर पिशाच है! औरत को इंसान नहीं समझता है। और औरत क्या? देह भर है? जैसे चाहा मसला, रौंदा? जो चाहा किया? औरत आवाज उठा दे तो बहुत बुरी। प्रेम न किया गुनाह कर दिया। उसी की सजा काट रही हूँ। घर से भागने का कोई रास्ता मिलता तो वही चुनती, काहे इस जंजाल में पड़ती। तुम्हीं मिले इस दुनिया में हमें? ला के नरक में झोंक दिये। अरे, इससे तो अच्छा भीख माँग लेते, जहर खाके मर जाते। जानते तो कभी ऐसा न करते। बड़ी ठसक से निकल आये थे, हम भी कि अपनी पसंद की जिंदेगी जी लेंगें। लेकिन नहीं, औरत के नसीब में कहाँ अपनी जिंदगी? जिद थी, जिद का नतीजा देख लिया। सही आदमी कहाँ से तलाशते? जो हमारे इर्द–गिर्द थे सब लुच्चें–लफंगे थे। तुम्हीं कुछ ठीक लगते थे तो तुम निकले चोरों के सरदार! महाचोर सब से बड़े हरामी। जा आज के बाद तेरा मुँह न देखूँगी। गलती मेरी थी तो सुधारूँगी भी मैं ही। जा आज के बाद तेरा–मेरा रिश्ता खत्म। आज के बाद तू मेरा कुछ नहीं। अरे किस बद्जात के पल्ले पड़ गयी रे ———, हे राम ——— अरे मोरी माई रे ————"[10]

अल्पना मिश्र का पहला कहानी संग्रह की पहली कहानी 'उपस्थिति' में लेखिका ने बताया है कि कोई लड़की शादी के बाद ससुराल जाती है तो उसका नाम किस तरह बदल दिया जाता है। इनकी कहानी में यह तथ्य इस प्रकारनिरुपित हुआ हैं– "कावेरी नाम था, है। माँ–बाप का दिया शादी के बाद पूजा करवाकर मेरा नाम बदल दिया गया सिमरन।"[11] इतनाही नहीं इस कहानी में लेखिका ने लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई –लिखाई पर भी फोकस किया है। किस तरह समाज में लड़कों को साईंस और लड़कियों को आर्ट्स पढ़ने के लिए कहा जाता है जो इस प्रकार है – "लडकियाँ बेचारी अस्पतालों में मिडवाइफ बन जाती हैं। एक छोटे से बक्से में सुइयाँ और दवाएँ रखकर घर–घर घूमते दिख जाएँगी। गाँवों–गिरावों में सरकारी अस्पतालों की तरफ से तैनात की जाती है। क्या खाक इज्जत है उनकी एक–एक नर्स के दस–दस डॉक्टरों से संबंध हैं। क्या करें भी। नाइट ड्यूटी में मजबूर हो जाती है। ———" "देखा साइन्स का अधोपतन! ऐसा पढ़ने से तो बेहतर है आर्ट्स साइड हो जाना।"[12] अल्पना मिश्र की दूसरी कहानी 'भय' में एक लड़की का स्कूटर पंक्चर हो जाता है तो लड़की चाहती है कि स्कूटर को धक्का लगाकर पंक्चर की दुकान तक ले जाकर पंक्चर बनावा ले, लेकिन लड़की से नहीं हो पाता है। तभी सामने दुकान पर बैठे बुढ़ा आदमी से कहती है कि– "कोई हो तो पंक्चर की दुकान तक– " तब बूढ़ा आदमी हँसते हुए कहता है "आदमी होगा तभी तो जाएगा मैडम!"[13] फिर लड़की किसी महिला के सहयोग से पंक्चर दूकान तक स्कूटर को पहुँचाती है।

अल्पना मिश्र का दूसरा संकलन 'छावनी में बेघर' है। इस संकलन की पहली कहानी 'मुक्ति प्रसंग' है। इस कहानी में महिलएं किस तरह घर, परिवार, समाज रूपी बंधन में जकडी हुई हैं और अपनी मुक्ति का एहसास करती **स्पष्ट** दिखायीदे रही हैं। इस कहानी में देहरादून और ऋशिकेष की घटनाओं का जिक्र किया गया है। देहरादून में डॉ0 दंपती रहते हैं। डॉ0 साहब की पत्नी महाविद्यालय में पढ़ाती है और डॉ0 साहब **शु**रूआती दौर में अपनी निजी गाड़ी से अपनी पत्नी को ऋषिकेश छोड़

देते हैं। लेकिन डॉ0 साहब को भी अपना कामकाज देखना होता है जिसके चलते अपनी पत्नी को बस स्टैंड छोड देते हैं और बता देते हैं कि यहीं पर बस आएगी ऋषिकेश जाने की। डॉ0 की पत्नी का ऋषिकेश से देहरादून आने जाने के क्रम में उनको जो लोगों से परेशानी होती है वह इस प्रकार हैं – "ऋषिकेश जाना है? उनके बायें कान के पास कोई फुसफुसाया। वे भौंचक । इसे कैसे पत्ता कि उन्हें ऋषिकेश जाना है?" "आइए नही तो जगह नहीं मिलेगी।" वह अधेड़ आदमी बगल में बैठ चुका था। उस आदमी ने बड़ी शालीनता से उनसे पैसे लेकर उनका भी टिकट ला दिया। वे कृतज्ञ हुई। सभ्य–शालीन अधेड़ (जिन्हें अब वे कमीने अधेड़ कहती है।) उन पर कृपा दृष्टि फेरने लगे। निकट और निकट। अधेड़ का बायॉ अंग और उनका दायॉ अंग लगभग एक हो गये थें। इस कृतज्ञता से कैसे मुक्ति हों? इस मुक्ति की कामना करते हुए उन्होंने अपना दायॉ पैर उठाकर बायें के उपर कर लिया। चेहरा खिड़की से लगभग बाहर"।[14] अल्पना मिश्र के कहानी 'तमाशा' में छात्र–छात्राऐं वायवा देने कॉलेज पहुचते हैं। यशमंजरी नाम की एक कंडीडेट्स का वायवा शुरू होता है। यशमंजरी अपना नाम बताती है तो इग्जामिनर गद्गद स्वर में बोलते हैं बैठो। बड़ा अच्छा नाम है। सुलोचना होना चाहिए तुम्हारा नाम अँखियान से। इस कहानी में कंडीडेट्स के प्रति इग्जामिनर का व्यवहार इस प्रकार है – खा रहे हैं प्लेट में रखी सामग्री, देख रहे हैं गुलाबी साड़ी पर कढ़े फूल। फूल के नीचे का काला ब्लाउज, ब्लाउज के भीतर से झलकता काला स्ट्रेप, उसके भीतर ––––– ।"[15]

'लिस्ट से गायब' कहानी में श्री नारायण अधिकारी है और उनकी पत्नी सुशिक्षित महिला हैं। सुशिक्षित होने के बावजूद वे घर के कामों को ही देखती हैं। वो सोचती है कि लड़कियों को डिग्रियों का महत्व सिर्फ शादी के पहले ही होती है। फिर कुछ दिनों बाद अपनों दोनों को छोड़कर नौकरी के लिए इंटरव्यू देने जाती है और उनकों लिस्ट से गायब कर दिया जाता है। क्योंकि वे एक अधिकारी की पत्नी थी। नौकरी तो सिर्फ जरूरत मंदो को दिया जा रहा थां उनसे इंटरव्यू बोर्ड ने जो कहा वह इस प्रकार है– "मैडम बाहर मजबूर, लाचार और दुःखी लोगों की लम्बी लाइन है आपको नहीं लगता कि उन्हें कहीं ज्यादा जरूरत है नौकरी की एक सपने की बजाय।"[16]

'इस जहाँ में हम' कहानी में बगड़वाल जी और उनकी पत्नी कामकाजी हैं। बगड़वाल जी दूसरे शहर में काम करते हैं और उनकी पत्नी नौकरी के साथ बच्चों का देखभाल भी करती हैं। इसी बीच उनकी पत्नी को ऑफिस की तरफ से कम्प्यूटर ट्रेनिंग के लिए दूसरे शहर में जाना होता है। उनके साथ में काम करनेवाले पुरूष कर्मचारी नौटियाल जी, बर्माजी, सती जी को भी जाना होता है। नौटियाल जी, सभी से कहते है मेरे पास कार है मैं ट्रेनिंग के लिए कार से जाऊँगा आपलोग भी मेरे साथ कार पर बैठकर चलिएगा। फिर नौटियाल जी कहते हैं कौन कहा कि कार पर आपलोगों को बैठाने से कार में अधिक पेट्रोल लगेगा। नौटियाल जी चाहते हैं कि बगड़वालजी की पत्नी यानि मैड़म को ड्राइवर के बगल वाली सीट पर बैठाए यानि अपने बगल में बाकी सब लोग पीछे बैठे। जबकि बर्मा सुनकर अनसुना करके नौटियालजी के बगल वाली सीट पर बैठ जाते हैं। तब नौटियाल जी बर्माजी को पीछे वाले सीट पर भेजते है और कहते हैं कि उन्हें आदर से ले जाए। तभी बर्मा जी कुछ इस प्रकार भुनभुनाते है– "नौकरी करेंगी साथ में जाएँगी साथ में, पैसा लेंगी बराबर का और साथ बैठने में सती–सावित्री बनने लगेगी। या फिर नौकरी कर रही हैं? इतने नखरे हैं तो घर में बैठे।"[19]

'छावनी में बेघर' कहानी में मेजर कुमार और मिसेज कुमार सेना के छावनी में अपने बच्चों के साथ गुजर बसर करते हैं। मिसेज कुमार कारगिल युद्ध में चले जाते हैंइधर ऊपर से छावनी को छोड़कर सिविल में रहने के लिए नोटिस आता है तो वे परेशान होकर कहती हैं– "ऐसे कैसे चले जाएँ हम दो कमरो में? एकेडमिक सेशन पूरा होने के पहले घर नहीं खाली करेंगें। मेरे हसबैंड वार (युद्ध) में हैं और, आप इस समय हमसे घर खाली करने के लिए कह रहे हैं?"[18]

अल्पना मिश्र द्वारा लिखा गया तीसरी कहानी संग्रह 'कब्र भी कैद और जंजीरे भी' की पहली कहानी 'गैर हाज़िरी में हाज़िर' है। इस कहानी की महिला पात्र दीपाशिखा है। दीपशिखा विद्युत विभाग में नौकरी ज्वांइन करती है। वहाँ का कर्मचारी दीपाशिखा से बातचीत करते वक्त पूछता है – कहाँ की रहनेवाली है? इसपर दीपाशिखा बताती है कि यू0 पी0,। तभी कर्मचारी कहता है कि बड़ी भाग्यशाली हैं आप! आज के लोगों को नौकरी के लिए खाक छाननी फिरती हैं फिर भी नौकरी नहीं मिलती है। आज ऐसा जमाना है जिसके पास पैसा और सोर्स दोनों है वही नौकरी पा सकता है। दीपाशिखा अपने भाई के साथ होटल में रूकी थी। ज्वाइनिंग के बाद उन्होंने सोचा किराए का मकान खोजना चाहिए, क्योंकि होटल का बील प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। किराये का मकान ढूढ़ते वक्त शास्त्री जी ने कहा– "एडवांस नहीं देना था" चलते चलते शास्त्री जी ने साधिकार कहा। "ये सब करने से पहले ऑफिस वालों से राय कर लिया करिए। आप अकेली लड़की अजनबी शहर में।"[19]

'उनकी व्यस्तता' कहानी एक निम्नवर्गीय कर्मी के मानसिक शारीरिक एवं सामाजिक जीवन के मनोभावों को खोलती है। सुदामा प्रसाद नामक कर्मचारी अपनी बेटी को अन्याय और अत्याचार सहन नहीं करने का सुझाव देते रहे। जिसके कारण उसके मन में यह भाव बना रहा कि यहीं जीवन का सही मार्ग है कि किसी से समझौता मत करो। जहाँ भी अन्याय अत्याचार या शोषण दिखाई दे उसका विरोध करो। वह चाहे जिसके द्वारा किया जा रहा हो। शैलजा अपने मन के अनुसार – जीवनयापपन करती रही और बचपन से जो उसे सीख मिली उसी स्टैण्ड पर कायम रही। यही कारण हे कि उसे झगडालू कहा जाने लगा। इसके साथ ही वह ससुराल के साथ भी ऐडजस्ट नहीं कर पायीं और उसकी दोस्त रूबीना की देर से शादी हुई और जल्दी ऐडजस्ट हो गई थी। फिर सुदामा प्रसाद अपनी पत्नी से कहते हैं – "देखो, सबकी कैसी–कैसी किस्मत होती है। लड़कियाँ भी अपना भाग्य खुद लिखकर आती हैं। रूबीना को देखो देर सें शादी हुई और खुशी से"––[20] इस तरह हम कह सकते है कि वर्त्तमान समय में समाज में स्त्रियों का जो हाल है वह हमें अल्पना मिश्र के 'कथा – साहित्य' में देखने को मिलता है।

संदर्भ – सूची :

1. 'अन्हियारे तलछट में चमका' – आधार प्रकाशन, प्रा0लि0, पंचकूला हरियाणा – 2014 पृ0 12,
2. 'अन्हियारे तलछट में चमका' – आधार प्रकाशन, प्रा0लि0, पंचकूला हरियाणा – 2014 पृ0 20
3. 'अन्हियारे तलछट में चमका' – आधार प्रकाशन, प्रा0लि0, पंचकूला हरियाणा – 2014 पृ0 25
4. 'अन्हियारे तलछट में चमका' – आधार प्रकाशन, प्रा0लि0, पंचकूला हरियाणा – 2014 पृ0 26
5. 'अन्हियारे तलछट में चमका' – आधार प्रकाशन, प्रा0लि0, पंचकूला हरियाणा – 2014 पृ0 76
6. 'भीतर का वक्त' (उपस्थिति) अल्पना मिश्र– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–2006, पृ0 15, 22
7. 'भीतर का वक्त' (भय) अल्पना मिश्र – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली – 2006, पृ0 30
8. 'छावनी में बेघर' (मुक्ति प्रसंग) अल्पना मिश्र– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली– 2009, पृ0 12
9. 'छावनी में बेघर' (तमाशा) अल्पना मिश्र – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली– 2009, पृ0 58
10. 'छावनी में बेघर' (लिस्ट से गायब) अल्पना मिश्र–भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली– 2009, पृ0 99
11. 'छावनी में बेघर' (इस जहाँ में हम) अल्पना मिश्र–भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–2009, पृ0 103
12. 'छावनी में बेघर' (छावनी में बेघर) अल्पना मिश्र – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ0 117
13. कब्र भी कैद औ जंजीरे भी (गैर हाज़िर में हाज़िर) अल्पना मिश्र राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली– 2012, पृ0 22
14. कब्र भी कैद औ जंजीरे भी (उनकी व्यस्तता) अल्पना मिश्र राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली– 2012, पृ0 77

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

दलित महिलाओं पर बढ़ते हिंसा एवं निदान

डा0 सुधीर कुमार

व्याख्याता
लोक प्रशासन विभाग
ई0 द0 भा0 प्र0 सिंह महाविद्यालय
नोखा (रोहतास)

हाल के दिनों में दलित महिलाओं पर हमले तेज हुए है। राष्ट्रिय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आकड़ो को माने तो साल 2019 में भारत में महिलाओं एवं दलितो के खिलाफ अपराध में 7.3 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। हमारे देश में प्रत्येक दिन औसतन चार दलित महिलाओं का बलात्कार होता है। साल 2018 के आकड़ो के अनुसार देशभर में 2459 दलित महिलाओं का बलात्कार हुआ है जबकि अधिकांश मामलों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध को या तो दर्ज नहीं कराये जाते है या दर्ज नहीं होते है, विशेषकर धरेलु हिंसा और यौन उत्पीड़न व विभिन्न तरह के मामले। दुःखद यह है कि सबसे अधिक 30 प्रतिशत महिलओं के खिलाफ अपराध व हिंसा पतियों द्वारा किया जाता है। देश में उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट एवं हरियाणा में दलित महिलाओं को ज्यादा बलात्कार का दंश झेलना पड़ा है। 22 प्रतिशत मामले बलात् उपहरण एंव बलात्कार के होते है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार हिंसा स्वय के बिरूद्ध किसी अन्य व्यक्ति या किसी समूह या समुदाय के विरूद्ध शारीरिक बल या शक्ति का समिप्राय उपयोग है चाहे धमकी स्वरूप या वास्तविक जिसका परिणाम या सम्भावना है कि जिसका परिणाम चोट, मृत्यु, मनोवैज्ञानिक नुकसान दुर्बलता या कुविकास के रूप में होता है।' हिंसा से किसी समाज राज्य में वैधता के संकट कि स्थिति भी उत्पन्न होती है तो परिवर्तन व बदलाओं की मांग होती है और राजनैतिक व सामाजिक चुनौती बन जाती है, वैसी भी समझा जा सकता है कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए जो साधना चुने जाते है वह टकराव व मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है इसलिए अपना लक्ष्य समाज के अनुसार निर्धारित करता है व इजाजत देता है, यानि साधन व साध्य के बीच गड़बड़ी से हिंसा होती है, इस प्रकार सरकार व समाज अवैध मानती है वहीं हिंसा है। भारतीय परिवेश आज महिलाओं पर हमला व हिंसा आम हो गया है यह बर्वर व क्रूर भी होता है धरेलू उत्पीड़न, शारीरिक शोषण आम है, हॉल के दिनों में दलित महिलाओं के अपहरण, हत्या, बलात्कार एवं शारीरिक शोषण के मूल में समाज में निहित ब्राहम्णवादी, पितृसत्ता और अपनी जाति के सर्वोच्चय होने का अहंकार है खास तौर पर यौन हिंसा दलित–आदिवासी औरतों के खिलाफ शोषण एवं दमन के एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। भारतीय समाज व्यवस्था में समाज में जाति को लेकर धमंड अभी भी खत्म नहीं हुआ है, किसी न किसी रूप में हमेशा देखने को मिलता है। उच्चजाति का व्यक्ति अपने आप को सामाजिक क्रमानुक्रम में उपर मानता है, और

चाहता है बाकि सभी उसके स्वामित्व और प्रभुत्व को माने व स्वीकार करे। उनके अनुसार दलित और वंचित समुदाय से आने वाले लोग उनकी सेवा के लिए ही हैं और उन लोगो को आवाज उठाने का कोई हक नहीं है। दलित व वंचित लोगों द्वारा विरोध व प्रतिकार को वे अपनी बनी बनाई संरचना के खिलाफ मानते हैं उन्हें डर है कि उनकी बनाई संरचना ढह जाएगी। जातिवादी समाज अपने स्वभाव से हिंसात्मक हो जाती है और जब दलित महिला का सवाल हो जाता है तब शोषण का स्वरूप और अधिक क्रूर हो जाता है। यौन शोषण के जरिए वे अपनी सर्वोच्यता दर्शाने का प्रयास करते है।

दलित महिलाएँ भारत में महिलाओं की आबादी का 16 फीसदी है उन्हें लैंगिक असमानता, जाति, भेदभाव, आर्थिक अभाव की तिहरी मार झेल रही है यूँ समझें कि दलित स्त्रियां शोषण की शिकार हो रही हैं दलित होने के कारण, स्त्री होने के कारण तथा गरीबी के कारण।

घरेलू हिंसा में वह पुरूषवादी मानसिकता है जो औरतो को निम्न व कमजोर समझती है परिवार में स्त्रियों को मूर्त्ति के रूप में समझा जाता है, उसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता है। गरीबी के कारण जब आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है तो परिवार में झगड़े होने लगते है जिसमें महिलाएँ उसका शिकार होती है। निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण भी धरेलू हिंसा के शिकार दलित महिलाएँ होती है। परिवार में पुरूषों का अधिपत्य होने के कारण कपड़ा पहनने, खान–पान, रहन–सहन, पठ्न–पाठ्न व अन्य कार्यों में उनकी मनमानी के शिकार महिलाएं होती है। जादू–टोना एवं अन्धविश्वास के चक्कर में महिलाएँ उत्पीड़न का शिकार होती हैं।

दलित स्त्रियॉ अशिक्षा के कारण कानून के प्रति जागरूक नहीं होती और अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का बोध नहीं होता है। भारत में केवल 5 प्रतिशत के करीब दलित महिलाएं कक्षा 12 से आगे नहीं पढ़ पाती है। लगभग 95 प्रतिशत दलित महिलाएं आबादी के कारण शिक्षा–रोजगार में आरक्षण को कोई वास्तविक लाभ नहीं ले पाती। इनके विराट बहुमत खेत मजदूर एवं दैनिक मजदूरी होने के कारण, संसाधनो के वितरण में आरक्षण का लाभ भी उनकी सामूहिक स्थिति में कोई मौलिक सुधार नहीं ला सकी है। शिक्षा एवं ज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक अनुसंधान की अवहेलना उनके मुक्ति मार्ग अवरोध में उत्पन्न करता है जिस कारण दलित स्त्रियां का विशाल बहुमत श्रमजीवी हो तो अपनी मुक्ति के लिए वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से क्या आशा कर सकता है। इसलिए जरूरी है कि तार्किकता, आधुनिक अनुसंधान एवं वैज्ञानिक समझ पैदा करें।

सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना देश में तेज प्रगति एवं मूलगामी सामाजिक रूपान्तरण के बारे में सोचना सम्भव नही है लेकिन महिलाएँ हर क्षेत्र में असमानता से पीड़ित हैं। उनके खिलाफ अत्याचार और भेदभाव जारी है, इसके वाबजूद भारतीय समाज की सबसे निचली पयदान पर खड़ी दलित स्त्रियॉ समाज की वर्जनओं, निषेधाज्ञाओं को लांघते हुए ब्राहमणवादी व्यवस्था के मुख्य आधार स्तम्भ पितृसत्ता, धर्म और जातियता को हमेशा कड़ी टक्कर व चुनौती दे रही है। संधर्ष के माध्यम से अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की लड़ाई को प्राचीन काल से लेकर आज तक इन्होंने जारी रखा है। दलित महिलाएँ अपनी लड़ाई खुद लड़ रही हैं इसलिए उनपर होने वाले प्रताड़ना पहले से कही अधिक क्रूर नजर आ रही है।

दूसरी तरफ दलित महिलाएँ धोर गरीबी में जीवन बसर कर रही है। वर्तमान व्यवस्था में जहॉ पूंजी का महत्व बढ़ता जा रहा है वहॉ दलित महिलाओं का विराट समुदाय अपने जीवनोपार्जन के लिए

खेत मजदूरी व दैनिक मजदूरी पर निर्भर रहना भी उनकी प्रताड़ना का महत्वपूर्ण कारण है। विख्यात दार्शनिक कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजी के असमान वितरण के कारण हिंसा होती है, इसलिए वर्ग–विहीन समाज की स्थापना ही रास्ता है। हिंसा एक संधर्ष का रूप है व हिंसा एक प्रकार का संधर्ष है। दलित राजनीतिज्ञ जहॉ दलितों में सर्वहरा के अंश देखते हैं, वही दूसरी तरफ दलितवादी राजनीतिज्ञ उनके मुक्ति के मार्ग में बाधा बन बैठा है। इसके साथ ही राजनीतिक उनके आर्थिक सवालों के साथ सामाजिक व शैक्षणिक सवालों को भी अपने संज्ञान में लें और उनके स्वाभिमान और मानविय अधिकार से भी अवगत करायें। आज दलित स्त्रियॉ अशिक्षा के कारण कानून के प्रति जागरूक नही होती हैं जिसके चलते उन्हें अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध नहीं होता है।

दलित अधिकार कार्यकर्त्ता मंजूल प्रदीप कहती है कि ''पहले होने वाली हिंसा दिखती नहीं थी और उनकी रिपोर्ट नहीं होती थी। लेकिन अब हम अपनी बात रख रहे हैं। हम पहले से अधिक मजबूत और सुखद हैं, हमारे साथ होने वाली हिंसा अब हमें अपनी सीमा का अहसास कराने के लिए हो रही है'' हॉल के दिनो मे महिला संगठन बढ गया है जिसमें दलित महिलाओं की अपार वृद्धि देखा जा रहा है जो लैंगिग समानता के लिए तथा सभी तरह के अत्याचार और रोजगार में भेदभाव के खिलाफ सक्रिय संधर्ष कर रही हैं। महिलाओं को सुनियोजित ढग से समाज व धर में प्रतिष्ठा से जोड़ा गया जहॉ नारी आन्दोलन में समानता की मांग लगातार उठ रही है वही पश्चिमी देशो में महिला आन्दोलन मुक्ति मांग करती है भारत में नारी पुरूषो के साथ रहकर समानता की मांग करती है जबकि पश्चिमी देशो में नारी आन्दोलन में पुरूषो से अलग व आगे रहने की बात कर रही है। सामाजिक एवं राजनीतिज्ञ कार्यकर्त्ता इनके संधर्ष को प्रोत्साहित एवं विकसीत किया जाना चाहिए तथा सभी स्तरों पर इनके संधर्ष को चलाने की जरूरत है। समाज के सभी तबकों को महिलाओं के सवालों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित करना चाहिए।

सन्दर्भ :–

– राष्ट्रिय अपराध रिकॉर्ड का रिर्पोट

– दलित अधिकार कार्यकर्त्ताओ का रिर्पोट

– कम्युनिस्ट धोषणा पत्र – कार्ल मार्क्स

– प्रभात खबर व अन्य पत्र–पत्रिका

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारत में औद्योगिक विवादों के कारण

डा0 विकास कुमार

व्याख्याता
ई0 डी0 बी0 पी0 एस0, कॉलेज
गढ़ नोखा, रोहतास

औद्योगिक विवाद कई कारणों से उत्पन्न होते है। जिन्हें सुविधा की दृष्टि से आर्थिक और गैर आर्थिक रूप में व्यक्त किया जा सकता है। आर्थिक कारणों का सम्बन्ध मूलतः मजदूरियों, बोनस के भुगतान, महंगाई भत्ता, कार्य की दषाएँ और रोजगार, कार्य के धंटे, पर्यवेक्षकीय कर्मचारी वर्ग द्वारा दुर्व्यवहार, जाबर्स का दुर्व्यवहार, अन्यायपूर्ण बर्खास्तगी तथा एक या अधिक श्रमिकों की बहाली, सवेतन अवकाष अऔर छुट्टियाँ अभिनिर्णयों, अधिनियमनों, समझौते ककी कार्यान्विति अथवा गैर कार्यान्विती में देरियॉ, आदि से होता है। इन कारणों को आन्तरिक कारण भी कहा जा सकाता है। दूसरे शब्दों में, जिन कारणों का सीधा संबंध उद्योग नियोक्ता और कर्मचारी से हो, उन्हें आन्तरिक कारण कहा जा सकता है। श्रमिकों का उत्पीड़न और श्रमिकों के संघों को मान्यता देने के लिए नियोक्ताओं द्वारा मना किया जाना भी विवाद के कारण हो सकते हैं। विवेकीकरण तथा स्वचलन को लागू करने से उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी भी औद्योगिक विवाद का कारण बन जाती है। प्रौद्योगिकीकरण का विकास न केवल विद्यमान रोजगार प्रतिरूप बाधा उपस्थित करता है, बल्कि नियुक्ति की जाने वाली श्रम–शक्ति को भी निर्धारित करता है। इनका श्रम संबंध प्रबंधों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। विषेष रूप से विकासशील देषी में जहॉ आधिक्य के रूप में श्रमिक उपलब्ध होते है।

गैर आर्थिक कारणों, अथवा वे कारण जिनका उद्योग से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता, में शायद राजनीतिक कारण सबसे महत्वपूर्ण है। 1947 तक, भारत पर अंग्रेजों का शासन था ओर देश में श्रम आन्दोलन का धनिष्ठा संबंध देश की स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन से था। सन् 1908 मं तिलक को दिये गये छह वर्ष के कारावास के विरूद्ध बम्बई में हड़ताल हुई। ऐसी हो कई हड़ताले खिलाफत तथा असहयोग और सविनय अवज्ञा के दौरान हुई थी। राजनीतिक नेताओं के मुकदमों में उपस्थित रहने, विदेषी माल का हस्तन करने से मना करने, राजनीतिक प्रदर्शनों में भाग लेने, यूरोपियन मैनेजरों पर हमलों, अथवा कांग्रेस स्वयंसेवकों के रूप में काम करने के लिए श्रमिकों के विरूद्ध बर्खास्तगी या अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के लिए भी हड़ताले हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी राज्यों के पुनसंगठन, राष्ट्रीय भाषा, मुल्की नियम आदि के प्रष्नों पर राजनीतिक दलों के आन्दोलनों के कारण कई हड़ताले तथा कार्य बन्दियॉ हुई साम्यवादी हमददर्दी के कारण कई श्रमिकों के उत्पीड़न के कारण भी बहुत हड़ताले हुई। इसी प्रकार समय–समय पर महंगाई के कारण वेतन बृद्धियों, महंगाई–भत्ते बढ़ाने, बोनस देने तथा इसी प्रकार के आर्थिक मामलों को लेकर हड़ताले हुई है। देष में आपातकाल लागू किये जाने पर हड़तालों, तालबन्दियों, घेराव आदि पर स्वतः ही प्रतिबंध लग गया। लेकिन आपातकाल की समाप्ति के पश्चात् इन प्रवृतियों ने पुनः अपना सिर उॅचा किया जो अब तक चल रही है। अब हड़ताले, ताला–बन्दियॉ, नियमानुसार कार्य न करना, कार्यबन्दियॉ आदि औद्योगिक जीवन का एक सामान्य अंग सा बन गये है। जो देश की प्रगति के लिए अत्यन्त धातक है।

भारत में औद्योगिक विवाद कानून दो प्रकार के तंत्र की व्यवस्था करता है। प्रथम विवादों की रोकथाम के लिए है और इसमें कार्य समितियों और कल्याण अधिकारी शामिल है। दूसरी, औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए है और इसमें समझौता अधिकारी तथा मण्डल, जॉच न्यायालय और अधिकरण शामिल है। 1947 के

अधिनियम में स्वैच्छिक पंचनिर्णय के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। लेकिन संशोधित अधिनियम में अधिनिर्णय के लिए सौपे जाने के पर्व एक विवाद को निजी पंचनिर्णय को निर्दिष्ट किये जाने की व्यवस्था है।

कार्य समितियॉ :– एक उपक्रम में श्रमिकों और नियेक्ता के मध्य सामान्य हितों का विकास करने के उद्देष्य से एक कार्य समिति की स्थापना की जाती है। यह विषुद्ध रूप से परामर्शकारी निकाय होती है, न कि वार्ताकारी निकाय इसलिए इस उन समस्याओं से व्यवहार नहीं करना चाहिए जिसमें सामूहिक सौदेबाजी शामिल हो। इन समितियों का मुख्य उद्देश्यों पारस्परिक सद्भाव के एक स्नेहपूर्ण वातावरण में दिन–प्रतिदिन के मामलों पर विचार करना हैं। कार्य समितियों का क्षेत्र इतना विस्तृत हो सकता है कि ऐसी समस्याएॅ, जैसे उत्पादन में कुशलता, व्यक्तियों सामग्रियों तथा मशीनों का प्रयोग तथा, यहॉ तक कि व्यापारिक और वितीय समस्याओं पर भी विचार किया जा सकता है। लेकिन, सामान्यतया ये शिकायतें परिवाद अनुषासन के मामले और कुछ मामलों में, कल्याण, स्वास्थ्य सुरक्षा, प्रषिक्षण, षिक्षा और अन्य सेविवर्गीय समस्यओं पर विचार करती है। ये दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार करने से प्रारम्भ कर सकती है तो धीरे–धीरे इनका क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है।

ऐसी कुछ मूल दषाएॅ है, जिन्हें एक कार्य समिति की स्थापना करने के पूर्व पूरा किया जाना चाहिए। ये दषाएॅ–

1. श्रमिकों और नियोक्ताओं में सहयोग करने की इच्छा।
2. कार्य समिति के उद्देश्यों के विषय में एक स्पष्ट विचार और।
3. मजबूत श्रमसंध ।

एक कार्य समिति विकासवादी प्रक्रिया का परिणाम होना चाहिए, यह बाहर से थोपी नहीं जा सकती है। इसलिए, कानून द्वारा कार्य समिति स्थापित करने के प्रयास से वह प्रयोजन ही समाप्त हो जायेगा। जिसके लिए उनकी स्थापना की जाती हहै। कानून श्रमिकों और प्रबंध के प्रतिनिधियों को नियमित अन्तरालों पर मिलने के लिए वाध्य कर सकता है, लेकिन एक समझौते पर पहुंचने के लिए उन्हें बाध्य नहीं कर सकता। यह उपक्रम में मनमुटावों की भी बुद्धि कर सकता है। ऐसी वहॉ अधिक संभव है यदि श्रमिक और नियोक्ता कार्य समिति की उचित भूमिका के महत्व को नहीं समझ सके हों। यदि श्रमिकों द्वारा इसका प्रयोग एक समझौताकारी निकाय के रूप में किया जाता है, तो इससे श्रमिकों ओर नियोक्ताओं के मध्य मनमुटाव बढ़ सकता है, और यदि कोई श्रमसंध है तो संघ और कार्य समिति के मध्य वैमनस्य उत्पन्न कर सकता श्रमसंघ कमजोर हो, तो कार्य समिति पर श्रमिकों के प्रतिनिधि उसके विरोध के रूप में कार्य कर सकते हैं। इसलिए इसकी सफलता के लिए समझौताकारी निकाय की विद्यमानतता आवष्यक है। वास्तव में, यह कहा जा सककता है कि एक कार्य समिति (परामर्शकारी निकाय) के पहले एक मजबूत श्रमंसघ (समझौता–कारी निकाय) होना चाहिए।

कार्य समिति की सीमाएॅ – श्रम पर शाही आयोग ने ऐसी समितियों की स्थापना भी की गई। लेकिन, अहमदाबाद को छोड़कर इनकी प्रगति संतोषजनक नहीं रही, अहमदाबाद में इनकी प्रगति का मुख्य कारण महात्मा गांधी का प्रभाव था। इन समितियों के निर्माण और गतिविधि में कुछ कठिनाईयॉ अनुभव की गई जो आज भी विद्यमान है। नियोक्ता इन समितियों को श्रमसंघों का प्रतिस्थापना मानते है, जबकि श्रमसंघ नेता इन्हें विरोधी संस्थाएॅ मानते हैं जिन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, दोनों और गलतफहमियॉ है। इसलिए यह आवश्यक है कि विगत गलतियों से बचा जाय और कार्य समितियों की उचित रूप से स्थापना की जानी चाहिए। अन्य देशों में ये समितियॉ बहुत सफल रही है। लेकिन भारत में इनकी प्रगति अब तक धीमी रही है। भारत में श्रमिकों को दोषपूर्ण षिक्षा इन समितियों के लिए एक अड़चन उत्पन्न करती है जो पष्चिम में विद्यमान नहीं है। इसके अतिरिक्त, जहॉ कहीं श्रमसंघ होता है, वहॉ यह आवष्यक है कि इन समितियों की स्थापना तथा इन्हें क्रियाशील करने के लिए नियोक्ता इनका सहयोग प्रप्त करें और इन समितियों को श्रमसंघ का प्रतिस्थापन नहीं समझें। श्रमिकों के प्रतिनिधियों को भी अलग–अलग और साथ–साथ संयुक्त सभाएॅ की सुविधाएॅ भी होनी चाहिए और कार्य समितियों के विचारों के साथ प्रबंध की हमदर्दी होनी चाहिए।

कार्य समितियों की असफलता के कारणों का पता लगाना कठिन नहीं हैं भारत में इन समितियों के सफल संचालन की बुनियादी शर्तें पूरी नहीं होती है। सामान्ययता नियोक्ता इनसे परामर्ष करना नहीं चाहते।

कार्य समितिं की भूमिका के संबंध में भ्रम ने भी इनकी प्रभाव हीनता में योगदान किया है। यह भ्रम औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में दिये गये कार्य समितियों के कार्यों से उत्पन्न होता है। यह अधिनियम औधोगिक विवादों को रोकने की एक रीति के रूप में कार्य समितियों के क्षेत्र, कार्यों और स्थान को उचित रूप से परिभाषित नहीं करता है। इस अनिष्चितता का परिणाम कार्य समितियों का अनुचित प्रयोग रहा है। संघों के अभाव में बहुधा इनका प्रयोग बकाया अन्तरों के निपटारे के लिए एक समझौताकारी निकाय के रूप में किया जाता है। 1959 में भारतीय श्रम सम्मेलन ने ऐसी मदों की सूची बनाकर, जो कार्य समितियों के क्षेत्र को परभाषित करती है, इस दोष को दूर करने का प्रयास किया। इससे सहायता मिली, लेकिन कार्य समितियों के प्रति श्रमिकों की उदासीनता बढ़ गई। यह तंत्र पूर्ण रूप से परामर्शकारी हे, इनकी सिफारिषें केवल सुझावात्मक है, बन्धनकारी नहीं । परिणामस्वरूप नियोक्ताओं द्वारा इनकी उपेक्षा की जाती हैं इसने श्रमिकों को समितियों के पति उदासीन बना दिया।

भारतीय श्रम सम्मेलन, 1959 ने मदों की एक कार्य समिति व्यवहार कर सकती है। ये मुदें ऐसी हैं जो उन दषाओं को सीधे प्रभावित करती है जिनमें श्रमिक कार्य करते हैं। उनमें से कुछ मुदें निम्नलिखित हैं–

1 – कार्य की दषाएॅ जैसे वायु संचार पीने का पानी, भोजन तथा विश्राम कक्ष, चिकित्सा सेवाएॅ।
2 – सुरक्षा दुर्घअना से बचाव और औद्योगिक बीमारियॉ।
3 – त्योहार और राष्ट्रीय छुट्टियों का समायोजन।
4 – कल्याण और अर्थ दण्ड कोष।
5 – शैक्षणिक और मनोरंजनात्मक गतिविधियॉ ।
7 – मितव्ययिता और बचत का प्रवर्तन और
8 – समिति के निर्णयों का कार्यान्वयन।

उन मामलों में, जहाँ संघों से परामर्ष किया था। कार्य समितियों के कार्य प्रणाली की तुलना उन मामलों से करने पर, जहॉ संघो से परामर्ष नहीं किया गया था, श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की। कार्य समितियॉ केवल उन इकाईयों में स्थापित की जायें जिनमें मान्यता प्राप्त संघ हों। संघ को कार्य समितियों पर श्रमिक सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार होना चाहिए। नियोक्ताओं और मान्यता प्राप्त संघों के मध्य परस्पर समझौता पर आधारित कार्य समितियों तथा मान्यता प्राप्त संघों के कार्यों को स्पष्ट सीमांकन से समिति अच्छी तरह से कार्य करेगा।

इन कठिनाईयों के बावजूद, संयुक्त परामर्ष के लिए एक माध्यम के रूप में कार्य समितियों की उपयोगिता को सभी पक्षों ने माना है और उनको शक्तिषाली बनाने तथा उनका प्रवर्तन करने की मान्यता प्राप्त हुई है। उत्तरोत्तर पंचवर्षीय योजना में श्रमनीति पर वक्तव्यों में इन पर बल दिया गया है। चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा यह प्रकट करती है कि यद्यपि अब तक कार्य समितियों ने बहुत सीमित प्रगति की है, श्रमिकों की बहुत सी शिकायतों और दिन प्रतिदिन उनके द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाईयों से कार्य समितियों के द्वारा प्रारम्भिक अवस्थाओं में अच्छी तरह से व्यवहार किया जा सकता है। उसने आशा की कि प्रत्येक अद्योग के अन्दर, प्रबंध और श्रमिकों के नेता सभी वांछनीय इकाईयों में ऐसी समितियों की स्थापना को प्रवर्तित करने में अपनी शक्ति में सब कुछ करेंगे। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी यह इंगित किया कि महत्वपूर्ण तथ्य जिसे इन समितियों की प्रभावशीलता के लिए माना जाना चाहिए, दोनों पक्षों में विष्वास का वातावरण का सृजन करना है। आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ऐसी इकाई स्तर की समितियों की सफलता के लिए बुनियादी बात संघ को मान्यता देना है।

यह स्पष्ट किया जा सकता है कि समुचित अधिकारियों और कर्मचारियों के मध्य विवादों के निपटारे के लिए केन्द्रीय स्तर पर विभिन्न मंत्रालयों और रेलवे में संयुक्त समझौता तंत्र की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त, ऐसी कई स्वैच्छिक द्विपक्षी समितियॉ है, जैसे उत्पादन समितियॉ, दुर्धटना निरोधक समितियॉ, कल्याण समितियॉ आदि। 1962 में राष्ट्रीय आपात् स्थिति की घोषणा के पश्चात् उत्पादन के क्षेत्र में निष्पादन का उच्च

स्तर प्राप्त करने के लिए कई बड़े उपक्रमों में उत्पादन समितियॉ बनाई गई। प्रबंधक में श्रमिकों की सहभागिता की योजना के अन्तर्गत कई संस्थानों में संयुक्त प्रबंध परिषदों का निर्माण किया गया है।

समाधान या निपटारा तन्त्र :– समाधान या निपटारा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक तृतीय पक्ष (मध्यस्थ) की क्रियाओं के द्वारा नियोक्ताओं और कर्मचारियों में विचार–विमर्ष जारी रखा जाता है। यह इस तथ्य पर आधारित होता है कि हड़ताल की कार्यवाही नियोक्ताओं और कर्मचारियों को हानिकारक प्रमाणित हो सकती है। यह विशेष रूप से सत्य है जब पक्षों की लगभग समान सौदाकारी शक्ति होती है और, इसलिए खुले संघर्ष का परिणाम अनिष्चित होता है। समाधान दो पूर्ण बातचीत के कारण मतभेदों को दूर करने में सहायता करता है और स्थिति को समझने और मूल्यांकन करने में पक्षों को मदद करता है।

यहॉ निवारक समाधान की रीति को भी समझ लेना चाहिए। इसमें मध्यस्थ प्रारम्भ से ही, बातचीत में संकटावस्था पहुंचने के पूर्व ही, उपस्थित रहता है और गतिरोध दूर करने का प्रयास करता है। निवारक समाधान का लाभ यह है कि मध्यस्थ तकनीकी समस्याओं और स्थितियों के अतिरिक्त मानवीय संबंधों की समस्याओं को भी जान सकता है। लेकिन, खतरा यह है कि वह विवाद में अपने को उलझा सकता है।

भारत में समाधान सामूहिक सौदोबाजी का विस्तार नहीं है। विभिन्न अधिनियम समुचित सरकार को अधिकार देते हैं कि विवाद समाधान के लिए सौंपे भारत में विभिन्न आधारों पर समाधान तन्त्र की आलोचना हुई है। मध्यस्थ युवा और अनुभवहीन होते हैं और उन्हें उत्पादन की तकनीकी समस्याओं और मानवीय संबंधों की समस्याओं की जानकारी नहीं होती। परिणामस्वरूप वे प्रभावकारी ढंग से समाधान नहीं कर सकते। समाधान को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सिफारिश की है कि समाधान तंत्र औद्योगिक संबंध आयोग को भाग होना चाहिए जो इसे अन्य प्रभावों से मुक्त रखेगा। इस तंत्र का केवल स्वरूप ही अधिक विष्वास उत्पन्न करेगा और पक्षों में अधिक सहयोग उत्पन्न कर सकेगा।

मध्यस्थ निर्णय वह प्रक्रिया है जिसमें विवाद तीसरे पक्ष, जिसे मध्यस्थ कहा जाता है, को सौप दिया जाता है जो एक निर्णय देता है जो दोनों पक्षों पर बंधनकारी होता है। स्वैच्छिक मध्यस्थ निर्णय में विवाद के पक्षकार मध्यस्थ निर्णय के लिए एक तीसरे पक्ष के लिए एक तीसरे पक्ष को सौपना स्वीकार करते हैं। इसमें किसी भी पक्षकार को यह अधिकार होता है कि वह विवाद को मध्यस्थ निर्णय के लिए सौंपने से मना कर दें, जबकि अनिवार्य मध्यस्थ निर्णय में उन्हें ऐसा अधिकार नहीं होता।

उप समिति ने 1958 में एक आदर्ष शिकायत प्रविधि स्वीकार की। इसने शिकायत मशीनरी तथा षिकायत प्रविधि प्रस्तुत की। इस मशीनरी में अपने में से श्रमिकों द्वारा चुने गगये विभागीय प्रतिनिधि, अथवा संघों द्वारा मनोनीत किये जाने वाले, अथवा कार्य समिति में श्रमिकों के प्रतिनिधियों से सहयोजित व्यक्ति होते हैं। प्रथम अवसी पर पहुंचने के लिए प्रबंध प्रत्येक विभाग के लिए व्यक्तियों को नामजद करेगा और द्वितीय अवस्था पर षिकायत का हस्तन विभागीय अध्यक्ष करेंगे। श्रमिकों के विभागीय प्रतिनिधियों में से दो या तीन विभागीय अध्यक्ष से षिकायत समिति का निर्माण किया जायेगा।

शिकायत प्रविधि के चरण बताती है जिनके द्वारा कोई शिकायत आगे बढ़नी चाहिए। एक खिन्न कर्मचारी सबसे पहले अपनी शिकायत मौखिक रूप से प्रबंध द्वारा इस कार्य के लिए मनोनीत व्यक्ति को प्रस्तुत करेगा, जो शिकायत प्रस्तुत करेगा, जो शिकायत प्रस्तुत किये जाने के 48 घंटे के भीतर उसका उत्तर देगा। फिर, श्रमिक प्रबंध द्वारा मनोनीत विभाग के अध्यक्ष को अपनी शिकायत प्रस्तुत करने के तीन दिन के भीतर उत्तर देगा यदि श्रमिक संतुष्ट नहीं है तो वह श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बोर्ड को अपील कर सकता है जो एक सप्ताह में अपना उत्तर देगा। फिर भी यदि वह संतुष्ट नहीं होता है तो श्रमिक संयुक्त समझौता समिति के समक्ष अपनी मांग रखने के लिए सेविवर्गीं अधीक्षक को प्रार्थना करेगा। यदि समझौता भी असफल रहता है, तो मामला पंचनिर्णय बोर्ड को निर्दिष्ट किया जायेगा और जिसका निर्णय दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होगा।

पुनः आदर्श षिकायत प्रविधि विभिन्न प्राविधिक मामलों से व्यवहार करती है। एक षिकायत केवल तभी विवाद में बदलती है जब प्रबंध का निर्णय श्रमिक को असंतोषजनक लगता है। यदि षिकायत प्रबंध द्वारा दिये

गये आदेष से उत्पन्न होती है, तो शिकायत प्रविधि की याचना करने के पूर्व श्रमिक आदेष का पालन करेगा। 72 घंटों की एक समय–सीमा निष्चित की गई है जिसके भीतर श्रमिक एक अवस्था से दूसरी में अपील कर कसता है। पबंध आवष्यक लिपिकीय और अन्य सहायता की व्यवस्था करेगा। किसी कर्मकार की उन्मुक्ति या बर्खास्तगी से कोई शिकायत उत्पन्न व्यवस्था करेगा। किसी कर्मकार की उन्मुक्ति या वर्खास्तगी से कोई षिकायत उत्पन्न वयवस्था करेगा। किसी कर्मकार की उन्मुक्ति या बर्खास्तगी से कोई शिकायत उत्पन्न होने की दषा में, श्रमिक या तो बरखास्त करने वाले अधिकारी अथवा किसी वरिष्ठ अधिकारी को अपील कर सकता है। जिस समय अपील सुनी जाती है, कर्मकार के साथ मान्यता प्राप्त संघ का एक अधिकारी अथवा एक साथी कर्मकार हो सकता है। लेकिन शिकायत प्रविधि प्रभावहीन रहेगी यदि यह देखने के लिए, कि वह कार्य करती है, कोई सुदृढ़ श्रम संघ नहीं हो। द्वितीय, एक शिकायत प्रविधि को सामूहिक सौदेबाजी के ढॉचे के भीतर ही कार्यशाली होना चाहिए क्योंकि यह बातचीत द्वारा एक मैत्रीपूर्ण समझौता पर पहुंचने के लिए पक्षों की इच्छा भी प्रदर्शित करती है।

प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ कार्य समितियों की स्थापना करने से श्रमिकों द्वारा स्वप्रबंध तक कुछ भी हो सकता है। भारत में लक्ष्य और सामान्य शब्दों में, प्रबंध में श्रमिकों की लोकतंत्र प्राप्त करना है। भारत में लक्ष्य और सामान्य शब्दों में, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता के कार्य द्वितीय योजना में दिये हुए हैं। एक समाजवादी समाज का निर्माण केवल मौद्रिक अभिप्रेरणाओं पर नहीं किया जा सकता है, बल्कि समाज की सेवा के विचारों और परवर्ती की ओर से ऐसी सेवाओं को मान्यता देने की इच्छानुकूलता पर किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. Ministry of Labour, Tripartite Conclusions 192-1967, P. 300.
2. Ibid.
3. National commission or Labour Report, p. 34.
4. NCL Report, p.328.
5. Report of the Royal Commission on Labour, p. 467.
6. Labour Bureau, Consultative Machinery in the Labour Field (1959).
7. NCL Report pp. 312-15.
8. NCL Report p. xxvi
9. The Second Five Year Plan, p. 572
10. Ibid, p. 577

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के प्रश्न

राम चरण मीना
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
मोतीलाल नेहरु महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110021

भगवतीचरण वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में धर्म के प्रति तीन तरह की धारणा रखने वालों का वर्णन किया है। एक वह , जिसमें कुछ लोग सनातन पंथी धर्म के प्रति अटूट विश्वास रखते थे साथ ही परंपरागत धार्मिक लकीरों के फकीर बने हुए थे। दूसरे वह , जो परंपरा से चली आ रही रूढ़ तथा कट्टर धार्मिक सिद्धान्तों का विरोध करते थे। साथ ही उसे जीवन को सहज बनाने के लिए धार्मिक मान्यताओं के बदलाव के लिए प्रयासरत थे. एक तीसरा पक्ष भी था जो इन दोनों से अलग था जिसमें न तो धार्मिक रुचि थी और न ही वह धर्म को जीवन के समीप रख कर देखने का प्रयत्न करते थे। वह सिर्फ प्रदर्शन करने तथा लोगों को दिखाने के लिए विभिन्न धार्मिक चर्चाओं में लीन रहते थे।

वर्मा जी ने धर्म को समाज निर्मित माना है उनके अनुसार धर्म मानवता से युक्त होना चाहिए। धर्म का लक्ष्य ईश्वरत्व प्राप्त करना नहीं मनुष्यत्व प्राप्त करना है अर्थात् मनुष्य बनाना है। वर्मा जी का अंतिम उपन्यास 'चाणक्य' में मुख्य पात्र चाणक्य की घोषणा है कि "धर्म मनुष्य की ही भाँति जन्ममरण की सीमा में बंधा होता है। "[1] अतः यह कहा जा सकता है कि भगवतीचरण वर्मा जी का कथाकार यथार्थवादी के साथ ही तटस्थ भी है। सामान्य जन की मानसिकता का वर्णन यथार्थ ढंग से चित्रित है। धर्म के प्रति तटस्थता भी सराहनीय है।

साम्प्रदायिक समस्या को समझने के लिए भारतीय इतिहास को जानना भी जरूरी है। भारत में मुसलमानों के आक्रमण तथा उनके द्वारा भारत में लम्बे समय तक शासन करने के बाद हिन्दू धर्म मानसिक रूप से हीनता का शिकार हुआ । बाहर से आए मुसलमान भारत को लूटना नहीं बल्कि यहाँ हमेशा के लिए बसना चाहते थे साथ ही अपनी संस्कृति को ही

भारत देश की मुख्य संस्कृति बनाना चाहते थे। हिन्दू और मुसलमानों के अपने-अपने धर्मों श्रेष्ठता बोध ने उन्हें आपस में एकजुट नहीं होने दिया। हिन्दुओं को हमेशा यह लगता रहा है कि मध्यकालीन युग में उनपर मुसलमानों का शासन के अन्दर हीन भावना पैदा करने के उद्देश्य से किया गया। कालान्तर में जा कर यही समस्या हिन्दू-मुस्लिम समस्या बन गई।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम के बीच की खाई बहुत पुरानी है। भारत में मुसलमानों के आगमन तथा शासन से ही इन दोनों धर्मों के बीच तनाव था। धीरे-धीरे इनके बीच आपसी समझ पैदा हो रही थी। तभी अंग्रेजों का हमारे देश में आगमन होता है तथा उन्होंने दोनों के बीच फूट डालो और राज करो की नीति को अपनाया तथा दोनों धर्मों के लोगों आपस में धर्म के नाम पर बाँटा। तथा अपना शासन स्थापित किया। इस समस्या को राजनैतिक रंग मिला। स्वतंत्रता-आंदोलन के समय अंग्रेजों ने इसे अपने पक्ष में इस्तेमाल करना चाहा, जबकि स्वतंत्रता-आंदोलन के विभिन्न कार्यक्रमों में हिन्दू और मुस्लिम एकता भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था।

वर्मा जी ने हिन्दू और मुसलमानों की समस्या को राजनैतिक तथा धार्मिक के साथ ही इसे सांस्कृतिक समस्या भी माना है उनके अनुसार इस समस्या के मूल में दो संस्कृतियों का अन्तर है। हिन्दू समाज ने धर्म को व्यक्तिगत स्तर पर ग्रहण किया है जबकि मुस्लिम समाज में धर्म का स्वरूप सामाजिक है लेकिन उसमें संकुचित सामाजिकता है जिसकी वजह से वह व्यर्थ ही हिंसा पर उतारू हो जाता है। हिन्दू धर्म भी स्वयं ही अपने समर्थकों को विभाजित करता है-"तुम्हें अपने को हिन्दू कहने में शर्म आती है। तुम तो छोटे-छोटे फिरकों में बंटे हुए हो , बरहमन, बनिया, ठाकुर, अहीर, चमार और जब इनसे ऊपर उठे तो इंटरनेशनल बन गए।"[2] दूसरी ओर मुसलमान हैं जिन्होंने भारत देश से अधिक मक्का-मदीने को महत्व दिया। उनकी इसी प्रवृत्ति के वजह से हिन्दुओं ने उनके ऊपर कभी विश्वास नहीं किया। तुर्की के खलीफा के पक्ष में भारतीय मुसलमानों ने आंदोलन किया। गांधी जी ने इस आंदोलन का समर्थन भी किया परन्तु आंदोलन की समाप्ति के बाद कट्टर मुस्लिमों ने गांधी के प्रति अपने अविश्वास को प्रस्तुत किया।

'भूले बिसरे चित्र ' उपन्यास में अब्दुल कहता है "अजी खिलाफत का मामला तो शामिल करके हम मुसलमानों को बेवकूफ बनाया गया था। बाबू गंगाप्रसाद , यह सारा मूवमेंट सुराजियों का है, यह साफ है। विलायती कपड़ा मत पहनो, विलायती माल मत खरीदो, शराब की दुकान पर धरना दो, और गुड़ का बाप कोल्हू, यानी अब नारा लगने लगा कि टैक्स मत

दो। जनाब , इस हिन्दू गांधी का यह मंत्र और फरेब कब तक चलेगा। "[3] इन आपसी गलतफहमियों के कारण हिन्दू और मुसलमानों के बीच कभी विश्वास नहीं फैल पाया।

वर्मा जी सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में साम्प्रदायिकता के कारण विद्यमान है। जिसमें मुख्य रूप से 'भूले-बिसरे चित्र', 'और सीमा', 'सीधी सच्ची बातें', तथा 'प्रश्न और मरीचिका', उपन्यास में इस समस्या के विविध पहलू पर विचार किया गया । उनके 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास में फरहतुल्ला जैसे गांधीवादी विचारधारा वाला मुसलमान में भी धर्म के नाम पर भेदभाव विद्यमान है। वह एक ओर इस्लाम धर्म को सच्चाई की नींव पर खड़ा देखता है तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म को शोषण की नींव पर खड़ा मानता है। इस सन्दर्भ में वह कहता है "मैं मुसलमान पहले और मेरा मजहब सच्चाई और बराबरी की नींव पर कायम है , यह कैसे भूल जाऊँ ?"[4] वह अपने धर्म की प्रशंसा तो करता ही है साथ में हिन्दू धर्म पर भी टिप्पणी करता हुआ कहता है- "हम दोनों का समाज अलग है , हम लोगों का कल्चर अलग-अलग है। हिन्दू समाज एक्सप्लाइटेशन (शोषण) की नींव पर कायम है। यह बरहमन , छत्री, वैश्य, शूद्र कितना ऊँच नीच है। एक मौज करे , दूसरा पिसे जबकि मुसलमानों के समाज की नींव यूनिवर्सल बदरहुड (सार्वभौतिक भ्रातृत्व) पर कायम है। अब आप ही बतलाइए कि हम दोनों किस तरह आपस में मिल सकते हैं।"[5]

धर्म की पुरानी रूढ़ियों से मुक्त तथा अपने को समाजवादी मानने वाला 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास का पात्र जमील अहमद भी सांप्रदायिक धर्मान्धता का शिकार दिखाई देता है। वह इस्लाम को कुर्बानियों का मजहब कहते हुए हिन्दू धर्म में लीन सामाजिक हीनता का वर्णन उपन्यास में इस तरह से करता है , "मजहब खुद में एक सामाजिक इकाई है। मजहब का मतलब है समाज को कायम रखना , समाज को ताकतवर बनाना क्योंकि यह समाज ही इन्सानियत का ठोस रूप है। मजहब सामाजिक है , वह वैयक्तिक है ही नहीं। मन्दिर बनवाना, धर्मशालाएँ खोलना, सदावर्त बाँटना, ताकि चोर-बाजारी में , में, मक्र और फरेब में भगवान हमारी मदद करें , यह इस वैयक्तिक मजहब की कुरूपता है। हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसने धर्म को सामाजिक नहीं माना , उसने उसे वैयक्तिक माना है।"[6]

अंग्रेजों ने भारत में जो साम्प्रदायिकता का बीज बोया था उसका प्रभाव मुसलमानों पर यह पड़ा कि वे सोचने लगे कि जिस भारत पर मुसलमानों ने कई वर्षों तक राज किया उसका बदला हिन्दू अवश्य लेंगे। 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में इस संदर्भ में 'जमील कहता

है "यह क्यों भूल जाते हो कि मुसलमानों ने करीब आठ सौ साल हिन्दुओं पर हुकूमत की है, उन्होंने हिन्दुओं से गुलामी करवाई है। उनकी करनी ही अब उनमें यह खौफ पैदा कर रही है। इस खौफ की कोई ठोस बुनियाद है या नहीं , इस पर कुछ कहा नहीं जा सकता , लेकिन यह खौफ एक हकीकत है और रहेगा।"[7]

महात्मा गांधी के द्वारा हिन्दु-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का प्रयास जितना किया गया उतनी ही यह समस्या उलझती गई। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के नारे दिए जिसमें भी मुसलमानों को षडयन्त्र ही दिखाई दिया। राष्ट्रीय आंदोलनों और देश की एकता के अनेक कार्यों से गांधी जी की प्रसिद्धि बढ़ी जिसकी वजह से कई मुस्लिम नेताओं में बढ़ने लगी। विशेषतौर से जिन्ना को इस संबंध में 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में जमील कहता है कि "आखिर मिस्टर जिन्ना को जलन किस बात की है ? इसलिए न कि महात्मा गांधी मिस्टर जिन्ना को अपने बाद दूसरा दर्जा नहीं दे सके।"[8]

मुसलमान भारत में अल्पसंख्या में रहे.उनके अन्दर भय की भावना है कि कहीं हिन्दू उनपर शासन न करे । वे हिन्दुओं की दासता को स्वीकार भी नहीं करना चाहते थे। और इससे मुक्ति पाने का उन्हें एक ही उपाय दिखाई दे रहा था वह था 'देश का बंटवारा'!इस संबंध में 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास का पात्र बशीर अहमद कहता है- "जिन्ना को गाँधी के बाद का दूसरा दर्जा नहीं चाहिए, उन्हें गांधी के मुकाबले बराबरी का दर्जा चाहिए। गाँधी हिन्दू हैं, जिन्ना मुसलमान हैं। कोई एक-दूसरे से बड़ा-छोटा क्यों हो ? मैं कहता हूँ कि कांग्रेस के इस अड़ने से और गाँधी की इस जिद से देश का बंटवारा होकर रहेगा।"[9]

'सामर्थ्य और सीमा ' उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता का एक और पक्ष उभरकर सामने आया है। मुस्लिम नेताओं ने अपने सम्प्रदाय पर होने वाले भेदभावपूर्ण रवैया का उल्लेख करके भारतीय नेताओं को ठगने का व स्वार्थ सिद्ध करने वाला बताया। इस बारे में उपन्यास का पात्र मौलाना रियाजुलहक बड़ी निर्भीकता से कहते हैं-"जी आप रोकेंगे! दिल्ली में बैठे हुए अपने आका को जानते हैं आप? वह इस मस्जिद के बनने की इजाज़त देंगे। वह जयाली में मुसलमानों को जगह देंगे। इस इन्साफ-पसन्द फरिश्ते की वजह से ही हम मुसलमान हिन्दुस्तान में बसे हुए हैं और आप लोगों को अपना वोट देकर आप लोगों को ताकतवर बनाए हुए हैं। तो हमारा कल्चर , हमारी जबान, हमारा मजहब, इस सबको जगह मिलेगी यहां पर। मैं कल ही दिल्ली जाकर इस बात पर उनका फैसला माँगूंगा। आप हमारे

हकों को रौंद रहे हैं और आपकी ज्यादतियों की वजह से उनकी ताकत घट रही है , मैं उनसे साफ कहूँगा। देखता हूँ, आपकी मिनिस्टरी कैसे कायम रहती है।"[10]

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष बीसवीं शताब्दी की भारतीय राजनीति का महत्वपूर्ण अंग है। इस संघर्ष के कारण राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास में बहुत बाधा आई । भारत देश में प्राचीन समय से विभिन्न धर्मों के लोग धार्मिक के साथ रहते आये हैं । परन्तु मुस्लिम धर्म के साथ हिन्दू धर्म की संस्कृति का संघर्ष हमेशा विद्यमान रहा । भारतीय इतिहास में मुस्लिम जाति ही एक ऐसी जाति थी जिसके आचार-विचार हिन्दुओं के आचार-विचार से सर्वथा भिन्न थे।

एक और कारण था कि सदियों से विशाल हिन्दू जाति पर मुसलमानों ने शासन किया इसलिए मुसलमानों ने निर्वाचन-पद्धति तथा जनतांत्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक जाति की प्रधानता के कारण जाति के आधार पर अपनी सीटों की माँग करने लगे। हिन्दू सदैव इस माँग का विरोध भी करते रहे। इसका फायदा ब्रिटिश सरकार ने उठाया। उन्होंने मुसलमानों की हर उचित तथा अनुचित माँगों का समर्थन किया जिसकी वजह से दोनों जातियों में साम्प्रदायिक वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच गया। हाँलाकि अंग्रेजी शा सन के आरम्भिक दिनों में हिन्दू-मुस्लिम समस्या इतनी जटिल नहीं थी . उन्होंने 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अंग्रेजों के खिलाफ कंधे-से-कंधे मिलाकर लड़ाई लड़ी। भले ही उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ सफलता नहीं मिली। जैसे-जैसे अंग्रेजी राज्य देश में दृढ़ होता गया उनकी यह धारणा भी दृढ़ होती गई कि यदि हिन्दू और मुस्लिम की सम्मिलित शक्ति को नहीं तोड़ा गया तो इस देश में शासन चलाना असम्भव हो जायेगा। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे अपनी नीति में परिवर्तन करके हिन्दू और मुसलमानों के सांस्कृतिक वैभिन्न ता को पहचान कर उनमें फूट डाली गई , जिसका फायदा उन्हें बंटवारे के दौरान मिला।

महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक जीवन के शुरुआत में ही अंग्रेजों की इस कूटनीति को समझ लिया था साथ ही उन्होंने साम्प्रदायिकता का विरोध करना भी प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु उन्हें इस दिशा में अधिक सफलता भी नहीं मिली। वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'भूले-विसरे चित्र ', 'सामर्थ्य और सीमा ' तथा 'सीधी सच्ची बातें ' आदि इस समस्या को तद्युगीन परिवेश के अनुसार चित्रित किया है । वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या केवल राजनीतिक और धार्मिक न हो कर एक सांस्कृतिक परंपरा की उपज है जो कि काफी पुरानी है। वर्मा जी ने आगे कहा कि गांधी का प्रयत्न इसीलिए असफल हुआ

क्योंकि वह एक हिन्दू के द्वारा परिचालित प्रयास था। वर्मा जी ने अपनी इस दृष्टि को 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में स्वतंत्रता-पूर्व की स्थितियों को उठाया. 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में देश के आजाद होने और देश के विभाजन के समय तक की राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया है।

भारत में मुसलमानों ने हिन्दू धर्म की विकृतियों को तो अपनाया परन्तु हिन्दू धर्म की उदारता को आत्मसात नहीं किया। वे हिन्दुस्तान में रहते हुए भी मक्के-मदीना का ख्वाव न भूल पाये। वे स्वतंत्रता की महान लड़ाई में अंग्रेजों के खिलाफ हिन्दुओं के साथ एकजुट रह कर संघर्ष कर रहे थे परन्तु अंग्रेजों की कूटनीति के चलते धीरे-धीरे हिन्दुओं से उनका वैमनस्य बढ़ने लगा। वे धीरे-धीरे गाँधी के द्वारा चलाया गया खिलाफत आंदोलन के भी विरुद्ध होने लगे। साथ ही बहुसंख्यक मुस्लिम भी स्वतंत्रता के विरोधी हो गए। इसका वर्णन वर्मा जी 'भूले विसरे चित्र' उपन्यास के पात्र डिप्टी अब्दुल हक द्वारा करते हैं , "एक हजार वर्ष तक हमने हिन्दुओं पर हुकूमत की है, अब स्वराज्य मिलने के माने हैं कि हिन्दू हम पर हुकूमत करेंगे, हमें सताएंगे। हम किसी हालत में इस स्वराज्य पर राजी नहीं होंगे।"[11]

भारत में मुसलमानों ने लम्बे समय तक शासन किया है इसलिए वे अंग्रेजों की पराधीनता स्वीकार करने के बाद भी वह हिन्दुओं के साथ समझौता नहीं करना चाहते थे,क्योंकि जिनके ऊपर उन्होंने शासन किया उनके अ धीन वे नहीं रह सकते। इसलिए उन्होंने 'डोमिनियन स्टेट्स' तक की मांग में भी हिन्दुओं का सहयोग नहीं दिया। इस संबंध में 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में डिप्टी अब्दुल हक कहते हैं , "डोमीनियन स्टेटृस स्वराज्य , इसके माने हैं अंग्रेजों की सरपरस्ती में हिन्दू राज्य का कायम होना ठाकुर साहेब! यह जो डेमोक्रेसी है, जहाँ वोट पड़ते हैं, वहां हिन्दुओं की बन आएगी, क्योंकि उनकी तादाद हम मुसलमानों की तादाद से बहुत ज्यादा है ऐसी हालत में हम मुसलमानों को अंग्रेजों की जगह हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी तो एक हल्की-फुल्की गुलामी से निकल कर जनम जनम तक अखरने वाली गुलामी में हम बंधने को तैयार नहीं। "[12] अंग्रेजों ने इसी भावना का फायदा उठाया और हिन्दू मुस्लिम के बीच आपसी भेदभाव को बढ़ाया। गांधी जी द्वारा सामाजिक भेदभाव व ऊँच नीच मिटाने का प्रयास असफल रहा।

'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास का पात्र जमील अहमद अपने आपको कम्युनिस्ट मानने के बावजूद उपन्यास में वह गाँधीवाद की विवेचना करता हुआ कहता है कि गांधी जी ने आर्यसमाज के सभी कार्य अपना लिए जिसमें जाति-पांति को तोड़ना, अछूतों को उद्धार करना,

स्त्री शिक्षा तथा स्वतंत्रता को बढ़ावा देना, विधवा विवाह का समर्थन तथा छूआछूत को हटाना आदि शामिल है इसलिए इस जमाने में आर्य समाज का नाम हो गया गांधीवाद , वे आगे कहते हैं कि आज प्रत्येक हिन्दू कर्म में न सही विश्वासों में आर्य समाजी हो गया है बिना स्वयं को आर्य समाजी कहे हुए।

स्वतंत्रता आंदोलन के माध्यम से जैसे जैसे आजादी प्राप्त करने की आशा सभी देशवासियों को प्रसन्नचित्त कर रही थी वैसे-वैसे मुस्लिम इसे अपने लिए खतरा मान रहे थे। इस संबंध में 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में वर्मा जी लिखते हैं-"अब इस देश के मुसलमानों को खतरा पैदा हो गया है। यह जमाना डेमोक्रेसी का है , हिन्दुस्तान की आजादी के माने हैं इस देश में डेमोक्रेसी का कायम होना। इस डेमोक्रेसी में अस्सी फीसदी हिन्दू बीस फीसदी मुसलमानों पर हुकूमत करेंगे, उनको गुलाम बनाकर रखेंगे।"[13]

भारतीय राजनीति में जिन्ना का आना भी सम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना है क्योंकि उन्हें गांधी जी के समकक्ष नहीं माना गया। मुसलमानों की दृष्टि में गांधी का नेतृत्व संकीर्णताओं से भरा हुआ था। वे मानते थे कि गांधी मुसलमानों को गुलाम बनाना चाहते थे। जबकि गांधी जी हिन्दू मुस्लिम समस्या को जितना सुलझाने का प्रयत्न किया उतनी ही समस्या जटिल होती गई। गांधी और जिन्ना का राजनीतिक व्यक्तित्व की वजह से हिन्दू-मुस्लिम समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। इस संबंध में 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में बशीर अहमद सदृश कांग्रेसी मुसलमान कहते हैं , "जिन्ना को गाँधी के बाद दूसरा दर्जा नहीं चाहिए , उन्हें गांधी के मुकाबले बराबरी का दर्जा चाहिए। गांधी हिन्दू है , जिन्ना मुसलमान। कोई एक-दूसरे से छोटा-बड़ा क्यों हो ? मैं कहता हूँ कांग्रेस के इस अड़ने से और गांधी को इस जिद्द से देश का बंटवारा होकर रहेगा। जिन्ना गांधी से कम किसी हालत में नहीं है।"[14]

उक्त दृष्टिकोण के बाद देश का विभाजन होता है जिसमें 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास के कम्युनिस्ट पात्र जमील अहमद का कहना है कि अब हमें पाकिस्तान जाना ही पड़ेगा। वहां पर कम से कम हमें हिन्दुओं की गुलामी तो नहीं करनी पड़ेगी। इस हिन्दुस्तान में तो बरहमन, सेठ, मिल-मालिक, बनिए आदि का ही बोलबाला रहेगा। इस्लाम कम्यूनिज्म के ज्यादा नजदीक है और हिन्दुस्तान में अब कम्यूनिज्म कायम होने का चांस लगभग समाप्त हो गया। अतः यह कहा जा सकता है कि जमील अहमद जैसा साम्यवादी मुसलमान भी

साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त नहीं हो पाया जबकि साम्यवाद का उद्देश्य ही वर्गविहीन समाज बनाना है।

आजादी के बाद भी साम्प्रदायिक समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। मुसलमानों को वोट बैंक की तरह इस्तेमाल किया गया. 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास में मौलाना रियाजुल हक कहते हैं, "तो आप लोगों का मतलब यह है कि हम मुसलमान हिन्दू बन जाएँ। लेकिन मैं आप लोगों से कह देना चाहता हूं कि हम मुसलमान पहले हैं, बाद में हिन्दुस्तानी।"[15]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नीति के द्वारा हिन्दू और मुस्लिमों में सांप्रदायिक वैमनस्य, अपने शासन को मजबूत करने की कोशिश करते रहे। साथ ही हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने स्वतंत्रता आंदोलन में भीकाफी बाधा पहुंचाई। इसके अतिरिक्त भारत को भी आज तक इस साम्प्रदायिक समस्या से जूझना पड़ रहा है।

1. उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, अर्जुन साहु, पृ.141
2. सामर्थ्य और सीमा, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ- 135
3. भूले बिसरे चित्र, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ-185
4. ----------वही----------,पृष्ठ- 185
5. ----------वही----------,पृष्ठ- 185
6. उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, अर्जुन साहु, पृ. 146
7. सीधी सच्ची बातें, भगवतीचरण वर्मा ,पृष्ठ-179
8. ----------वही----------,पृष्ठ- 177
9. ----------वही----------,पृष्ठ-177
10. सामर्थ्य और सीमा, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ- 176
11. भूले बिसरे चित्र, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ- 342
12. भूले बिसरे चित्र, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ- 119
13. सीधी सच्ची बातें, भगवतीचरण वर्मा ,पृष्ठ 145
14. ----------वही----------,पृष्ठ- 259-260
15. सामर्थ्य और सीमा, भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ- 175

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Spiritual Vision in the Poetry of Kamala Das

Dr. Binay Kumar Vishwakarma
Assistant Teacher M.R.+2 School,
Gwalpara, Madhepura (Bihar)

Abstract

Kamala Das is one of the most prominent feminist poets of Indian English literature. She openly talks about love, lust, sexual desires and carnal experiences of women. She is well known as a confessional poet. Her confession is really far-reaching and pregnant with high vision. Consequently it becomes the point of revolution in the poetic world. She is eager to attend the height of sublimity of spirituality. In her few poems, she talks about 'Krishna', the eternal lover who can help her overcoming the false shadows of life. She is all through seeking eternity where she can rest peacefully. Her self dived into the world of spirituality that is itself a kind of divinity and to attain such divinity she surrenders herself to 'Krishna'. She knows the truth that death comes to all in its own way and in its own time. So she wishes to make her life meaningful by attaining the blessings of Lord Krishna. She turns to move towards spiritual plane that is the only goal of life where man comes ultimately.

Keywords: Feminist, Confessional, Sublimity, Spirituality, Eternity, Divinity.

Kamala Das is deeply obsessed with physical love. So she yearns for such a love which does not impede her impulse to freedom. She knows the fact well that only ideal love can help her to transgress the boundaries of ego and hatred in order to merge in total freedom. She seems to be turned mad in quest of the Divine love that is completely beyond the transitoriness of flesh. Many of her poems hint the divine touch of her pure vision. She realizes a transformation within and resulted in celebrating her spiritual love. In the poem entitled "Krishna" in *Collected Poems* she celebrates her spiritual love:

> "Your body is my prison, Krishna,
> I cannot see beyond it.
> Your darkness blinds me.
> Your love words shut out the wise world's din". ("Krishna")

Kamala Das indicates an emergence out of the mystery of life. It is the vision of spirituality. Her detachment to physical love and intense desire to embrace death reflects her evolution of consciousness to the higher plane which is necessarily spiritual in nature. She emphatically talks of spiritual evolution that shows that she wills to ascend to higher level of consciousness. The very purity of vision of love which she tries to have through her spiritual attainment is the spiritual involvement or realization that transcends the carnal as she refers in one of the poems entitled "Ghanashyam" in *Tonight This Savage Rite*:

"Ghanashyam
You have like a koel built your
Nest in the arbour of my
Heart
My life until now a sleeping jungle
Is at last astir with
Music
You lead me along a route
That I have never known before
But at each turn when I near you
Like a spectral flame you vanish" ("Ghanashyam")

Kamala Das perfectly realizes the ultimate need of spiritual experience. That's why she has associated her complete self with the self of Krishna. In her poem entitled "Radha" she refers to spiritual evolution by means of surrender. Radha here represents the spirit of surrender, the needed walk towards spiritual evolution:

"Everything in me
Is melting, even the hardness at the core
O Krishna, I am melting, melting, melting
Nothing remains but
You…." ("Radha")

Kamala Das actually gets upset on not receiving an adequate love from the genuine person. So her pessimism touches at the bottom of misery. She feels dissatisfied to the worldly pleasures and pronounces her deep desire of escaping from the clutches of man. She is really in search of spiritual love that can liberate her from this so called worldly clutches wherein she has been trapped. Her cry for freedom from physical love is presented clearly in the poem "Substitute" in *The Descendants:*

"Yet I was thinking, lying beside him,
That I loved, and was much loved.
It is physical thing, he said suddenly,
End it, I cried, end it, and let us be free
This freedom was our last strange toy." ("Substitute")

It would be relevant in some degree to mention here that Kamala Das in her poetical collections tries to come up to the level of spiritual consciousness. Her inner self urges to feel the necessity of spiritual emergence which she can't ignore its calls completely. She knows the purity of the soul that has nothing to do with the defiling of the body as the body itself is the matter of decay. The poem "The Suicide" evidently refers this:

"Bereft of soul
My body shall be bare.
Bereft of body
My soul shall be bare

……
I throw the bodies out,
I cannot stand their smell.
Only the soul may enter
The vortex of the sea.
Only the souls know how to sing
At the vortex of the sea". ("The Suicide")

Surely, she is dissatisfied with physical love. Her inner self wants freedom from such tyrannous and perishable love. So she only dreams an ideal love like Radha. Denial of the physical love and nobility of the eternal love is the root of spiritual evolution of consciousness. She expresses this in the poem "Radha-Krishna" in *Summer in Calcutta*:

"This becomes from this hour
Our river and this old Kadamba
Tree, ours alone, for our homeless
Souls to return someday
To hang like bats from its pure
Physicality…." ("Radha-Krishna")

Kamala Das's inward journey is the pure effort to dive deep into the process of self-realization. It is not easy to deny body as the body is as true as the soul, and in order to attain the soul, one must go through the body. She craves for celebrating and achieving love beyond the physique. She knows well that a mere physical relation between man-woman or husband-wife can't taste and realize, in true sense, perfect supreme bliss. To come over her disappointment and despair she surrenders herself to the Lord Krishna. There total involvement and surrendering attitude to the Lord Krishna. Her complete surrender to the Lord Krishna reflects the end of a search for the Divine touch. The fascinating qualities of the eternal love have been sketched through a delicate metaphor in the poem "Ghanashyam":

"Shyam, O Ghanashyam
You have like a fisherman cast your nets in the narrows
Of my mind
And towards you my thoughts today
Must race like enchanted fish…" ("Ghanashyam")

Kamala Das is one of those who realized naked reality of the mundane existence as it appears 'full of fury and sound, signifying nothing' (Macbeth). The poet wishes to transcend the limitation of the body. This step hints her journey for the spiritual world. She wishes to send an obvious message that one's ultimate aim should be to overcome one's own self so that ultimately it will be an escape from suffering. She clears her perception in the poem entitled "Advice to Follow-Swimmers":

"Go swim in the great blue sea
Where the first tide you meet is your body,
That familiar pest;

But if you learn to cross it
You are safe, yes, beyond it you are safe,
For, even sinking would make no difference then…"

("Advice to Follow-Swimmers ")

Kamala Das compares the body to a familiar pest. She thinks that if the temptation of the body is overcome, the soul will attain freedom. Surely it is liberation from the self. Her wish to transcend the limitation of the body is a step in the spiritual journey. The poet is highly conscious for her spiritual realization. She tries to develop an eternal bond to get redemption from the bondage of the material world. Her divine soul cries against its mortal dress. The poem "The Bats" in *Summer in Calcutta* is the true representative of idea of the poet. Her homeless soul is compared to a bat. The poet hopes that she may reach the goal only in the darkness of death:

"My soul today is on its blinded
Most frightened flight like a bat
That finds itself in an alien
Zone of light". ("The Bats")

The above poems present Kamala Das, undoubtly as a woman who shows a gradual widening concern over the years to liberate herself from the gender identity. Her pure commitment primarily assists her to listen to the call of her inner self. Her longing for a sacred and perfect love that goes beyond the joy of sex and disillusionment continues to move decisively in her poetic world. This realization happens with Kamala Das as she becomes entirely aware of physical decay. She realizes it at the core of her heart in the poem entitled "A Cask of Nothing" in *The Best of Kamala Das:*

"If I close my eyes I see nothing.
If I close my ears I hear nothing.
Nothing but nothing
Inside or outside
The nothing that resides
As an ache within
The only content
The human cask can contain". ("A Cask of Nothing")

This continuous encounter with physical decay also forces the poet to look beyond death into a state of spirituality. Her 'nothing' is nothing physical. It is rather supraphysical. The germination of supraphysical consciousness is a transparent hint of realization of spiritual consciousness. To be nearer the soul the layers of physicality need to be eliminated. She believes that by confessing, by peeling off her layers, she reaches closer to the soul. She longs to conquer the obstacles of body so that she can go to the soul.

Kamala Das's later poetic edition *Ya Allah* (1999) that appeared after her conversion to Islam is a dawn at a new identity of hers. It is one of Das's celebrated collections of poems. It truly reflects intense spiritual involvement in Allah. She experiences the bliss of the Divine power.

Her divine yearnings are presented in many of her poems of this volume. In her "Allah" poems, she completely surrenders to the Almighty. Her surrendering attitude pronounces her spiritual realization. It is highly notable and memorable distinctly at this point that Kamala Das changed her religion and accepted Islam and to be known as Kamala Suraiya. This changing in religion does not create any hurdle in her faith in God. She simply transfers herself from Krishna to Allah. She became a vibrating point between the two i.e. Hinduism earlier and Islam at the later part of her life.

Her later poems on Allah also significantly present her belief in God. She, here also, surrenders herself to Allah ultimately for liberating herself from the imprisoned cell of mortality. She surrenders herself to Allah by converting to Islam later on; equally she surrenders herself to Krishna of Hinduism earlier to purify her sinned soul. She is devoted to Allah. Her surrender to Allah gets full expressions in all forty five series of Allah poems. Ya Allah is one of Kamala Das's celebrated collection of poems. It contains a true reflection of her spiritual journey of life. Her pure devotion to Allah reflects in the poem "Submission". Her thirsts for communion with cosmic luminosity, heavenly light attains sublimity of thought by this:

"In my prayers
I beheld the heavenly light, all at once
As if basked in the moonlit
That blessed sight made my eyes blind
Yet, it sprouted in me the sublime insight of love
I humbly offer these verses to Allah
The loving and the merciful Kamala Suraiya". ("Submission")

The sublimity of her submission to divine which her poetry has recorded faithfully touches the readers and moves them. Her faith in Divine power is fixed as a northern star. Her abiding faith and conviction in Allah again voices soundly in the poem "Apology":

"Ye Allah
Forgive me, my Lord
Even in the serene vicinity
Of mosque
My voice turns bitter". ("Apology")

She worships Allah who is universal. She confident that Allah not only regards the prayer of the destitute but also listens the grooming of the sufferer. She is like a refugee who seeks a spiritual shelter under His pure care. Her submission to Him gets spiritual vibration in the poem "Hospitality":

"I stand as a refugee
In thy shelter
As yours special invitee
Do I need any other hospitality" ("Hospitality")

Kamala Das's concern with spiritual journey finds a more profound expression in her last poetic collection entitled *Closure* that appeared in 2009, a few months before her death. The last volume *Closure* also professes her spiritual significance to life. She completely wishes to step ahead to embrace spirituality where she can get rest permanently. She knows well that only this second step can liberate this haunted body. This does not mean that she wills to escape from the reality but she wishes to embrace spirituality. She is well acquainted with the fact that it is only spiritual journey that relaxes everyone from poisonous and unworthy of living life, where everything itself becomes valueless and meaningless due to real and actual realization of spiritualism.

Closure, the last poetic collection of Kamala Das mirrors her spiritual approaches and perceptions. She seeks redemption and immortality. Her yearning for Krishna and love to Him directs to reveal her real infatuation to Him. As she expresses her pure feeling to Krishna in her poem "Radha's Dream" in *Closure:*

"O Krishna
I did not for a moment believe
That you were a dream.
In your embrace
How could I have noticed
The seasons changing". ("Radha's Dream")

A close critical study of her poems shows that she, by exposing the layers of truth, is very close to a Yogi within her who speaks the truth. She is in process of shedding all that is grossly physical, trying to transcend it reach a spiritual plane where it is the eternal human spirit that matters, not this perishable body with its transient desires. So, by this process of going nearer to truth and reality, she feels that she has attained what the men of spiritual consciousness call Supreme Bliss in *The Descendants:*

"I also know that by confessing
By peeling off my layers
I reach closer to the soul" ("The Descendants")

The 'peeling off' the layers of the facts of her life leads Kamala Das closer to spiritual realization in which by merging the body and soul together. She finally attains the plane of spiritual consciousness. So, Das in her poem "Introduction" in *The Old Playhouse and Other Poems* has compared herself to a 'saint'; but when she achieves that pure and supreme experience her inner being gets delighted with eternal truth, but she realizes her blunder and her soul bursts out:

"I am the Sinner
I am the Saint. I am the beloved and the
Betrayed…" (" Introduction")

Conclusion

A critical analysis of her poems reveals the fact that Kamala Das has attained the spiritual state of mind. She by peeling off the layers of lies attains the eternal bliss. She mentions that in order to survive in the world free from sin, one can realize of God immediately and soon be liberated. Surely her said poems from every corner are to be valued importantly from point of view of her spiritual journey. These poems present her as a woman who is entirely conscious for spiritual transformation within her self. And that every self gets ready to listen the voice of God. To Kamala Das, *Krishna* is not merely a mythological figure but a source of Divine power. She attempts through her poems to have a transcendental look and feeling. She longs to attain the divine power in order to withstand the doubts, difficulties, worries and mysteries of the world. In fact, for Kamala Das Krishna is a source of a spiritual elevation that elevates her to attain the unification of the self with God.

References:

- Das, Kamala. *Summer in Calcutta*, New Delhi: Everest Press, 1965.
  --- *The Descendants*, Calcutta: Writers Workshop, 1967
  --- *The Old Playhouse and Other Poems*, Bombay: Orient Longman, 1973.
  ---Collected Poems, Vol. 1, Trivandrum: The Navkerala Printers, 1984.
  --- *The Best of Kamala Das*, Khozikode: Bodhi Publishing House, 1991.
  ---*Ya Allah*, A Poetry Chain, 1999.
  ---*Closure*, Noida: Harppick Publication, 2009.
- .Kumar, Nikhil. *Sri Aurobindo's Yogic Consciousness and Poetry*, Patna: Novelty and Co. 2007
- Nair, K.R. Ramachandran, *The Poetry of Kamala Das*, New Delhi: Reliance Publication House, 1993.
- Padmanabhan, Smita. *Kamala Das: A Feminist Study*, New Delhi: Prestige Books, 2009.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

हिन्दी कथा आंदोलन और कथाकार गोविन्द मिश्र

डॉ० शबनम कुमारी
पीएचडी (हिन्दी)
पटना विश्वविद्यालय

जिस समय मिश्र ने कहानी लिखना प्रारंभ किया लगभग उसी समय कथा लेखन में एक बड़ी पीढ़ी का अवतरण हुआ। इसमें गंगा प्रसाद विमल, मनहर चौहान, पानू खोलिया, महेन्द्र भल्ला, सुधा अरोड़ा, अन्विता अग्रवाल, ममता कालिया, सोना वीरा आदि मुख्य हैं। ज्ञातव्य हो कि ये वही लोग हैं जो नयी कहानी की कलकत्ता संगोष्ठी में विरोध के स्वर उठा रहे थे। बाद में इनमें से अधिकांश ने अपनी रचनाओं द्वारा अकहानी आंदोलन को ही सम्पुष्ट किया। इसलिए इनके कथ्य और शिल्प में नवीनता तो है पर मर्यादाओं का वह उल्लंघन भी इनमें मौजूद है जो अकहानी की नवीनता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है।

सन् 1965 में श्री गोविंद मिश्र बिहार के आरा जिला में आयकर पदाधिकारी के रूप में पदस्थापित थे। इसी वर्ष के मध्य महीनों में गोविंद मिश्र के सहयोग से विजय मोहन सिंह द्वारा एक कहानी गोष्ठी आयोजित की गई। इस गोष्ठी में कलकत्ता के युवा विद्रोही कथाकारों के साथ–साथ स्वयं कमलेश्वर भी मौजूद थे। यह गोष्ठी नयी कथा पीढ़ी के असंतोष को स्वर देने वाली गोष्ठी साबित हुई। यह कथा पीढ़ी अपने को नयी कहानी की छाया से मुक्त करने की आकांक्षी थी। अपने को नयी कहानी से अलग करने के लिए इस पीढ़ी ने अपनी कहानियों को 'सन साठ के बाद की कहानी' अर्थात् 'साठोत्तरी कहानी', 'समकालीन कहानी', 'समकालीन कहानी', 'आज की कहानी' आदि कहना पसंद किया। एक मत यह भी है कि 'अ–कहानी नाम भी शायद इसी संगोष्ठी में उभरा। बहुत संभव है कि कुछेक नामों को छोड़कर अधिकांश कहानीकार दोनों आंदोलन में विभिन्न कहानियों के साथ मौजूद हैं इसलिए यह भ्रम उत्पन्न हुआ हो। विजयमोहन सिंह ने इसमें शामिल युवा कहानीकारों की कहानियों का एक संकलन भी 'साठोत्तरी हिन्दी कहानियाँ शीर्षक से प्रकाशित कराया। बाद में इसका एक और सम्मेलन शिमला में भी आयोजित कराया गया। इसी कारण कथा आंदोलन में यह नाम भी चर्चित हो गया। वरना बाद के कथा आंदोलनों में यह नाम लगभग विस्मृत ही हो गया। धीरे–धीरे इसे 'अकहानी' के रूप में ही स्वीकार कर लिया गया।

'साठोत्तरी कहानी' के मुख्य प्रवक्ता गंगा प्रसाद विमल माने जाते हैं। उनके अनुसार ''सन् 60 के बाद कथा रचना की एक ऐसी रचनात्मक चेतना सामने आती है, जो पूर्ववर्ती रचना पीढ़ी से कई अर्थों में भिन्न हैं। इन रचनाकारों की रचनाओं में अभिव्यक्त संसार एक विचित्र संसार है, चाहे वह स्थूल या दृश्य यथार्थ में अप्रामाणिक लगे किन्तु अनुभवों के अनुभोग के आधार पर वह प्रामाणिक संसार है।....यह पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से बिल्कुल अलग है। पूर्ववर्ती पीढ़ी से अलगाव का मोटा बिन्दु समकालीन जीवन दृष्टि का बिन्दु है। समकालीन जीवन दृष्टि सामान्य अर्थों में 'आधुनिकतावाद' से अलग आधुनिकता संपन्न जीवन दृष्टि है, जो कदाचित पहली बार सन् 60 के बाद की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। पूर्ववर्ती पीढ़ी के लिए 'जीवन दृष्टि' एक विशिष्ट विचार का आग्रह रही है। जबकि समकालीन रचनाकार

के लिए वह केवल एक निरंतर परिवर्तित बोध के अन्वेषण और प्रश्नों की प्रक्रिया के रूप में ही सामने रही हैं। कथा रना की पद्धति, आग्रह, भाषा की अभिव्यक्ति या इससे भी अधिक क्रूर और झूठे शिल्प या कथ्य जैसे शब्द इस नयी रचना पीढ़ी ने अस्वीकार किये हैं तथा इससे भी अधिक क्रूर और झूठे शिल्प या कथ्य जैसेशब्द इस नयी रचना पीढ़ी ने अस्वीकार किये हैं तथा अपना यह विरोध और अस्वीकृति अपनी उन प्रयोगधर्मी रचनाओं के माध्यम से दी है जो पूर्व पीढ़ी की तमाम कथा रचना सम्बन्धी धारणाओं को तोड़ती है। इसलए इस नयी रचना पीढ़ी के लिए जीवन दृष्टि का सवाल अपने बीच के यथार्थ का अन्वेषण रहा है। उनकी प्राप्ति की असफल चेष्टाएं या अनेक प्रकार के दावों का उसने बहिष्कार किया है।''[1] 'साठोत्तरी कहानी' की सार्थकता और विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए रवीन्द्र कालिया कहते हैं ''आज की कहानी क्षण–क्षण घटित होने वाले वर्तमान का सही और सम्पूर्ण पर्यवेक्षण प्रस्तुत करती है।.....कहानी अब विस्तार प्रियता, लोकप्रियता सांकेतिकता और रोचकता आदि की सीमाओं को तोड़ती हुई एक नये कथा शिल्प का शिलान्यास कर रही है। लोकप्रियता और सांकेतिकता आदि स्त्रैण तत्वों का स्थान अनुभूति की प्रामाणिकता और तीव्रता ने ले लिया है। विस्तार प्रियता के स्थान पर मिथ कथन के सार्थक प्रयोग हो रहे हैं। वह किसी बाह्य अनुशासन की मुखापेक्षी भी नहीं रही है। भाव स्थितियों का बिखराव त्रसकारी अनुभव को एक नया आयाम देता है।''[2]

गंगा प्रसाद विमल की 'पुरानी कहानी के बीच', 'प्रश्नचिन्ह', 'दूसरे का भोग', 'विध्वंश' आदि कहानी 1965 के पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। विमल की इन शुरूआती और बाद की कहानियों की पूरी समीक्षा करते हुए मधुरेश कहते हैं ''विमल की कहानियाँ आम आदमी की वास्तविक स्थितियों के बीच से तराशी हुई कहानियाँ न होकर हिन्दी में अस्तित्ववाद के चालू लटकों के तहत लिखी गयी कृत्रिम स्थितियों का अप्रमाणीक अनुवाद ही अधिक लगती है। इन कहानियों में चित्रित स्थितियाँ अधिकांश में बनावटी हैं और इसलिए इन चौखटों में फिट किए गए पात्र भी जीते जागते, हँसते बोलते इंसान न होकर एकदम ठंडे और किताबी पात्र हैं जो बड़े दार्शनिक अंदाज में प्रतीक्षा, त्रास, आतंक, अनिश्चय, निर्णयहीनता और तनाव की जिंदगी जीते हैं।''[3]

मनहर चौहान ने भी 1965 से कुछ पहले ही कहानी लिखना प्रारंभ किया था। मनहर महानगरीय जिन्दगी और मध्यवर्ग के कहानीकार हैं। 'टोकरी में बैठी उदासी' और 'बीस सुबहों के बाढ़' महानगरीय जीवन की व्यस्तता, संवेदन शून्यता और सम्बन्धहीनता का चित्रण करने वाली कहानी है। 'घरघुसरा' इनकी एक बहुचर्चित और कथा मानदंडों पर खरी उतरने वाली कहानी है। यह कहानी मनोवैज्ञानिक होकर भी सामाजिक विसंगतियों का प्रभावी एहसास भी कराती है और प्रहार भी।

पानू खोलया की पहली कहानी 'एक किरती' सन् 1964 में प्रकाशित हुई। इनकी अधिकतर कहानी उत्तरांचल के पहाड़ी क्षेत्र की पृष्ठभूमि में संरचित हैं इनकी कहानियों में इस प्रदेश के दलित और मध्यवर्गीय किसान, दोनों समाजों का चित्रण देखने को मिलता है।

महेन्द्र भल्ला ने भी 1964 में ही कहानी लिखना प्रारम्भ किया था। उनकी पहली कहानी 'एक पति के नोट्स' नयी कहानियाँ के सितम्बर 1965 अंक में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद 'तीन चार दिन' और 'पुल की परछाई' नामक कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए। इनकी 'कुत्तेगिरि' कहानी पर उपेन्द्र नाथ झा अश्क टिप्पणी करते हैं कि ''उसे पढ़कर मंटों की याद आती है। वह चुस्ती, वही जुमलेबाजी और आवारा जीवन का वही चित्रण जो मंटो को पसंद था। फर्क यह है कि मंटों के मन में मानव नियति के प्रति प्रबल आक्रोश था, इसीलिए उसकी प्रसिद्ध कहानियों के अंत पॉजिटिव हैं। जबकि भल्ला ने आज के अनास्थावादी की तरह कहानी का अंत किसी तरह के सकार अथवा नकार के बिना नितांत निरपेक्ष ढंग से कर दिया है।''[4] इस दौर की मुख्य महिला कथा लेखिकाओं में सुधा अरोड़ा हैं। इनकी पहली कहानी 'मरी हुई चीज' सितंबर, 1965 में प्रकाशित हुई थी। इनकी आरंभिक कहानियाँ निजी अनुभवों से

जुड़ी प्रेम संवेदना पर आधारित हैं। हालाँकि इनकी बाद की कहानियों में सामाजिक सरोकार की मार्मिक व्यंजना हुई हैं। इन कहानियों में सुधा व्यक्ति संवेदना से समाजसंवेदना की ओर अग्रसर हुई हैं।

इस दौर की अन्य महिला लेखिकाओं में ममता कालिया हैं। इनका पहला कहानी संग्रह 'छुटकारा'सन् 1969 में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः यही वो दौर था जब राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, महीप सिंह, गिरीराज किशोर और स्वयं रवीन्द्र कालिया काम वर्जनाओं से जूझ रहे थे। ममता भी इसी सुर में अपना सुर मिलाती दिखाई देती हैं।

बल्लभ सिद्धार्थ ने भी सन् 1965 के आसपास ही कहानी लिखना प्रारंभ किया। इनकी कहानियाँ 'महापुरुषों की वापसी' और 'शेष प्रश्न' नामक संग्रहों में संकलित हुई थीं। इनकी अधिकतर कहानियाँ मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। समकालीन राजनीतिक–आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न स्थितियों और मानसिकता का अंकन इन कहानियों में प्रमुख रूप से हुआ है। ये व्यवस्था के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार और क्रूरता का नंगा नाच देखते हैं और उसका चित्रण करते हैं। 'व्यवस्था' नामक कहानी में समकालीन पुलिस, नेता, पत्रकार और पुलिस के दलाल की मिलीभगत का तल्ख चित्रण किया गया है। हाशिए पर रहने वालों पर पुलिस के अत्याचार का दहला देने वाला सच इस कहानी में अद्भुत तल्खी के साथ प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो पुलिस की मामानी औपनिवेशिक व्यवस्था की एक सुपरिचित घटना है, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी नेताओं, मीडिया और दलालों के मिलीभगत की कहानी और अधिक वितृष्णा उत्पन्न करते हैं।

इस दौर के एक अन्य महत्वपूर्ण हस्ताक्षर अशोक अग्रवाल हैं। इनकी प्रथम कहानी 'अवमूल्यन' 1968 में प्रकाशित हुई थी। बाद में 'उसका खेल' और 'सँकरी गली' नामक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। इनकी कहानियाँ मोटे तौर पर दो श्रेणियों में रखी जा सकती है। पहली श्रेणी उसकी है जो परम्परागत प्रविधि में लिखित समकालीन जीवन स्थितियों पर आधारित है। दूसरी श्रेणी की कहानियाँ समकालीन जीवन पर आधारित होने के बावजूद शैलीगत प्रयोगों से प्रेरित हैं। अधिकांश कहानी तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों पर व्यंग्य हैं परन्तु सभी में शिल्पगत प्रयोग के प्रति अत्यधिक सजगता दिखाई पड़ती है।

जब गोविंद मिश्र ने कथा लेखन प्रारंभ किया ठीक उसी समय तो नहीं परंतु उसके 5–10 वर्षों पश्चात् लिखना प्रारंभ करने वाले कथाकारों में भी कई चर्चित नाम हैं। मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, निरूपमा सोबती, प्रणव कुमार बंधोपाध्याय, धीरेन्द्र अस्थाना, मृणाल पाण्डे, मनोहर श्याम जोशी आदि इसी समय उत्पन्न हुए मुख्य कथाकार हैं। इस दौर की सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि स्त्री कथाकारों की संख्या बढ़ने से कथा साहित्य में स्त्रियों को स्त्री नजर से देखने का नजरिया विकसित हुआ। जिससे स्त्री मानसिक द्वंद्वों की आधुनिक समझ अधिक परिपक्व हुई। हालाँकि अपवाद ममता कालिया जैसी लेखिका भी हैं जो बेलौस प्रस्तुति ही अपनी रचनाधर्मिता की मुख्य विशेषता मानती दिखाई देती हैं पर इन बाद के लेखकों में शिल्पगत प्रयोगों के साथ साथ तत्कालीन परिवेश की परिपक्व प्रस्तुति और सुगठ्यता के अंश अपेक्षाकृत अधिक मौजदू हैं।

उपरोक्त वर्णित कथाकारों की तुलना में श्री गोविंद मिश्र की कथा यात्रा कई मायने में अलग जान पड़ती है। सबसे बुनियादी बात तो लेखक के स्वयं का जीवन है। अत्यधिक दारूण्यता की स्थिति में पले बढ़े और अपनी मेहनत व लगन के आधार पर आभिजात्य की श्रेणी में शामिल होने का सफर यह बताता है कि लेखक में जीवन की यथार्थपरक समझ कितनी परिपक्व होगी। दरिद्रता को देखना एक बात है और उसमें जीना दूसरी बात। फिर जीवन संघर्ष के टेढ़े–मेढ़े रास्ते। पर अंत में एक सुखमय जीवन की प्राप्ति। यह सुखमय ही नहीं हैं बल्कि ऐसे सीाावनाओं से भी भरपूर हैं जिसमें अलग

अलग वर्ग, अलग अलग क्षेत्र, भाषा, व्यवसाय के लोगों का संग साथ मिलता रहता है। यही तो लेखक को कथा की नयी जमीन उपलब्ध कराती है। श्री मिश्र की कथा यात्रा को देखा जाय तो ये बातें पूरे सच साबित होती हैं। श्री गोविंद मिश्र को कथाकारों की पंक्ति में अलग स्थान दिलाने वाला इनका विशाल कथा भंडार है। ऐसे विरले ही कथाकार या साहित्यकार हुए हैं जिनके दस या दस से अधिक हानी संग्रह प्रकाशित हुए हों। इसके अलावा इनकी रचना के और भी बिम्ब–प्रतिबंब हैं। इस विशाल कथा सागर में परिवेश की विविधता खूब दिखाई देती हैं। शायद ही कोई परिवेश हो जो इनकी कलम से अछूता हो। आधुनिक महानगरीय परिवेश से ग्रामीण परिवेश तक, ऐतिहासिक से समसामयिक तक, एकान्त से भारी भीड़ तक, पहाड़ी से मैदानी। लगभग सभी। जबकि प्रायः लेखक किसी एक परिवेश के कथाकार बनकर ही रह जाते हैं। श्री मिश्र जबसे लिखना प्रारंभ किए तब से लेकर आज तक विभिन्न कथा आंदोलन के माध्यम से कथा लेखन के नये–नये मानदंडों का सृजन होता रहा। अपने–अपने तर्क दिए जाते रहे। लेकिन श्री मिश्र की कहानियाँ कभी भी किसी आंदोलन से प्रभावित दिखाई नहीं देती हैं। हाँ उल्टी सिीति जरूर दिखाई देती है अर्थात् कहानी स्वतंत्र ढंग से लिखी जा रही थी ऐसे में बहुत संभव था कि कोई कहानी विशेष किसी आंदोलन के मानदंडों की भरपाई कर दे। वस्तुतः ऐसा ही हुआ भी है। साठोत्तरी आंदोलन के साथ इनका नाम नजदीक से जुड़ा बाद में इसे अकहानी भी कहा गया। इस दौर में लिखी इनकी कुछ कहानी जैसे 'अजीवीकरण' ऐसी ही मालूम पड़ती है पर आगे–पीछे अन्य कहानियाँ देखी जाय तो वहाँ ऐसे कोई मानदंड की भरपाई का एहसास नहीं होता है।

वास्तव में श्री मिश्र की रचनात्मक विविधता एवं शिल्पगत प्रयोगों का विश्लेशण किया जाय तो दूधनाथ सिंह के ये शब्द प्रासंगिक होने लगते हैं। दूधनाथ सिंह के अनुसार ''पहले के लेखक की एक अतिरिक्त सत्ता थी इसलिए वह रचना करता था। आज का लेखक रचना को झेलता है क्योंकि वह हर जगह भागीदार की हैसियत से विद्यमान रहता है। यह आधुनिक लेखक की नियति है। वह अपनी भागीदारी की नियति से आज मुक्त नहीं हो सकता है। ....आज का कहानीकार स्थितियों में भागीदारी की नियति के कारण ही 'कहानी की खोज' में नहीं भटकता, बल्कि उसके सामने मूल समस्या 'अभिव्यक्ति की सच्चाई' की समस्या है। उसके लिए हर असली कहानी एक नया प्रारंभ और झेलने और परिस्थितियों को उनके सच्चे परिदृश्यों में देखने की एक चुनौती है। ....बुनियादी तौर पर कहानी लेखन में जीवन्त सच्चाईयों और आधुनिक सामाजिक और राजनीतिक और वैयक्तिक विगर्हणाओं को सही माने में व्यक्त करने के लिए हम इस परम्परानिहित, पुरातन, क्लासिक और सर्वस्वीकृत–प्रक्षेपित विजन को एक घटिया दर्जे की वस्तु मानते हैं।''[5] पुनः वे आगे कहते हैं ''उद्देश्यहीनता हमारा लक्ष्य नहीं है, लकिन साथ ही हमारा कोई भी आरोपित उद्देश्य नहीं हो सकता.....अंदर से हमारे चारों ओर जिस तरह की अव्यवस्था अपने क्रूर पंजे फैलाती जा रही है, उनमें सर्जन की संभावनाओं का उदय हुआ है। यह भी निश्चित है कि इस सब कुछ को समेटने के लिए हमें नयी भाव, एक नयी नीरसता और शिल्पहीनता की आवश्यकता बार–बार महसूस होती है। इसकी खोज ही आज की सबसे बड़ी लेखकीय समस्या है। यह सोचना कि हमने युद्ध प्रत्यक्ष रूप से नहीं भोगा। अतः हमारी आधुनिक मनोवृत्ति या पीड़ा भाव झूठे हैं– स्वयं को धोखा देना है। हमारी सबसे बड़ी समस्या भी यही है कि हमने युद्ध नहीं भोगा और हम उसके अप्रत्यक्ष दबाव से दूर भी नहीं जा सकते। इसलिए भारतीय लेखक की समस्याएँ और उसकी स्थिति किसी भी अमरीकी या यूरोपीय लेखक से अधिक कठिन और भयानक है।''[6] हालाँकि दूधनाथ सिंह ये सारे तर्क अकहानी के तहत किए जाने वाले नवीन प्रयोगों के लिए दिया है। फिर भी ये शब्द श्री मिश्र के लिए प्रासंगिक हो जाते हैं चूंकि इसमें शिल्पगत या कथ्यगत पृथकताओं के लिए भी अकाट्य तर्क मौजूद हैं।

हिंदी कथा आंदोलन का इतना विस्तृत उल्लेख करने का मुख्य उद्देश्य उस साहित्यिक वैचारिक पृष्ठभूमि को भलीभाँति स्थापित करना था जिसमें श्री गोविंद मिश्र ने अपनी कहानी लेखन की यात्रा प्रारंभ की और आज भी जारी है। भले ही विभिन्न कथा आंदोलन समय के साथ उभरते और बिखरते रहे, कथाकारों का आंदोलन के साथ जुड़ाव और विलगाव होता रहा। नए तर्क गढ़े जाते रहे पर इन सबमें श्री गोविंद मिश्र थोड़े अलग दिखाई देते हैं। स्वयं की स्वीकारोक्ति के साथ कहानियां भी यही अभिव्यक्त करती हैं कि श्री मिश्र की लेखनी स्वतंत्र रूप से चली रही। किसी वाद–विवाद अथवा आंदोलन का प्रभाव इन पर नहीं रहा।

हाँ साठोत्तरी कहानी के आरा संगोष्ठी के आयोजन में सहयोग अवश्य किया परंतु इसमें उपजी प्रवृत्तियों के प्रति सहमति या असहमति के सुर कहीं भी सुनाई नहीं देते हैं। बाद में समांतर कहानी और जनवादी कहानी के मानकों के अनुरूप इनकी कुछ कहानियाँ लिखी भी गईं। परंतु सच्चाई यही है कि यह तो दबे–कुचले लोगों के प्रति सहज संवेदना थी जो कथा बोल के रूप में फूट पड़े किसी बाद की स्वीकारोक्ति नहीं।

संदर्भ सूची :

1. गंगा प्रसाद विमल : समकालीन कहानी का रचना विधान, पृ0 17, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1967
2. उद्धृत कमलेश्वर– नई कहानी की भूमिका, पृ0 176, राजकमल प्रकाशन, प्रकाशित वर्ष 2015
3. मधुरेश– सिलसिला, पृ0 102, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 1979
4. उपेन्द्र नाथ अश्क–साहित्यधारा, पृ0 129, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987
5. दूधनाथ सिंह– समकालीन कहानी : भागीदारी और अभागापन, पृ0 172, अभिव्यक्ति प्रकाशन, 1970
6. वही, पृ0 173,

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

गाँधीवाद की प्रासंगिकता

डॉ० धृति
पूर्व शोध छात्रा,
इतिहास विभाग,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा (बिहार

गाँधीजी सच्चे सत्याग्रही हैं, वे सत्य को ही परम आदर्श एवं सर्वोच्च मूल्य मानते हैं। सत्य रूपी साध्य की प्राप्ति के लिए गाँधीजी ने अहिंसा को साधन के रूप में अपनाया है और इसी अहिंसा के पालन के लिये उन्होंने जो ढंग विकसित किया, उसे वे सत्याग्रह नाम देते हैं। सत्याग्रह सत्य के प्रति पूर्ण निष्ठा है, सत्य का दामन हर स्थिति में पकड़े रहना है, इसमें किसी भी प्रकार की असमर्थता के लिये कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रह इस दृढ़ विश्वास के साथ अग्रसर होता है कि ईश्वर एक है, तथा वही हर मनुष्य, हर जीव, हर सत्ता में विद्यमान है। हम जिसका विरोध करते हैं उसमें भी उसी ईश्वर का वास है जो हममें है। इसी कारण सत्याग्रह सर्वव्यापी प्रेम में बदल जाता है, जिसमें हर व्यक्ति दूसरों के अन्तःस्थित सत्य का सम्मान करता है। इस रूप में गाँधीजीर का सत्याग्रह का विचार उपनिषदों में वर्णित अभेददर्षी की अवधारणा के अत्यन्त निकट है। वास्तव में सभी प्रकार के अत्याचार, अन्याय अथवा हिंसा इस कारण होते हैं कि वहाँ सत्य की उपेक्षा की जाती, सत्य का त्याग ही इनके उत्पन्न होने का कारण है। अतः यदि हम विश्व में व्याप्त हिंसा, अन्याय आदि का सामना हिंसा–अन्यास से ही करते हैं तो हम भी असत्य का ही साथ दे रहे हैं, सत्य की उपेक्षा कर रहे हैं। गाँधीजी के अनुरूप यदि इन्हें समाप्त करना है तो हमें सत्य को अपनाना होगा, यही सत्याग्रह की सार्थकता है।

गाँधीजी सत्य को समस्त नैतिक मूल्यों का उद्‌गम मानते हैं। उन्होंने सत्य और अहिंसा का सैद्धांतिक समर्थन मात्र नहीं किया है, अपितु अपने व्यावहारिक जीवन में भी अपनाया है। आत्मनियंत्रण उनका संबल था और सत्य एवं अहिंसा उनके मूल हथियार थे, जिनकी बदौलत आज हम एक संप्रभु देश में स्वतंत्र रूप से साँस ले रहे हैं। अगर आज विश्व हमारे देश को 'गाँधी के देश' के रूप में पहचानता है तो इसके पीछे उनके सत्याग्रह और अहिंसा की ताकत ही है। वास्तव में आतंकवाद एवं हिंसा से त्रस्त इस विश्व को गाँधी की तरफ लौटना ही होगा जहाँ अहिंसा ही परम धर्म है, सत्य ही परम मूल्य है। किन्तु गाँधी जी का सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध अथवा कायरतापूर्वक समर्पण नहीं है। यह विवश करने की विधि भी नहीं है। वस्तुतः सत्याग्रह हृदय परिवर्तन की विधि है, जिसका आधार असीम प्रेम एवं असीम धैर्य है। गाँधी जी का सत्याग्रही सत्य के लिये अपना उत्सर्ग करता है, स्वेच्छा से स्वयं को कष्ट में डालता है। वह कष्ट झेलकर भी विपक्षी को प्रभावित करता है, जिससे वह अपने अन्दर विद्यमान अनिवार्य 'शुभत्व' की आवाज को सुन सके और उसकी दृष्टि परिवर्तित हो सके। इसीलिए गाँधीजी कहते हैं ''निर्माण की प्रवृत्ति प्रभाव उत्पन्न करने से जागती है और प्रभाव दूसरों को दुःख पहुँचाकर उत्पन्न नहीं होता बल्कि सलीब पर लटक जाने से उत्पन्न होता है।

गाँधी जी साध्य एवं उसकी प्राप्ति के साधन, दोनों की पवित्रता एवं शुचिता में दृढ़ विश्वास रखते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि पवित्र से पवित्र साध्य की प्राप्ति के लिये भी यदि अनुचित साधन का उपयोग किया जाता है तो वह साध्य को ही नष्ट कर देता है। यही कारण है कि गाँधी जी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता के आन्दोलन में सदैव अहिंसा का पालन करने की शिक्षा दी। उनका स्पष्ट मत है कि ''हिंसा पर किसी सर्जनात्मकता को शाश्वत रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि शुभ उद्देश्य तथा कल्याण के अभिप्राय से भी हिंसा के प्रयोग द्वारा अत्याचारी या बेईमानों को हटाया गया है, तो उस हिंसा के प्रयोग के कारण वह समाज स्वयं भी उन्हीं कुरीतियों एवं अशुभ रूपों का शिकार हो गया है, जिन्हें दूर करने के लिए उन्होंने हिंसा का सहारा लिया था।'' गाँधीजी के इन विचारों की प्रासंगिकता का प्रमाण हमें अफगानिस्तान, लीबिया, ईराक, पाकिस्तान आदि में व्याप्त हिंसा के रूप में प्रत्यक्षतः दिखाई देता है।

हमारे वर्तमान सामाजिक ढाँचे में नौकरशाही हो या राजनेता अथवा सामान्य–जन, सभी अपने–अपने साध्य की प्राप्ति के लिये घृणित से घृणित कृत्य को भी अपना साधन बनाकर समाज को विकृत करने जा रहे हैं। ऐसे में गाँधीजी के साध्य एवं साधन की पवित्रता संबंधी विचारों को समझने की तथा समाज के प्रत्येक स्तर पर व्यावहारिक रूप देने की आवश्यकता है। दरअसल भ्रष्टाचार की दलदल में फँसे और आतंकवाद से त्रस्त इस विश्व को गाँधीवाद की आवश्यकता है, जो विकास की राह को सुगम, सार्थक और निर्वहनीय बना सके।

गाँधीजी सर्वोदयी समाज के पक्षधर थे, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समाज में अधिक से अधिक स्वतंत्रता एवं अवसर की समानता प्राप्त होगी। वे स्वयं कहते हैं ''मैं एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूँ, जहाँ एक सबसे गरीब व्यक्ति भी यह महसूस कर सके कि यह उसका अपना देश है, जिसमें उसकी बात को सुना जायेगा, उसकी बात का प्रभाव बढ़ेगा, जहाँ न कोई उच्च वर्ग होगा और न कोई निम्न वर्ग, जहाँ सभी धर्म एवं जाति के लोग सहिष्णुता से जी सकेंगे, जहाँ जातीय छुआछूत का कोई स्थान न होगा तथा समाज नशे से मुक्त होगा, जहाँ औरतों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे।'' किन्तु गाँधीजी के उपर्युक्त विचारों के विपरीत दुनिया के बहुत बड़े हिस्से में आज भी लोग गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा एवं विपन्नता का जीवन जीने के लिए मजबूर है। वहीं दूसरी तरफ तेजी से वयस्क होती नयी पीढ़ी पर बाजारतंत्र, उपभोक्तावाद एवं पाश्चात्य अपसंस्कृतिकरण पूरी निरंकुशता से हावी है। सामाजिक न्याय एवं नैतिक मूल्यों के मायने ही बदल गये हैं और समाज में विषमता लगातार बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में गाँधीजी के सर्वोदयी समाज का आदर्श वर्तमान विश्व के लिए एक प्रकाश स्तम्भ के समान है।

सर्वोदय समाज को मूर्त रूप देते हुए गाँधीजी कहते हैं कि वह पूर्णतः विकेन्द्रित समाज होगा, स्वशासन और समता जिसका अनिवार्य लक्षण होगा, तथा सम्पत्ति जल की भाँति निर्धनों की ओर प्रवाहित होगी। किन्तु गाँधीजी के इन विचारों के विपरीत सम्पूर्ण विश्व में संसाधनों के लिए होड़ मची हुयी है। ऐसी स्थिति में निर्धन व्यक्ति हो या देश, उसके लिए अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं। पूँजी एवं श्रम अथवा अमीर एवं गरीब के बीच बढ़ती दूरियों के परिणामस्वरूप समाज एवं विश्व अनेक गुटों में बँटता जा रहा है। किन्तु गाँधीजी पूँजीपति वर्ग एवं श्रमिक वर्ग में किसी भी प्रकार का संघर्ष स्वीकार नहीं करते हैं। इसके लिए वे **ट्रस्टीशिप** का सिद्धांत प्रस्तावित करते हैं, जिसमें यह कहा गया

कि व्यक्तिगत प्रयासों से हमें पूँजीपति वर्ग में यह चेतना जागृत करनी चाहिए कि उनके पास जो पूँजी जमा है, वह श्रमिकों के श्रम से ही है, अतः उन्हें सार्वजनिक अमानत के रक्षक की भाँति व्यवहार करना चाहिए और अपने धन के अधिशेष भाग को जन कल्याण के लिए न्यास या ट्रस्ट में रख देना चाहिए। गाँधीजी के उपर्युक्त विचारों को अपनाकर अनेक स्तरों पर सामाजिक संघर्षों से बचा जा सकता है। वास्तव में गाँधीजी का सर्वोदय सिद्धांत का आदर्श अपने समकक्ष सभी सिद्धांतों से कहीं श्रेष्ठ है। सुखवाद जहाँ व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठने की प्रेरणा नहीं दे पाता, वहीं उपयोगितावाद मात्र अधिकतम की बात करता है। हीगेल का 'जीने के लिये मरो' सिद्धांत भी केवल अपने तक सीमित है। हक्सले का 'जियो और जीने दो' का सिद्धांत यद्यपि सह–अस्तित्व एवं सामाजिक–न्याय का अच्छा पहलू है, किन्तु इससे भी अच्छा तो यह सर्वोदय का आदर्श है, जिसमें यह कहा गया है कि 'दूसरों को जिलाने के लिए मरो'।

यदि हम गाँधीजी के आर्थिक विचारों का मंथन करें तो हम पायेंगे कि उनकी कुछ अन्तर्दृष्टियाँ आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है। आज अंधाधुंध तकनीकीकरण के द्वारा पैदा किया गया पर्यावरण विनाश मानव जाति के लिए बहुत बड़ा खतरा बन गया है, साथ ही साथ इसने सामाजिक विघटन को भी बढ़ावा दिया है। यद्यपि आज भूमंडलीकरण के दौर में हम मशीनीकरण को एक ओर नहीं कर सकते, किन्तु यदि विशाल एवं निरन्तर बढ़ती हुई श्रमशक्ति को बेरोजगारी से बचाना है तो हमें गाँधीजी के विचारों के अनुरूप मशीनीकरण को विवेकपूर्ण तरीके से अपनाना होगा। ऐसा नहीं है कि गाँधीजी महज चरखा और स्वदेशी पर बल देते थे तथा औद्योगिकीकरण के विरोधी थे। वरन् वे स्वयं कहते हैं कि ''मेरी कल्पना है कि बिजली, जहाज निर्माण, लोहे के कारखानों, यंत्र निर्माण और ऐसे ही अन्य उद्योगों का अस्तित्व ग्रामीण शिल्प के साथ–साथ चले।'' आज **अमर्त्य सेन** जैसे अर्थशास्त्री अपने **कल्याणकारी अर्थशास्त्र** के माध्यम से वस्तुतः गाँधीजी के सहज आर्थिक चिंतन की उपादेयता को ही स्पष्ट करते हैं।

गाँधीजी व्यक्तिगत जीवन में नैतिक मूल्यों को सर्वोच्च महत्व देते हैं। नैतिक मूल्यों की व्याख्या में उन्होंने कुल ग्यारह सद्गुणों की पहचान की है। जो निम्नवत् हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अभय, अस्वाद, छुआछूत, निवारण, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म समभाव एवं स्वदेशी। गाँधीजी सद्गुणों को शुद्ध जीवन का अनिवार्य अंग मानते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति तब तक शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकता जब तक कि उसे सद्गुणों का सम्यक् ज्ञान न हो। गाँधीजी के उपर्युक्त विचारों के आलोक में यदि हम वर्तमान सामाजिक ढाँचे का परीक्षण करें तो समाज के प्रत्येक स्तर पर हिंसा, अन्याय, भ्रष्टाचार एवं अतिशय स्वार्थवाद का बोल–बाला दृष्टिगत होता है। वास्तव में आज गाँधीवाद से ज्यादा जरूरत गाँधी–भाव की है, जहाँ गाँधीजी की जीवनशैली के छोटे–बड़े नियम, उनकी कार्यपद्धति, आचरण एवं मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण को सामान्य जन की दिनचर्या में शामिल किया जा सके। साथ ही यदि हमें भारत को एक मजबूत, सशक्त एवं विकसित राष्ट्र बनाना है तो हमें जीवन के हर क्षेत्र में गाँधीजी के विचारों को व्यावहारिक रूप देना होगा और शायद यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

ये ठीक है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन बर्बर एवं हिंसक समाज, और आधुनिक उपनिवेशीय शोषण एवं अत्याचार की अपेक्षा समकालीन सामाजिक ढाँचे में गुणात्मक एवं रचनात्मक परिवर्तन आया है और समानता, स्वतंत्रता एवं वितरण न्याय के विचारों की लोकप्रियता बढ़ी है। किन्तु मानवमात्र के कल्याण

के लिये अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। वास्तव में गाँधीवाद की प्रासंगिकता तब तक नहीं समाप्त हो सकती, जब तक कि दुनिया में एक व्यक्ति भी भूखा, बेरोजगार अथवा अशिक्षित है, जब तक समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा नहीं प्राप्त हो जाता, जब तक समाज में नशे एवं छुआछूत की जहर बाकी है, जब तक धार्मिक उन्माद एवं परस्पर कटुता का अन्त नहीं हो जाता, जब तक दुनिया के किसी भी कोने में हिंसा को साधन के रूप में अपनाया जाता रहेगा, तब तक गाँधीवाद की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1. गाँधी, मो०क०, टुवर्ड्स नॉन वाइलेटेड पॉलिटिक्स, तन्जौर सर्वोदय, 1969
2. गाँधी, मो० क०, हरिजन, 1939
3. गाँधी, मो०क०, हिन्द स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद
4. आधुनिक भारत का इतिहास, सम्पादक–राम लखन शुक्ल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1998
5. आधुनिक भारत का इतिहास, विपिन चन्द, ओरिएन्ट ब्लैक स्वान, हैदराबाद, 2008

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

'Jane Austen' Art of fiction : Re-evaluation

Subodh Kumar
Research Scholar
B.N.M.U Madhepura

Since Jane Austen's novels are both a reflection of the Enlightenment humanism bearing upon themes of love, marriage and domesticity as well as a reaction against the cult of sensibility, the purpose of the research article is to try and recover some of the thought-patterns and influences that the author comes in contact with whether or not consciously These need not necessarily be seen only as forming a 'background' against which she writes her novel but as playing very much into its text' and constituting it along with other text. Intersexuality is thus one of the areas such a research aim at and is interested in.

There is an immense need of looking at the implications of her authorial choices of form, genre, characterization and language or style in relation to the influences mentioned above, if one has re-assess and posit Austen's art of the realistic novel in its truest merit and perspective.

Writing mainly during 1798-1818 transitional phase of English literature. Jane Austen combines in her novels the Augustan concern about the social context of human beings with the Romantic emphasis on the individual self in isolation. Austen's emergence in the literary scene coincides with the concretization of the Enlightenment humanism and the commencement of decline of the Gothic romance. Consequently, novel as a form of realistic narrative gradually started emerging through the works of such writers as Fielding, Richardson, Defoe, Fanny Burney, Maria Edgeworth and Jane Austen. Particularly, the latter three writers place women character at the centre of their works. But most notably, it is Austen who attempts to put the attitudinal and behavioral differences of different classes and factions of society in a realistic perspective of fine balance.

Austen can be labelled an almost Neo-classiscist, for she extends the pursuit of 'balance' and ' proportion' to literature between the two opposing sets of impules that emerge in the two decades (1798-1818) when she wrote most of her novels. Her first novel Northanger Abbey (posthumouly published in 1817) exposes through parody the sentiments and perceptions associated with Gothic romance and Sense and Sensibility (1811) similarly points our the danger of an uncritical acceptance of the cult of sensibility.

Jane Austen's refusal to include magical, miraculous or fantastic elements in her novels, her distrust of emotional effusiveness and her Choice of ordinary human beings instead of grand or heroic figures as characters for her novels, should better be seen in the context of the rise of the novel earlier in the eighteenth century, when 'realism' intended to affirm a 'scientific' outlook and demorcratic values-the newly ascended middle classess defined these against the fatalism and mysticism of the romances. But Romanticism is more than a re-assertion of outmoded and earlier discarded irrationalities. It also voices dissatisfaction with the inherited ideals of rationality and good sense. Austen has been charged with neglecting the instinctive and passionate self of Romanticism. Yet, she has been identified as one of its initiators in the genre of fiction. Ruth Vanita, for example, rgards jane Austen as Romantic novelist because of her interest in the juxtaposition of inner and outer worlds, the movement of individual consicouseness between these worlds, and the insistence in the novels on love and friendship as the best basis for human community.

Towards the end of the seventeenth century, as a result of the compromise effected through The Glorious Revolution of 1688, the same classes which had earlier been engaged in a bitter conflict over state power, came together in a relatively unified social formation, consisting of large sections of landed aristocracy, the rural gentry and the middle classes associated with the professions and with trade and industry. A workable consensus evolved from different interpretations of the values of enlightenment humanism, to create the ideals of reason and good sense.

Another charge related in some ways to the first, is that "she ruffles the reader by nothing vehement, disturbs him by nothing profound. " By the very fact that the statement is that of Charlotte Bronte, one can see the reason behind it. The novel, for the authoress of jane Eyre, was a vehicle of " grand passion", and the novelist's task was to identify himself or herself with his or her characters, sufficiently to be able to record their impulsive emotions and "gushes of feeling" It is not surprising, then, that Bronte should have found Austen's detached and dispassionate tone both inadequate and lacking in seriousness. She has clearly overlooked Austen's" fervent moral concern" and, if one can sufficiently establish that such a " concern" exists beneath the lightness and buoyancy of touch, and the sober evenness of tone, one will have answered the charge convincingly.

To quote the admirable words of Jane Austen in Northanger Abbey, "novel is that form of work in which the most through knowledge of human nature, the happiest delineation of its verities, the liveliest effusions of wit and humour are conveyed to the world in the best chosen language". And Austen practies what she preaches, She seeks inspriation both from her observation of life as well as from her personal "lived experience'. The reason why the characters of Jane Austen and Charles Dickens are so appealing is that these novelists personally lived and experienced the life and persona of the characters of their fictions. No trace of artificiality could taint their portraiture. When they deviated even a bit from

portraying the realistic milieu, as they did while seeking to depict high romance and high romance and high aristocratic life respectively, both Austen and Dickens failed because they had little experience of the life they sought to paint in some of their novels at times.

In relation to her novels, particularly to that of Emma, Jane Austen stands widely apart as apparently objectives as the Chaucer of 'Troilus,'. At the other extreme, she sets herself down in " Propria Persona,", in the very centre of her works, with quite as much self-consciousness as the Thackeray of Vanity Fair. She is by turns omniscient and ignorant, humble and sententious, direct and oblique, the dramatist and the teller of tales. Often she poses as a historian in possession of all the facts, in presenting them as they have happened; and often she posses as an indifferent and nonchalant observer, merely recording, with disinterestedness, the facts and impressions from what she is witnessing. That Austen sometimes seems a chronicler of the past, and at others, a narrator of the present. But neutrality is, in fact impossible for Austen. She will not let the facts " speak for themselves" for she does not believe that the fact can be articulated.

Austen's first attempt at serious fiction entitled Eleanor and Mariana in epistolary form, was revised and published as Sense and Sensibility in 1811 'First Impressions' later entitled Pride and Prejudice enhanced her reputation as one of the major novelists of the age. Northanger abbey which she wrote earlier in 1798 had to wait a long time and was pblished along with her last completed novel Persuasion in 1818 after her demise, her other important novels are Mansfield Park (1814) and Emma (1816) R.W. Chapman's edited versions of all the six novels of Austen if 1923 increased in 1923 increased the critical notice accorded to the novelist in recent times. It was due to the Austen's superb art of fiction that Edwin Muir in his The Structure of the Novel (1928) written as a reaction to E.M. Forster's Aspects of the Novel agreed with Forster that Austen was primarily a supreme artist in the sphere of the novel. Reginald Farrar was all praise for Austen's achievement as a novelist. Mary Lascelles thought Austen worthy of a full-length portrait called jane Austen and her Art. Katherine Mansfiedl, Virginia Woolf and Forster were great admirers of the novelist: they admired her ability to harmonise character and enviornment.

Austen is an skilled artist at using domestic comedy as an instrument to explore the social and psychological conflicts. Her habitual mode of perception is almost always " ironic' the term here being used to signify a world view an awareness of essential contradictions in human experience. It is this trait for instance, that makes Emma something infinitely more than a mere allegorical narrative of didactic intent-much more than the usually exhaustive hackneyed insignificant rigmarole. As in the Elizabethan drama, irony in Austen proceeds as Sidgewick points out, "from the sense fo contradiction felt by spectators of a drama who see a character acting in ignorance of his condition."

In Sense and Sensibility, when Mr. Dashwood pays a belated call on Mrs. Jennings in Berketeg Street, the event is fully reported. It is in the arrangement of this account that the un-objective intention discloses itself. The thin ground of Dashwood's civility is exposed only at the end of the paragraph and the reader is forced to think back on what has gone before. Doubtless he is evil but partly through an impurity of motive. Similarly in Pride and Prejudice when Austen sums up the characters of Mr. and Mrs. Bennet, she does not tell the reader of Mr. Bennet's wanton irresponsibility nor of Mrs. Bennet's malevolent selfishness. The novelist simply states some conditions from which these can follow. At the beginning of Emma, Austen rapidly sketches the background of the heroine preferring all sorts of enumerative mintial associated with a traditional archetype: "The real evils, indeed, of Emma's situation were the power of having rather too much her own way and a disposition to think a little too well of herself: there were the disadvantages which threatened to alloy her many enjoyments. The danger, however was at present so unperceived that they did not by any means rank as misfortunes with her". In passages like these one notices that the chronicler has stopped and the reflective moralist appears.

The economic basis of all social behaviour has been presented in most of her novels, thought Austen does so under an ironic garb such as of understatement, hyperbole, antipharasis as distinguished from litotes, or syntctical anti-climax etc. Another significant stylistic device is that of the role of Pygmalion myth coupled with point-counter-point technique, as can be best exemplified in Emma. wherein the protagonist-heronie's observation of the beauty of Harriet is again ironical because not a single man with the exception of Martin ever shows the slightest interest in the most insipid Harriet. Furthermore, the simple irony of Emma's flirtation with Frank Churchill rises from the fact that Frank is in love with someone else and uses Emma as a decoy. That Emma is completely wrong and mistaken about him, makes for one of the major ironies of the novel. But Frank is exploiting Fmma in order to reveal her as she really is. He is egoistical and caluculating as she is, but he beats her at her own game because he is far less self-deuded than she. Emma's prodigious self-deception springs partly from her inexperience. These deceptions practiced on Emma are intentional and artful. However, it would be a mere over-simplification to say that Austen's novels turn on the contrast of appearance to reality because of the significance of her novels as in Shakespeare's drammas, lies in the variety of illusions and the complexity of reality.

To conclude, Jane Austen was not a fantasist, and, therefore could wrote only about a world she had did lived in, and experienced, namely, the country-house world of the smaller English gentry. It was from this source that she drew all her raw material. Nonetheless, this limited raw material does not necessarily a limited "vision" and range. Consciously and deliberately she indentified herself with the eighteenth century tradition of realism in the novel though she does not imitate the methods and techniqes developed by her literary predecessors, or adopt their values or attitudes. Instead, she makes creative use of an

inherited tradition to deal with the the issues and problems of contemporary social developments to try and find a proper comic resolution to the then prevailing conflicts while continuing to show an awareness of their acuteness.

References

- Conrad, Peter. "Introduction" to Pride and Prejudice. London: Everyman's Library, 1991.
- David, Grey, Ed. The Jane Austen Hand book: London: Athlone, 1986.
- Focault, Michel: What is Enlightenment: was ist Aufklerung? Unpublished ms. transl. Catherine Porter in Paul Rainbow ed. The Focault Reader. New York: Panthean, 1994.
- Hardy, Barbara" A Reading of Jane Austen. London: The Athlone Pres, 1975. rptd. 1979.
- Mc Master, Juliet (Ed.): Jane Austen's AChievement: London: Macmillan, 1976.
- Mukherjee, Meenakshi: Women Writers" Jane Austen. London" Macmillan, 1991.
- Stokes, Mytr: The Language of Jane Austen: A Study of Some Aspecdts of her Vocabulary. London Macmillan, 1991.
- Tomalin, Clare: Jane Austen: A Life. Londown": Viking, 1997, Penguin, 1998.
- Trivedi, Harish (Ed.) Jane Austen: An Anthlogy of REcent Criticism. Delhi: Pencraft International, 1996.
- Watt, Lan: The Rise of the Novel: Studies is Defore, Richardson, and Fielding, London: Chatts and Windus, 1957.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

स्वराज्यदल का उदय – एक अध्ययन

डॉ0 बिरेन्द्र कुमार
एम0 ए0, इतिहास
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सरकार की विधान सभाओं में आलोचना एवं विरोध से जनता में जागृति एवं उत्साह बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त, असहयोग के कार्यक्रम को विधान सभाओं में जाकर सरकारी निरंकुशता को रोकने तथा अवसरवादियों व सरकार के समर्थकों का भी विरोध अधिक सक्षमता से किया जा सकेगा। परिवर्तनवादी नेताओं का यह भी विचार था कि स्वराज्य की मांग को और अधिक सशक्त किया जाएगा तथा 1919 ई. के सुधारों में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए सरकार पर दबाव डाला जाएगा। अतः गया अधिवेशन में परिवर्तनवादी नेताओं ने विधान सभाओं में प्रवेश हेतु अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस अवसर पर चितरंजन दास ने कहा, ''मैं विधान सभाओं (कौंसिलों) का बहिष्कार करने के विपक्ष में नहीं हूँ। मेरा मत है कि सुधरी हुई विधान सभाओं तथा इण्डियन सिविल सर्विस के फौलादी ढांचे की व्यवस्था भारतीयों की प्रकृति तथा प्रतिभा के तनिक भी अनुकुल नहीं है। ... कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह विधान सभाओं के अन्दर से उनका अधिक प्रभावशाली ढंग से बहिष्कार करे।'' किन्तु कांग्रेस के राजगोपालचारी जैसे नेताओं ने इसका विरोध किया तथा यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अतः चितरंजनदास ने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया।

स्वराज्य दल की स्थापना

चितरंजदास तथा मोतीलाल नेहरू ने, कांग्रेस द्वारा प्रस्ताव के अस्वीकृत किए जाने पर, इलाहाबाद में मार्च, 1923 ई. में 'स्वराज्य दल' की स्थापना की। यह दल कांग्रेस का ही एक अंग था, किन्तु परिवर्तनवादी होने के कारण इनकी विचारधाराएं कुछ भिन्न थीं। अपरिवर्तनवादी, चुनावों से अलग रहकर गांधी जी के रचनात्मक कार्य करना चाहते थे, किन्तु स्वराज्य दल ने आगामी चुनावों में भाग लेने की घोषणा की थी। इस प्रकार धीरे–धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी, जिससे कांग्रेस के विभाजन का खतरा दिखलायी देने लगा था। अतः सितम्बर, 1923 में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने साम्राज्यवादियों के कौंसिलों में प्रवेश के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। फरवरी, 1924 ई. में गांधीजी को स्वास्थ्य के आधार पर जेल से रिहा कर दिया गया। नवम्बर में गांधीजी ने भी कांग्रेस की एकता बनाए रखने के लिए स्वराज्यवादियों के कार्यक्रम को 'गांधी–दास समझौता' (Gandhi-Das Pact) के अन्तर्गत स्वीकृति प्रदान कर दी। इस समझौते के द्वारा स्वराज्यवादियों को कांग्रस के नाम पर कौंसिलों में प्रवेश की अनुमति दी गयी। इस समझौते को कांग्रेस के दिसम्बर, 1924 ई. के बेलगांव के अधिवेशन ने मान्यता प्रदान कर दी। गांधीजी ने यद्यपि स्वराज्यवादियों के इस कार्यक्रम की स्वीकृति प्रदान की, किन्तु मूलतः वह इसके विरोधी ही थे, जैसा कि उनके निम्नलिखित शब्दों से स्पष्ट है, ''मेरा अब भी यह मत है कि कौंसिल प्रवेश असहयोग के सम्बन्ध में मेरी धारणा के अनुकूल नहीं है। देश के लिए

कौंसिलों के बाहर रहा उनमें रहने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक होगा फिर भी मैं अपने स्वराज्यवादी मित्रों को अपने दृष्टिकोण पर लाने में असफल हुआ हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि जब तक उनके विचारों में परिवर्तन नहीं होता, उनका स्थान निःसन्देह कौंसिलों के अन्दर ही है। इसी में हम सबका भला है।'' स्वराज्यवादी भी गांधीजी के कार्यक्रम के विरुद्ध नहीं थे। इनकी पुष्टि उनके 1923 ई. के चुनावों के समय घोषित कार्यक्रम से होती है। उसमें कहा गया था कि उनका उद्देश्य भारतवासयों को स्वराज्य दिलाना है। यह कार्य वे कौंसिलों में प्रवेश करके करना चाहते हैं, किन्तु आवश्यकता होने पर वे गांधीजी के सत्याग्रह कार्यक्रम को पूर्ण सहयोग देंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी के उद्देश्य व सिद्धान्तों से स्वराज्यवादियों का उद्देश्य कौंसिल में प्रवेश करके सरकारी कार्यो में बाधा पहुंचाना, बजट का विरोध करना, प्रशासन की बुराइयों की निन्दा करना, अवांछनीय बिलों को पारित न होने देना था, ताकि सरकार को स्वराज्य देने के लिए विवश किया जा सके। पं. मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल की नीति के विषय में लिखा, ''हमारा ध्येय तो नौकरशाही द्वारा स्वराज्य के मार्ग में डाली गयी रुकावटों का मुकाबला करना है और जब अड़ंगा' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसी मुकाबले से हमारा तात्पर्य है।''

स्वराज्य दल के कार्य

जनता कांग्रेस के कार्यक्रमों में सम्भवतः परिवर्तन चाहती थी, अतः जब स्वराज्य दल ने एक नवीन कार्यक्रम उनके समक्ष रखा तो जनता द्वारा उसका स्वागत किया गया। 1930 ई. में स्वराज्यवादियों की लोकप्रियता की पुष्टि लार्ड रीडिंग के उस पत्र से होती है, जो उसने ओलिवर को लिखा था। उस पत्र में लार्ड रीडिंग ने लिखा, ''इस समय स्वराज्यवादी मनमानी करता है, उसको रोकने वाला कोई नहीं है। उसकी तुलना भी कोई नहीं कर सकता ... इसका मुख्य कारण यह है कि उसके पास पूरा कार्यक्रम है। इसको वह मतदाताओं के सामने रखता है और कहता है, कि इससे सब दुख दूर हो जाऐगें। यही अत्याचारी सरकार को समाप्त करने का साधन है। ... स्वराज्यवादी का सरकार विरोधी जोरदार भाषण सुनने के बाद उदार दल के सदस्य का भाषण मतदाताओं को नीरस प्रतीत होता है।'' अतः 1923 ई. के आम चुनावों में स्वराज्य दल को भारी सफलता मिली। उदारवादियों का तो इस दल ने कौंसिलों से लगभग सफाया ही कर दिया। केन्द्रीय विधानमण्डल, बंगाल तथा मध्य प्रान्त में स्वराज्यवादियों को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। अनेक प्रान्तों में स्वराज्य दल को स्पष्ट बहुमत तो न मिला किन्तु यह प्रमुख विरोधी दल बन गया। केन्द्रीय विधान परिषद् में स्वराज्यवादियों के नेता पं. मोतीलाल नेहरू तथा बंगाल विधान परिषद् में चितरंजनदास थे। इन चुनावों में केन्द्रीय परिषद् में 145 में से 47 स्थान स्वराज्य दल को प्राप्त हुए। केन्द्रीय परिषद् में मोती लाल नेहरू के सहयोगियों में मदनमोहन मालवीय, विट्ठलभाई पटेल तथा रामास्वामी आयंगर आदि भी थे। पं. मोतीलाल नेहरू व उनके साथियों के प्रयत्नों से 8 फरवरी, 1942 ई. को निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव केन्द्रीय परिषद् में पारित किया गया – ''यह परिषद् गवर्नर जनरल की भारत के लिए उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दृष्टि से 1919 ई. के अधिनियम में परिवर्तन करने की सलाह देती है तथा आग्रह करती है कि निकट भविष्य में भारत के लिए एक संविधान बनाने के लिए, जिसमें भारत के अल्पजनसंख्या वाली जातियों और हितों का ध्यान रखा जाएगा, भारत के प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाए। इस केन्द्रीय विधानपरिषद् को भंग करके नए केन्द्रीय विधानमण्डल के समक्ष इस संविधान को स्वीकृति के लिए रखा जाए और बाद में इसको अधिनियम का रूप देने के लिए इंग्लैण्ड की संसद के समक्ष रखा जाए।'' इस प्रस्ताव का भारत के संवैधानिक इतिहास में विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त 1924 ई. में ही इण्डियन सिविल सर्विस के विषय में रिपोर्ट को स्वीकार करने से मोतीलाल नेहरू व उनके सहयोगियों ने केन्द्रीय परिषद् में अस्वीकार कर दिया। बाद में इसे कौंसिल ऑफ स्टेट ने पारित किया। स्वराज्यवादियों ने केन्द्रीय परिषद् में 1924–25 से 1926–27 तक के बजट की मांगों को प्रत्येक वर्ष अस्वीकार कर उसका

धोर विरोध किया क्योंकि 'स्वराज्यवादियों ने अपना सिद्धान्त बना लिया था कि जब तक शिकायतों को दूर नहीं किया जाएगा तब तक कोई वित्तीय विधेयक पारित नहीं किया जाएगा। विवश होकर गवर्नर जनरल को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर वित्तीय प्रस्तावों को पारित करना पड़ता था। स्वराजयवादियों ने अनेक मामलों में परिषदों में सरकार का विरोध किया तथा सरकार के रुख के प्रति रोष व्यक्त करने के लिए परिषदों की बैठकों का बहिष्कार किया। प्रान्तीय परिषदों में भी स्वराज्य दल के सदस्यों ने सरकार के लिए प्रशासन चलाना दुरूह कर दिया। बंगाल में पूर्ण बहुमत में होने के कारण चितरंजनदास को मन्त्री पद के लिए आमन्त्रित किया गया, किन्तु दल की नीति के अनुसार उन्होंने इस पद को अस्वीकार कर दिया। बंगाल में सरकार की अनेक मांगों का विरोध किया गया तथा मन्त्रियों का वेतन अस्वीकार करके गतिरोध उत्पन्न किया गया। इस दल के सदस्यों ने अपने निरन्तर असहयोग से सरकार के लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न कीं। ताराचन्द ने सत्य ही लिखा है कि जिन कौंसिलों में स्वराजय दल का बहुमत था, वहां इस दल ने प्रमाणित कर दिया कि अन्दर से भी असहयोग किया जा सकता है।

1924 ई. में केन्द्रीय कौंसिल के द्वारा पारित प्रस्ताव के परिणामस्वरूप सरकार ने 1919 ई. के सुधारों की जांच के लिए गृह सदस्य अलैक्जेण्डर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। मोतीलाल नेहरू को भी इस समिति का सदस्य बनाया गया, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस समिति के अधिकांश सदस्य सरकार के ही अनुयायी थे, अतः उन्होंने वैध शासन प्रणाली को उपयुक्त बताया, किन्तु कुछ सदस्यों द्वारा इसमें मौलिक परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया। केन्द्रीय कौंसिल में इस समिति की सिफारिशों की पं. मोतीलाल नेहरू ने कटु आलोचना की तथा इस रिपोर्ट के विरुद्ध 14 के मुकाबले 45 मतों से प्रस्ताव पारित कराया।

स्वराज्य दल का पतन एवं मूल्यांकन

1925 ई. से चितरंजनदास की मृत्यु हो गयी। चितरंजनदास एक अत्यन्त कर्मठ व्यक्ति के साथ–साथ कुशल नेता भी थे, जो स्वराज्य दल को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने में सफल हुए थे। उनकी असामयिक मृत्यु से दल को गहरी चोट पहुंची, तथा शीध्र ही वह पतन की ओर अग्रसर होने लगा। यद्यपि पं. मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल को सम्हालने की यथाशक्ति चेष्टा की, किन्तु कुछ सदस्यों के सरकारी सम्मान व प्रतिष्ठा के प्रति अपने मोह को न रोक सकने के कारण, वे अपने प्रयतन में सफल न हो सके। इस दिशा में शुरूआत एम. बी. ताम्बे ने की जो मध्य प्रान्त में कौंसिल में स्वराज्य दल के सदस्य थे, उन्होंने गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् में मन्त्री पद को स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार 1925 ई. में बी. जे. पटेल केन्द्रीय कौंसिल के अध्यक्ष बन गए। इस प्रकार स्वयं स्वराज्य दल में ही एकता कायम न रह सकी। पं. मदनमोहन मालवीय सरीखे वरिष्ठ नेता भी ऐसा ही सोचते थे, क्योंकि समस्त विरोधों के पश्चात् भी गवर्नर जनरल की असीमित शक्तियों के कारण वे कोई ठोस उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सके थे। गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सरकार समर्थक नीतियां कार्यान्वित करने में सफल हो जाता था और स्वराज्यवादी कुछ न कर पाते थे। अतः यह स्पष्ट होने लगा कि कौंसिलों में विरोध करने मात्र से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। गांधीजी की विचारधारा ही सही प्रमाणित हुई। अतः धीरे–धीरे स्वराज्य दल कमजोर होता गया व 1926 ई. के चुनावों में मद्रास के अतिरिक्त सभी स्थानों पर उसकी हार हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Motilal Nehru, The Voice of Freedom, P. 520.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में विवाह पूर्व नारी रूप

डॉ0 अनिता कुमारी

मुहल्ला–जानीबाजार, पैठान टोली,
सासाराम, रोहतास (बिहार) पिन–821115

बदलते समय के साथ नारी जीवन में भी बदलाव आया है। आज की नारियाँ पहले की तरह नहीं हैं जो पुरानी मान्यताओं को हू–ब–हू स्वीकार कर ले। उनमें वह वर्ग भी है जिसे आधुनिक कहा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन के बहुविध पक्षों पर जैसे– रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। नयी पीढी नये परिवेश में पल रही में पल रही है। आज के वैज्ञानिक युग ने मानव को इतना संसाधन उपलब्ध करा दिया है कि हम कई माध्यमों से जब चाहते हैं एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। स्पष्ट है इन उपकरणों के कारण सारी सूचनाएँ सबके पास आसानी से मिल जाती हैं। इससे हमारे सोचने का दायरा बढ़ा है सब–कुछ देखकर परखकर विचार करने की तमीज आयी है। लड़कों के अलावे अनेक ऐसी अविाहित लड़कियाँ है जो अपने जीवन के बारे में खुद सोंच रही है, अपने अनुसार जीवन यापन कर रही हैं। अपने बारे में स्वतंत्र होकर निर्णय ले रही हैं। कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में भी अनेक ऐसी नारियाँ है जिन्होंने विवाह पूर्व न केवल अपना निर्णय लिया है बल्कि उन्होंने अलग रास्ता चुन लिया है। 'टीन के घेरे' कहानी की महिला पात्र रूपा भी इसी कोटि में आती है। रूपा के पिता पंडित राधेश्याम मिश्र और इसकी माँ का नाम गंगा है। दोनों ने इसे पढ़ा–लिखाकर योग्य बनने का सपना देखा था। अभावों में रहकर भी रूपा की फरमाइशों को दोनों ने पूरा किया। वह पढ़ने के क्रम में अपने कई सहेलियों के घर जाती थी। इसी कारण उसका पढ़ाई में मन नहीं लगता रहता। वह हायर सेकेण्डरी की परीक्षा दो बार फेल कर गई। सयानी होते ही सोचने लगी कि मैं अपनी मर्जी से विवाह करूंगी। गंगा का मझला लड़का रूपा के इस निर्णय को जान चुका था। इसलिए वह अपनी माँ से एक दिन कहता है कि– तुम्हारी लाडली कोर्ट मैरिज करने जा रही है माँ। 1 उसकी बात सुनकर भी रूपा के माँ–बाप कुछ न कर सके। बाद में संयोग ऐसा बना की रूपा जिस लड़के से विवाह करना चाहती थी उसने दूसरी लड़की से विवाह कर लिया। 'अंतर्दाह' कहानी की इन्द्राणी काफी सामान्य घर की महिला थी। उसके पिता राजस्थान के जमींदार थे। इन्द्राणी के पिता रामलाल उसे बहुत मानते थे। एक दिन वे सोने की ईंट बनवाकर लाये थे। जब इन्द्राणी ने पूछा की आप किसके लिए बनाकर लाये हैं तब उनका जवाब था कि इन्द्राणी का विवाह करने जब कोई इन्द्र आयेगा उसे दहेज देने के लिए ले लाया हूँ। स्पष्ट है अपने पिता से भी इन्द्राणी मन की भावनाओं को व्यक्त करती रहती थी। इन्द्राणी की शक्ल–सूरत का बयान करते हुए कहानी की पात्र डॉ. सरला ने लिखा है–"मैने देखा, उसकी उम्र–छब्बीस साल लगभग थी। जब वह हँसती थी, तो उसके गालों पर नन्हे–नन्हे गढ्ढे पड़ जाते थे, जो बेहद सुन्दर दिखाई पड़ते थे। इनसे उसके चेहरे पर एक भोलापन दिखाई देता था और भी कम मालूम पड़ती थी। गठा हुआ शरीर था उसका। रंग उजला गोरा था। कद ऊँचा था। नाक–नक्श सब ऐसे थे, जैसे बड़ी मेहनत से साँचे मे ढ़ाले गये हों। चोली कट के लाल रंग के ब्लाउज पर सफेद साड़ी पहने थी। चुस्त कपड़ों में बड़ी स्मार्ट दिखाई पड़ती थी। जूड़े में प्लास्टिक का सफेद फीता बँधा था। उसकी बाँयी कलाई पर काले पट्टे में लगी हुई घड़ी थी, और दाँयी कलाई

पर मीन के कामदार कंगनों क बीच काँच की पतली पतली चूड़ियाँ थी ऊची ऐडी के सफेद सैंडिल पहने थी वह।"[2] 'मंगली' कहानी की महिला पात्र नमिता की बेटी पारूल है। वह पढ़ने–लिखने में काफी तेज है। अपने महाविद्यालय में वह प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण करती है साथ ही युनियन का प्रेसीडेन्ट भी वह रह चुकी है। पारूल के विवाह के संबंध में गॉव की कई महिलाएँ पूछती हैं कि तुम अब पारूल का विवाह क्यों नहीं कर देती। इस पर नमिता कहती है कि मैं जैसा घर–वर चाहती हूँ वैसा अभी तक नहीं मिला। नमिता की एक सहेली ने उसकी बात काटते हुए कहा– "अरे वाह..... पारूल तो इतनी गुणवती और सुंदर है, भला उसके लिए क्या लड़कों की कमी है? कुछ भी कहो, समय पर ही लड़की का ब्याह कर देना चाहिए। सभी तरह से संपूर्ण अच्छा घर किसे मिलता है! लड़की उम्र पर ही ब्याह दी जाय तो अच्छी लगती है।" उन्होंने एक साँस ही में ऐसी चेतावनी नमिता को दे दी थी जिसकी उसे तो कोई अहमियत ही न थी।"[3] उसकी बात सुनकर नमिता चिंताग्रस्त हो गई। फिर वह बैठकर अखबार पढ़ने लगी। उसी समय पारूल ने आकर उसे देखते ही कहा– "बडी गंभीरता से अखबार पढ़ रही हो मम्मी! इतनी सीरियस क्यों हो? लगता है, आंटी ने फिर मेरे लिए कुछ दिया।"[4] उसकी माँ ने पारूल के कथनों का कोई सीधा–साधा जवाब नहीं दिया। उसके केवल यही कहा कि मुझे माइग्रेनियन का अटैक हो रहा है। मेरा सिर भारी लग रहा है। इस कारण चुप हूँ। उनकी बात सुनकर पारूल ने कहा–"तुम्हारा सिर दर्द तो मैं हूँ मम्मी! मुझे पता है कि तुमसे ज्यादा मेरी सारी सो कोल्ड आंटियों को मेरे भविष्य की चिंता सताती है और तुम उसे जानते ही दुखी हो जाती हो।"[5] नमिता के घर में पारूल की दो तस्वीर टंगी है एक उसके बचपन का है दूसरे में वह ड्रेस प्रतियोगिता में हँसते हुए पुरस्कार ले रही है। नमिता जब उन दोनों तस्वीरों को देखती है तो कई ताह से सोंचने लागती है– "यों तो नमिता जानती है कि पारूल बहुत सुंदर है। ईश्वर ने उसे लंबा कद.... गोरा रंग... बड़े केश ही नहीं... साथ में उभरे होठ और आकर्षक ठोड़ी भी दी है। दिमाग बिलकुल अपने पिता जैसा तेज–तर्रार है। जितनी शीघ्रता से वह किसी बात की तह तक पहुँच सकती है, उतनी ही जल्दी वह छोटी–सी बात पर नाराज भी हो जाती है। बहुत अधिक भावुक और सेन्सेटिव अपनी इस लड़की को 'तो...' के प्रश्न के सा हिचकोले खाते देखते हुए नमिता को बहुत मानसिक यातना भोगनी पड़ती है। उसे कुछ समझ नहीं आता की जो गुजर चुका है, वह कैसे और क्यों सही है। यह समाज क्यों नहीं समझ पाता? यदि कच्ची उम्र में नमिता ब्याही गयी थी, तब भी तो उसका दोष न था। बस, सोलह वर्ष ही में उसे वे माँ बनने का सुख–सौभाग्य प्रदान कर गए थे।"[6] पारूल देखती है कि मेरी माँ विवाह को लेकर हमेशा चिंतित बनी रहती है। उसने अपने विवाह के संबंध में अपनी माँ से कहा–"देखो मम्मी, यदि मेरी शादी की बात तुम्हारे दिमाग में आ गई है तो मेरी पसंद का ख्याल रख ही लेना, मुझे सिलियन लाइन ही अच्छी लगती है, तुम्हारी तरह सिक्योर्ड लाइफ जीने का हौसला हमें नहीं है। दूसरे, मुझे किसी रूढिवादी घर में मत फेंक देना क्योंकि मैं तुम्हारे खिलाफ कुछ भी नहीं सुन सकूँगी।"[7] पारूल के विवाह के लिए कई प्रस्ताव आया। उसकी माँ ने नापसंद के कारण कई विवाह खारिज कर दिए। जब नमिता किसी को पसंद करती थी उसका घर परिवार अच्छा लगता था तो उन परिवारों ने विवाह करने से इनकार कर दिया। इन सब स्थितियों को देखकर पारूल ने अपनी माँ से पूछा– मेरे विवाह को लेकर यह सब क्या हो रहा है। इसपर नमिता ने कहा–"तुममें कोई बुराई नही हैं–यही एक बुराई है। साधारण – सी लड़की होती तो तुम्हारी साधारण–सी सहेलियों जैसे साधारण घरों में ब्याह देती और तुम साधारण न रहे।[8] 'अभिशप्त' कहानी की महिला पात्र मुन्नी ने यह देख लिया था मेरी बड़ी बहन सुरेखा के परिवार वालों ने उसका गला घोंट दिया था। उसकी छोटी बहन लेखा जो डॉक्टर है। वह भी अपने पति की शिकायत लेकर कई बार आ चुकी है। मुन्नी ने दोनों के जीवन को देखा है। इस कारण इसे विवाह और पुरूष से घृणा हो गई है। जब इसका विवाह कहीं तै किया जाता वह विरोध करने लगती। उसने एक दिन अपनी माँ से कहा– "मुझे किसी इंजीनियर या कलेक्टर से शादी नहीं करना, दहेज ले या न

ले मैं इज्जत व आराम के साथ कुँवारी रह सकती हूँ।"[9] उसकी बात सुनकर उसकी माँ ने कहा – "बड़ा कमाल कर रही है। उम्र क्या बिना मर्द के रहना होता है? शादी के बाद सभी पति नासूर नहीं होते।"[10] मुन्नी के विरोध के बावजूद उसका विवाह तै किया जाने लगा। इस पर वह अपने बड़ी दीदी से कहने लगी – "और आदमी के साथ कौन–सा बड़ा कमाल होता है माँ? मैं अपनी जिंदगी स्वयं ही बना लूँगी, तुम्हें बहुत रूपया भारी पड़ रहा है तो मेरे नाम जमा कर दो।"[11] वह रोष से फुफकारी। 'नहीं माँ, मुझे न तो हत्या करवानी है और न रूपये कमाने की मशीन बनना है।' तभी माँ ने सफेद पड़ आयी लेखा को दरवाजे पर देखा। उन्होंने हड़बड़ा कर लेखा से कहा, अब तू ही इसे समझा। हाथ आया इतना अच्छा छोरा मैं खोना नहीं चाहती। मुन्नी दौड़कर लेखा के सीने से धँस गयी 'बड़ी दीदी, अब तुम्हीं कहो क्या शादी करना इतना आवश्यक है कि अपनी जिंदगी अपनी इच्छा से न जिये।' लेखा ने अपना काँपता हुआ हाथ छोटी बहन के सिर पर रख उसे थपथपाया व अपनी माँ को भी रोष भरी आँखों से ताका.... लेकिन उसने कोई उतर नहीं दिया।

उतर देना क्या अब इतना सरल था जो वह सहजता से कह देती, 'विवाह करने में तो बुराई नहीं' बुराई तो उस पुरूष के मानवीय स्वार्थ में है जो उसकी आड़ में उसे प्रेत–सा अभीशप्त बन रहा है।"

संदर्भ–सूची :

1. कसौटी भाग–1– टीन के घेरे – कृष्णा अग्निहोत्री – अमन प्रकाशन, कानपुर – पृष्ठ सं0–28
2. कसौटी भाग–2– पारस – कृष्णा अग्निहोत्री – अमन प्रकाशन , कानपुर – पृष्ठ सं0–09
3. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
4. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
5. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
6. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
7. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
8. कसौटी भाग–2– जिन्दा आदमी–मंगली–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर–पृ0 111
9. कसौटी भाग–2– जै सियाराम–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर– पृष्ठ सं0–374
10. कसौटी भाग–2– जै सियाराम–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर– पृष्ठ सं0–374
11. कसौटी भाग–2– जै सियाराम–कृष्णा अग्निहोत्री–अमन प्रकाशन, कानपुर– पृष्ठ सं0–374

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

ऐतिहासिक स्रोत मुन्तखाब–उत्–तवारीखः एक विहंगम दृष्टि

डा0 मनोज सिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर–इतिहास
काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ज्ञानपुर भदोही

मुन्तखाब–उत्–तवारीख के रचनाकार अब्दुल कादिर बदायूँनी का जन्म बदायूँ के मुल्ला अब्दुल कादिर इब्न मुलुकशाह के यहाँ 1541 ई0 में हुआ था। वह अल–बदायूँनी तथा बदायूँनी अथवा काव्य में कादिरी (तखल्लुस) के नाम से लोकप्रिय हुआ। वह फारसी अरबी और संस्कृत का बहुत बड़ा विद्वान था तथा इस्लामी ब्रम्हविज्ञान खगोलशास्त्र तथा इतिहास का अच्छा जानकार और जन्मजात कवि तथा गायक भी था, इसके साथ ही उसका कंठ अत्यन्त मधुर था। बदायूँनी ने सम्भल के शेख के बेचू के अनुयायी के रूप में धार्मिक शिक्षा प्राप्त की तथा 40 वर्षों से भी अधिक समय तक शेख मुबारक के साथ रहा। उसकी शेख शेख मुबारक के विद्वान पुत्रों अबुल फजल और फैजी से काफी घनिष्ठता थी जो पहले उनके मित्र के रूप में बाद में समय के साथ आलोचक, प्रतिद्वन्दी तथा शत्रु में तब्दील हो गया। बदायूँनी और अबुल फजल संभवतः एक साथ ही बादशाह अकबर के सम्पर्क में आये और उसका संरक्षकत्व प्राप्त किया। बदायूँनी को बुधवार के दिनों के लिए शाही इमाम नियुक्त किया गया और अकबर द्वारा उसे अक्सर अरबी और संस्कृत से फारसी में अनुवाद करने का कार्य–भार सौंपा जाता था। बादशाह के निर्देश पाने के पश्चात् बदायूँनी ने सर्वप्रथम रामायण का फारसी पद्य में अनुवाद करने का कार्य अपने हाथों में लिया और 4 वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् यह कार्य पूरा हो सका। इसके लिए बादशाह द्वारा उसे प्रचुर मात्रा में पुरस्कार भी दिया गया। इसके बाद बदायूँनी को महाभारत का फारसी अनुवाद करने का बादशाह द्वारा निर्देश मिला किन्तु उसने यह कार्य अधूरा ही छोड़ दिया। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसके दरबारी साथी उसके साथ ईर्ष्या करते हैं तथा इससे उसकी योग्यता की पूरी कद्र नहीं होती थी और न ही उसको उसकी योग्यता अनुरूप प्रतिष्ठा ही प्राप्त हो सकी। बदायूँनी के इस असंतोष का प्रभाव यह हुआ कि उसकी भाषा में कटुता आ गयी। इसी बीच अबुल फजल एवं फैजी का प्रभाव दरबार में बढ़ा जिसने बदायूँनी को ईर्ष्यालु बना दिया और वह अबुल फजल की आलोचना निर्लज्ज, चापलूस, षड़यन्त्रकारी और बादशाह की हाँ में हाँ मिलाने वाला व्यक्ति कहकर करने लगा। कट्टर सुन्नी होने के कारण वह अकबर के धार्मिक दृष्टिकोण तथा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित उदार राजनीति को पसन्द नहीं करता था यही कारण रहा कि उसने बादशाह का शाही आदर खो दिया तथा दरबार में उपस्थित होना भी बन्द कर दिया। बाद में उसके राजनीतिक प्रतिद्वन्दियों द्वारा उसे भूमि अनुदान से भी वंचित करा दिया गया और सन 1596 ई0 में इस भग्न हृदयी व्यक्ति की मृत्यु हो गयी जबकि तबकात–ए–शाहजहाँनी में इनकी मृत्यु की तिथि 1024 हिजरी या 1615 दी गयी है।

बदायूँनी की मुन्तखाब–उत्–तवारीख एक ऐसी पुस्तक है जो गजनवियों के समय से लेकर अकबर के शासन के 14 वें वर्ष तक के भारत में मुस्लिम शासन सम्बन्धी विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करती

है। इसकी मूल हस्तलिपि दो भागों में विभाजित थी। इसका पहला अर्ध–भाग सुबुक्तगीन से हुमायुँ के मृत्यु तक के मुस्लिम भारत से सम्बन्धित है। दूसरा भाग अकबर के शासन के चालीस वर्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। द्वितीय भाग में ही कवियों सन्तों तथा अकबर के दरबार के विद्वानों की जीवनियों से सम्बन्धित तजकिराह भी दी गयी है। जो अकबर के काल एवं दरबार में प्रतिष्ठित रहे थे। इस तजकिराह जिसमें 38 शेखों (धार्मिक नेताओं) 79 अध्येताओं, 15 दार्शनिकों तथा चिकित्सकों एवं 167 कवियों की जीवनियाँ दी गई हैं। इन सभी को बदायूँनी के ऐतिहासिक पुस्तक के द्वितीय भाग से ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के सम्पादकों तथा अनुवादकों द्वारा प्रथक कर दिया गया था। इस प्रकार से यह पुस्तक अब तीन खण्डों में विभाजित हो गयी है।

बदायूँनी न तो राजनीतिक इतिहासकार था और न ही उसने राजनीतिक इतिहास में कोई विशेष रूचि दिखाई। उसकी पुस्तक को इतिहास की अपेक्षाकृत संस्मरण कहना अधिक समीचीन होगा। यह पुस्तक अकबर के चहेतों और उसके सुधारों पर सारगर्भित तीखी आलोचना प्रस्तुत करती है जो कट्टरता, अश्रुतरनता या पूर्णतया दुराग्रह से उत्पन्न हुए थे। फिर भी यह पुस्तक उस समय के ऐतिहासिक साहित्य की सम्पत्ति है जो कि अबुल फजल के अकबरनामा से किसी भी प्रकार कम उपयोगी नहीं है। बदायूँनी की अपने विषय तक पहुँच अत्यधिक मौलिक है वह यहाँ तक कि पुराने और जाने माने तथ्यों की भी उच्च बौद्धिक और तरो ताजे व्यंजनों में विस्तृत पुर्नव्याख्या करता है। स्वच्छन्द लेखक बदायूँनी कोई लबादा नहीं पहनता है और न ही किसी का एहसान लेता है। वह वही लिखता है जो उसे लिखना अच्छा लगता है। उसने अकबर के लिए सामान्य तौर पर निन्दा तथा अवज्ञापूर्ण रवैया अख्तियार किया जबकि उसकी पुस्तक अकबर महान की उपलब्धियाँ तथा चरित्र के बारे में अबुल फजल की अलंकारिक प्रवाह से बेहतर प्रभाव डालती है। वस्तुतः मुन्तखाब–उत–तवारीख ही अकबरकालीन ऐसा ग्रन्थ है जो अकबर के लिए नहीं लिखा गया है। उसने अपनी विद्वता के चलते अकबरकालीन साहित्यिक गतिविधियों में भाग लिया था और इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई थी किन्तु समकालीन परिस्थितियों ने उसके व्यक्तित्व को विभक्त कर दिया था। वह अकबर की धार्मिक विचारधारा के आधार पर निन्दा करता है किन्तु उसके राजनीतिक सुधारों एवं प्रयासों की तो प्रशंसा ही करता है जहाँ तक अकबर के राजनीतिक व्यक्तित्व का प्रश्न है वह उसकी प्रशंसा करता है लेकिन ज्यों ही धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करता है, रूढ़िवादी बदायूँनी के लिए सहिष्णुता से परे हो जाता है।

यद्यपि बदायूँनी यह स्वीकार करता है कि उसने अपने ग्रन्थ की मूल जानकारियाँ मुख्यतः 'तारीख–ए–मुबारकशाही एवं 'तबकात–ए–अकबरी' से प्राप्त की थी और अपने एक अन्य ग्रन्थ 'नजातुर रशीद' में वह इतिहास को अपने मित्र निजामुद्दीन अहमद कृत 'तबकात–ए–अकबरी' का संक्षिप्त रूप बताता है किन्तु उसकी कृति से ऐसा प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इस कृति में मूल सामाग्री भी है जो किसी अन्य समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं है। उसका विवरण तबकाते अकबरी से भी कहीं अधिक विस्तृत है तथा जहाँ तक अफगान इतिहास का प्रश्न है उसकी भी लेखक को काफी घनिष्ठ एवं गहन जानकारी थी। अकबर कालीन इतिहासकारों में अब्दुल कादिर बदायूँनी ही एक मात्र इतिहासकार हैं जो 1591 में अकबर की अस्वस्थता की घटनाओं का वर्णन करता है जिसमें सलीम द्वारा षडयन्त्र किये जाने का वर्णन है तथा सलीम दूसरी ओर शहजादे मुराद की गतिविधियों पर भी कड़ी नजर रख रहा था यह सूचना भी हमें मुन्तखाब–उत्–तवारीख से ही प्राप्त होती है। अतः हम कह सकते हैं कि लेखक के पास सूचनाओं के अपने स्वतंत्र स्रोत थे जिनसे उसे महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुई होंगी।

'मुन्तख' को बदायूँनी ने तबकात्–ए–अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद की मृत्यु के बाद 1591 में लिखना शुरू किया और फरवरी 1596 में अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही विराम दिया था। मुन्तखाब–उत्–तवरीख को बदायूँनी ने एक रहस्य की तरह छुपाये रखा जिसका मुख्य कारण यह था

कि अकबर की मुखर भर्त्सना उसे परेशानी में डाल सकती थी। जब जहाँगीर के काल में यह ग्रन्थ अन्ततः प्रकाशित हो गया तब बादशाह ने उसकी समस्त प्रतियों को खोज कर नष्ट करने का आदेश दे दिया किन्तु इस ग्रन्थ का सौभाग्य था कि इसकी प्रति सुरक्षित बच गई।

इस ग्रन्थ का मूल्य एवं महत्व इस कारण वश और भी अधिक हो जाता है कि अबुल फजल की कृति की चाटुकारिता का संशोधन उसके द्वारा होता है वस्तुतः बदायूँनी की यह कृति अबुलफजल के कार्य की पूरक व अनुबद्ध है क्योंकि यह अकबर के आलोचकों के दृष्टिकोंण या मत को अभिव्यक्त करती है जिसे अबुल फजल ने पूर्णतः नकार दिया था और अनदेखा कर दिया था। किन्तु इस कृति का महत्व इसमें अर्न्तनिहित ईर्ष्या एवं प्रतिशोध की भावना के चलते कम हो जाता है। अपनी इस कमी एवं अन्य त्रुटियों के बावजूद भी भारतीय इतिहास लेखन में बदायूँनी का अपना स्थान सुरक्षित ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण भी है क्योंकि उसने समकालीन इतिहास की पूर्व परिभाषित एवं प्रचलित सीमाओं में विकास करके इसमें साहित्यिक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों को सम्मिलित किया है। अतः उसके रूढ़िवादी विचारों के बावजूद भी मध्यकालीन भारत के धार्मिक एवं बौद्धिक इतिहास के लिए यह कृति अमूल्य है। उसने अपने वर्णन को दरबार तक ही सीमित न रखते हुए इसमें खानकाहों मदरसों आदि के विवरणों को सम्बद्ध करके एक पूर्ण जीवन दष्टि से समृद्ध करने का सफल प्रयास किया है और इतिहास की वास्तविक परिभाषा के अनुकूल ही उसका इतिहास हो जाता है।

प्रो0 'निजामी' के अनुसार "अकबर कालीन समस्त इतिहासकारों में मात्र बदायूँनी ही एक ऐसा इतिहासकार है जिसकी अपनी इतिहास दृष्टि है"। इस प्रकार से निसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि मुन्तखाब–उत्–तवारीख एक उच्च कोटि का मध्यकालीन ऐतिहासिक स्रोत है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. ऑन हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया के0 ए0 निजामी, नई दिल्ली, 1982
2. हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, बेनी प्रसाद, भारतीय कला प्रकाशन (01 जनवरी 2013)
3. सम हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इंडिया, बी0 एन0 लूनिया, प्रकाशक–लक्ष्मी नारायन अग्रवाल (01 जनवरी 2013)
4. दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूँ, ईश्वरी प्रसाद इलाहाबाद
5. भारत का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ इंडिया सं0 ईलियट एण्ड डाउसन का हिन्दी अनुवाद), मथुरा लाल शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0 आगरा
6. मध्यकालीन इतिहास के स्रोत, डॉ0 हेरम्ब चतुर्वेदी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 2003 ई0
7. मुन्तखाब–उत्–तवारीख, अब्दुल कादिर बदायूँनी, अनुवाद–जार्ज एस0 ए0 रैंकिंग, अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0, जनवरी 1990 ई0
8. मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास (खण्ड–2: 1526–1707), जे0 एल0 मेहता, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली
9. भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भाग–2, डॉ0 हुकुम चन्द जैन एवं डॉ0 कृष्ण गोपाल शर्मा
10. मध्यकालीन भारत का इतिहास, भाग–6 (1656–1761) सं0 शिवकुमार गुप्त, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1999 ई0
11. मध्यकालीन भारत, भाग–2 (1540–1761) सं0 हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

मंजरी का चरित्र –चित्रण

डॉ0 कालिका प्रताप यादव
ग्राम–जवही दीयर, दुसैया डेरा
पोस्ट–बलुआ, थाना–ब्रह्मपुर,
जिला–बक्सर (बिहार)

लोक महाकाव्य' लोरिकायन' जिसकी अमर गाथा लोरिकी जो भारतवर्ष के विशाल भू–भागों में गायी तथा सुनी जाती है। इस महाकाव्य के लगभग सभी पात्र भारतीय संस्कृति में अद्वितीय हैं। ये सभी पात्र अपने अन्दर भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के अनन्त गुणों को समाहित किये हुये हैं। जिसके द्वारा हम भारतीय प्रेरित होते रहते हैं। इन्हीं में एक प्रमुख पात्र मंजरी है जो भारतीय नारी के आदर्श का प्रतिनिधित्व करती है।

अगोरी एक राज्य था जिसका स्वामी मोलागत था। उसी के राज्य में एक बहुत ही सम्पन्न अहीर परिवार रहता है जिसका नाम महरा है। वह राजा के कूटनीतिक चालों का शिकार हो जाता है तथा कालान्तर में उसका धन वैभव समाप्त हो जाता है। उसी के घर में मंजरी पैदा होती है। मंजरी के पैदा होने के समय महरा के आँगन में सोने चाँदी की बरसात होती है। मंजरी बहुत ही भाग्यशाली कन्या है जिसके जन्म लेने से पुनः महरा का घर आँगन सोने चाँदी से भर जाता है तथा वह पुनः सम्पन्नता प्राप्त करता है–

"जनमल बिटियवा राजा महरे के
आरे जेकर हवै रे मंजरिया नांव।
जब मंजरी कै जनम बलको भइलै
सवा घरी सोना चाँदी बरसत है अगोरिया को रे बजार "।[1]

इतना ही नहीं मंजरी का नाल काटने के लिये जो नोना चमाईन आती है उसे बड़ी प्रसन्न हाकर बहुत अन्न–धन दिया गया, साथ में एक सोने का हसुआ भी दिया जाता है–

"नरवा मो कटलस जब मंजरी कै
आरे बरही छठिया दे लै रे बिताय
गवहर पिआरिया जौ महरी न देला
सोनवै के हसुआ दैं ले रे बनवाय ।"[2]

जीवन में दुःख तथा सुख दोंनो का आना जाना लगा रहता है। बहुत समय बाद मंजरी के जीवन में भी दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है जो मंजरी महलों में रहती आयी थी और जिसके पास अपार सोने चाँदी की दौलत थी जिसका पति अत्यन्त वीर है उसे भी समय के चक्र में सब झेलना पड़ता है। सवँरू की इधर मृत्यु हो जाती है। कोल्ह सारी धन सम्पति लूट ले जाते हैं। लोरिक चन्दा के साथ

हल्दी चले जाते हैं तथा वहाँ राज्य करते हैं। उन्हें कुछ खबर नही रहती है कि इतना कुछ बोहा में तथा हमारे गाँव में घटित हो गया है। मेरे परिवार पर इतनी भारी विपत्ति आ पड़ी है।

मंजरी अत्यंत ही सहनशील स्त्री है। उसकी विपदा को देखकर जग्गू अधीर हो जाता है। मंजरी पुर्णिमा के दिन अन्य स्त्रियों के साथ बोहा में सवँरू द्वारा बनाये गये पोखरे पर जाती है। जहाँ सात घाट बने होते हैं। अपने पुर्व समय तथा शोहरत की याद उसे मजबूर कर देती है वह अत्यन्त करूण स्वर में रोने लगती है उसके साड़ी में कई पैबन्द लगे होते हैं। रूदन सुनकर जग्गू मंजरी के पास पहुँचता है, तथा उससे सारा हाल सुनता है–

आरे आपन कवन कवन ए बीरना विपतिया हम कहि रे घलली

आ विपत कहैं रे मोरि मइया जोगनवां कै नाही रे बां

आरे हमरे भसुर ए मो बीरना अ सवँरू गइयन में मारल रे गइलै

आर समिया जाके टीकल हउवै ए बीरना हरदियाँ की रे बाज

आरे तवन बीरना हम फटही लुगरिया गउरा में बलको पहिरत रे बाड़ी

आरे बीरना दुसमन भयल रे मोरि मइया कुटुमवा मोर पालिवार।[3]

गायक के आगे बढ़ने पर मंजरी के चरित्र में और भी चार चाँद लग जाते हैं। मजरी चरित्रवान स्त्री है। गाँव की सभी स्त्रियाँ बोहा में दूध तथा दही बेचने के लिए जाती हैं। नदी पार कराने हेतू वहाँ मल्लाह जिसका नाम झिमल है एक स्त्री माँगता है। सभी स्त्रियाँ मिलकर आ रही मंजरी को दिखाती है जिसे झिमल मल्लाह पकड़ने के लिए आगे बढ़ता है । मंजरी पीछे हटती है। मंजरी अंत में अपनी टोकरी नीचे रख देती है तथा झिमल पर वार कर देती है तथा डांटते हुये कहती है कि तुमने अच्छा नही किया।

मंजरी चरित्रवान के साथ–साथ बलवान भी है वह अपने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए ऐसा प्रहार करती है की झिमल क पसली टूट जाती है तथा वह जमीन पर गिर जाता है–

आरे जब मंजरी क लुलु वया देखि रे लेहल

आरे तब त दबरि के मोर झीमला कलइया मोर धरे रे चललै

आरे मंजरी दउरी ले ले मइया कपरवा से हटै रे लाग

आरे मंजरी दउरी के दउरिया धरती पर धइ रे देल्या

आरे झीमल के घूमि के बहुबां गरदने पर मारि रे देलै

आरे झीमलगिर गइलै रे मइया धरतिया पर भहरै रं

आरे बलको हनि के एड़वा पंजरिया में मरले रे हउवे

अरे बालको हनि के एड़वा पंजरिया में मरले रे हउवे

आरे झीमला के टूटि गइलै ए यारों कोई पहलू है तो।[4]

मंजरी के जीवन वृत में सबसे मजबूत यदि कोई पहलू है तो उसका सत (सत्य) वह सतवती है। वह अपने सत के बल से विपति के सारे बंधनों को काटती है। वह अपने सत से देवहा सुरहा

(करहरनाका) नदी को सुखा देती है तथा बोहा में जाकर अपने दही को बेचती है। घर आने पर उसे अपनी सास का भी कोप मजाक बनना पड़ता है।

जब ऐसी धृष्टता झीमल करता है तो उसे मंजरी भारती है तथा उसके बाद अपने सत का परिचय देती है तथा नदी से रास्ता माँगती है। मंजरी के सत के प्रभाव से नदी का पानी सूख जाता है।

आरे अचरा खोलि–खोलि मंजरी करवा पर हउवै मनउलै

आरे हमरे सतवा हो मइया सरिरिया में बचले रे होइ है

आरे मंजरी घीचि के मै सतवा देवहा में मारि रे दे लैं

आरे देवहा क पनिया रे मइया तो गयल बाइ ना रे झुराये।[5]

जब मंजरी दही बेचने के लिए लोरिक के मंडप में चली जाती है। इधर जल्दी से अन्य स्त्रिया आकर मॉखोयलन से कहती है कि मंजरी बोहा में पकड़ ली गयी है मंडप में है उसका सत नही बचेगा–

बुढ खोइलन से जाके कहे

हम हन त बहरे से दही देहली

मंजरी तम्मू में धइ गइली

आज नाही बचल रे घरतवा तोहार ।[6]

घर आने पर माँ खुयलन उसे मुसल से पीटने लगती तथा उसके सत की परीक्षा के लिए गर्म तेल का कड़ाहा तैयार किया जाता है। जिसमें मंजरी को प्रवेष करना होता है। मंजरी वास्तव में आदर्ष है वह सतवती है उसके उस गर्म तेल में पैर रखते ही सारा तेल पुनः ठण्डा हो जाता है।

आरे बुढ़िया ओखरी में मूसर उठा के

आरे मारै लागल मूसरवर क मार

धरम लुटवाय देलू गढ़ गउरा के।[7]

जब मंजरी सयानी हो जाती है तो उसके पिता उसके लिए योग्य वर की तलाष में इधर –उधर कई जगहों पर जाते है लेकिन मंजरी केक लिए कोई योग्य वर नही मिलता है। वह अंत में घर आते है तथा कोधत होकर मंजरी के लिए कष्टदायी बाते करने लगते है। मंजरी पिता से कोधित होने का कारण पूछती है उसके बाद वह स्वंय यह बताती है कि मेरा योग्य वर गढ़ गउरा में है जिसे मै लोक लज्जा शर्म वष नही बता रही थी । मेरे ससुर का नाम टिकईट है। भवसुर मलसवर है। पति का नाम नही बताती है। बोहा में उसके 360 चरवाहे गायों को चंराते है वहाँ जायेंगे तो शादी तय हो जायेगी। वे आयेंगे तथा दुश्मन मोलागत को मार डालेंगे।

"तब मोर मंजरी बोले

कहे एही कोनवा ए बाबिल मोर गउवा न गढ़ गउरा

आरे बरवा जोगवा बइठल बाड़ै ए बाबिल गउरवा बलको गुजरे रं

आरे हइहै आजु भसुरे क न उबा मलसावर बलको परल रे हउवै

आरे टिकई बाबा जी ससुरै

जो लगति बाड़ै ना रे हमार

आरे एहरवइं त समिया का न उवां हम तनिकौ न जानति रे बाड़ी

आरे मुदई चढ़ि के चलि आई ए बबिला अगोरियौ की बलको बजं

आरे राजा मोलागत के अगोरी में मारि नइहै"।[8]

मंजरी लोरिक की शादी के बाद डोला लेकर लोरिक जिरहुल मैदान में मंजरी का डोला लेकर अड़ जाता है। जहाँ भयंकर कई वीरों के साथ युद्ध होता हे। सबसे पहले रंपा भाट आता है उसके बाद शवरानन्द हाथी तथा करनी हथिनी आते है। इन सभी को लोरिक के अजेय पौरूष के आगे मात खानी पड़ती है। लेकिन जब जिरहूल मैदान पर मोलागत का भांजा निर्मल आता है तो उसे पहचानकर मंजरी विलाप करने लगती है अपने को धिक्कारती है लोरिक को वहाँ से भाग जाने के लिए कहती है तथा बताती है कि यह निर्मल अजेय अमर है ये तुम्हारी जान नही छोड़ेगा। मंजरी बिल्कुल घबरा जाती है वह अपनी छाती–पिट –पिट कर रोती है तथा करती है व्यर्थ ही मेरे कारण तुम्हारी जान चली जायेगी।

चीन्ह गइल बलको देखरे निरम्मर

आरे तब मारि मारि धमकवा आ छातिया में रूवै रे लागल

आरे सामी अब नही बची रे मोर मइया

औ जिनिगियाँ ना रे तोहार

आरे एहर मो छोड़ि के तू डंडिया आ गउरवा बाल्को भागि रे जब्या

आरे अम्मर आइ गयल बलमुआ अब खेतवा मोर मयरेदा न

धरम लुटवाय देलू गढ़ गउरा के

आरे गइल ई जातिया हमार काहे इज्जत लुटवलू काहे धरम खोववलू

बुढ़िया टप दै हुकुम लगावे

करहा चढ़वाय के तेल बोझवाए , ओरे चइला नीचे लगाय

आरे मंजरी सतवा रे मारि मइया बलको न हउवे मनवलें

आरे एहर ठंडा रे मोर मइया तेलवा होई रे गइले।[9]

मंजरी एक धार्मिक प्रवृति की दयालू स्त्री है जब मोलागत का संहार हो जाता है तब वह सूर्यदेव के पुजा की बात कहती है। लोरिक गउरा संदेश भेजता है तथा को बुला कर विधि विधान से पूजा अनुष्ठान किया जाता है।

मंजरी से जब झिमल हाथ जोड़कर दया की भीख माँगता है तथा कहता है कि मेरे बाल बच्चे भुखे मर जायेगे तो मंजरी उसे क्षमा कर देती है तथा पुनः देवहा में उसका सत सूमिरते ही पानी भर जाता है।

लोरिक की काशी करवट लेने के बाद वह अपने राज्य तथा बच्चों की बखुबी देखभाल करती है। इस प्रकार हम देखते है कि मंजरी के अन्दर भारतीय आदर्श स्त्री के सभी गुण विद्यमान है। जिसमें वह

अपने सत का परिचय देकर माता सीता की अग्नि परीक्षा की याद को तरोताजा करता है। मंजरी जैसी स्त्रियां वास्तव में हमारे भारतीय सम्यता तथा संस्कृति के प्राण है।

संदर्भ–सूची

1. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
2. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
3. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
4. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
5. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
6. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
7. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
8. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167
9. लोक महाकाव्य लोरिकायन– सं० डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय –साहित्य भवन, प्रा0 ल0, इलाहाबाद–1985– पृष्ठ सं0–167

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारतीय समाज और संस्कृति में स्त्री

डॉ0 वन्दना कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग,
बी.आर.एम. कॉलेज, मुंगेर,
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार

भारतीय संस्कृति में अर्धनारीश्वर का विचार स्त्री और पुरुष की समानता, सहयोग, नर और नारी दोनों मिलकर ही पूर्णता संभव है, की अवधारणा को अभिव्यक्त करता है। यह अवधारणा केवल अमूर्त्त रूप में ही रहा, मूर्त में भारतीय समाज में वैदिक युग को छोड़कर हमेशा स्त्रियों को दोयम दर्जे का ही स्थान दिया गया है। मेरा उद्देश्य सामाजिक स्तर पर उन बिन्दुओं को रेखांकित करना है, जिससे स्त्रियाँ सदियों से प्रताड़ित होती रही हैं। इस संदर्भ में भारतीय सांस्कृतिक अवधारणा, सामाजिक मान्यताएँ, धार्मिक कर्मकाण्ड आदि स्त्री–पुरुष की असमानता के लिए कहां तक जिम्मेदार रही हैं, उन्हें भी उद्घाटित करना मेरे शोध पत्र का उद्देश्य है। यह प्रकृतिजन्य है जिसमें स्त्री–पुरुष समान रूप से जन्म लेते हैं और उनकी मृत्यु होती है। सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा में लिंग–भेद जो पितृसत्ता के केंद्र में रहा उसके परिणामस्वरूप असमानता पनपी। इसे भारतीय दर्शन में आए विचारों के साथ–साथ आधुनिक विचारों में आए परिवर्तन को भी रेखांकित किया जाएगा। यह विषय न केवल स्त्री–पुरुष के सह–सम्बन्धों को परिभाषित करता है, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर मानवीय सोच को किस तरह प्रभावित करता है उसे भी विमर्श के पटल पर लाना है।

प्रकृति में 'सृष्टि' में नर और नारी को अपनी–अपनी विशेषताएँ देकर इस खूबसूरत सृष्टि की रचना की तथा दोनों के सहयोग से सृष्टि निरन्तर विकास की ओर अग्रसर हो, ऐसी व्यवस्था की। अथर्ववेद में कहा गया है –

''अमोऽहमस्मि सात्वं सामाहमस्म्यृवत्वं धौरहं पृथिवी त्वम्।
तावहि सं भवाव प्रजाय जनयाव है।।7।।[1]

(अर्थात् पुरुष प्राण है और स्त्री रयी (शक्ति) है, पुरुष सामगान है और स्त्री मंत्र है। पुरुष सूर्य है और स्त्री पृथ्वी है। ये दोनों मिलकर इस संसार में रहें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें।)

कालांतर में पुरुषों ने अपनी विशेषताओं को श्रेष्ठ मान लिया तथा स्त्री की विशेषताओं को उनकी कमजोरी समझकर उस पर आधिपत्य स्थापित करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ा। यह घोर विडम्बना है कि पुरुषों के जन्म का कारण स्त्रियाँ हैं और स्त्रियों के बहुआयामी शोषण और उनके साथ होने वाले अत्याचारों का कारण पुरुष ही है। मानवीय इतिहास का सर्वेक्षण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि कभी भी स्त्रियों को समाज में पुरुषों के समान उच्च स्थान नहीं दिया गया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरुषों ने हर प्रकार की स्वतंत्रता का उपभोग किया किन्तु स्त्रियों को इससे वंचित किया। स्त्रियों को कभी गुलाम बनाया गया, कभी दासी का और कभी इन्हें अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा

दिखाने का साधन बनाया। इन्हें शारीरिक दृष्टि से अशक्त और निर्बल मानकर इन्हें आश्रिता मान लिया गया और इन्हें बौद्धिक दृष्टि से अविकसित मानकर जिम्मेदारियों से दूर रखा गया। धर्मों ने भी स्त्रियों की स्थिति को दयनीय बनाने में भरपूर योगदान दिया।

समाज के नियम, कानून, व्यवस्थाएँ आदि पुरुषों द्वारा बनाये गये हैं। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या स्त्रियों को अपने नियम, कानून आदि बनाने की क्षमता नहीं थी? इसका उत्तर यही हो सकता है कि स्त्रियाँ शारीरिक रूप से कोमल एवं मानसिक रूप से भावनात्मक होती है। इस गुण को पुरुषों ने उनकी कमजोरी समझकर स्त्रियों के सम्बन्ध में सारे निर्णय अपने हाथों में ले लिए तथा परिवार, विवाह, संस्कार व धर्म आदि की दुहाई देकर उसे ऐसी अदृश्य जंजीरों में जकड़ दिया गया जिसका उल्लंघन उनके लिए महापाप घोषित किया गया।

भारतीय संस्कृति में नारी के संबंध में एक प्रसिद्ध युक्ति है –

'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता।'

अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं, किन्तु यह वाक्य भी पुरुषवादी वर्चस्व की ओर ही इंगित करता है। भारतीय हिन्दू परम्परा में शक्ति की देवी दुर्गा, ज्ञान की देवी सरस्वती और धन की देवी लक्ष्मी को माना जाता है, तो फिर जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता ही क्यों रमते हैं? देवी क्यों नहीं, जो शक्ति, ज्ञान और धन की अधिष्ठाता है? वस्तुतः कल्पना में नारी को धन, ज्ञान और शक्ति का अधिष्ठाता बनाकर वास्तविक जीवन में इन तीनों चीजों से पूर्णतः वंचित किया गया है। भारतीय परम्परा में शक्ति का केंद्र पुरुष ही रहा है, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल पुरुषों को ही था और धन का सर्वस्व तो पुरुष के हाथों में ही रहा है। ज्ञान, शक्ति और धन से विहीन व्यक्ति एक दास की भांति ही होता है, नारी की यही स्थिति भारतीय प्राचीन परम्परा से लेकर आधुनिक स्थितियों तक पाते हैं।

देवता का अर्थ होता है, देनेवाला अर्थात् जो हमें कुछ–न–कुछ देता है। संभवतः इस दृष्टि से ही वैदिक ऋषियों ने नदी, पहाड़, वायु, आकश, सूर्य, चन्द्रमा आदि को देवता कहकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता की भावना व्यक्त किए हैं। ये सभी हमें कुछ–न–कुछ देते हैं, तभी हमारा अस्तित्व इस पृथ्वी पर कायम रहता है। यदि देवता का अर्थ वैसे महान् आत्मा से लगाया जाता है, जो स्वर्ग में निवास करते हैं, समस्त भौतिक सुख–सुविधाओं का आनन्द उठाते हैं और उसे बनाये रखने के लिए असुर से संग्राम करते हैं तथा सुन्दर–सुन्दर अप्सराओं को अपने राज–दरबार की शोभा बनाते हैं अतिथियों के स्वागत हेतु उन सुन्दर अप्सराओं को उनके समक्ष प्रस्तुत करते हैं, तो स्वभावतः ऐसे देवता वही विचरण करेंगे जहां स्त्रियाँ होंगी!

पुरुष प्रधान समाज में पुरुष अपने कामवासना पर नियंत्रण रखने के बजाय स्त्रियों को पर्दे में रखने एवं चहारदीवारी में कैद रखने को सरल एवं सुलभ समझा। धर्म के निर्माताओं ने पशुओं की भांति स्त्रियों को स्वतंत्र नहीं छोड़ने की सलाह दी है। मनु अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं –

''बाल्ये पितुर्वशे तिष्देत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्।।[2]

(अर्थात् स्त्री बचपन में पिता के, युवा में पति के और पति के मर जाने पर बुढ़ापे में पुत्र के वश में रहे 'उनकी आज्ञा तथा सम्मति के अनुसार कार्य करें, स्वतंत्र कभी न रहें।)

स्त्रियों के लिए पति सेवा ही उसका परम धर्म माना गया है। स्त्रियों के लिए यज्ञ, संस्कार, व्रत, उपवास आदि सभी कुछ पति सेवा ही है। मनु के अनुसार –

''नास्ति स्त्रीणां पृथायग्ज्ञो न व्रतो नाप्युपोषणम्।
पतिः शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।
पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तु नरकं चैव गच्छति।।[3]

(अर्थात्, स्त्रियों के लिए पृथक् (पति के बिना) यज्ञ नहीं है और (पति की आज्ञा के बिना) व्रत तथा उपवास नहीं है, पति की सेवा से ही स्त्री स्वर्गलोक में पूजित होती है।

जो स्त्री पति के जीवित रहने पर (उसकी अनुमति के बिना) व्रत या उपवास करती है, वह पति की आयु हरण करती है तथा स्वयं नरक को जाती है।)

सदियों से परंपरा में ढाल कर नारी के भीतर उक्त विचारों को इतना पुष्ट कर दिया गया है, आज भी भारतीय समाज की अधिकांश आबादी इन मान्यताओं एवं कुलसित विचारधाराओं से मुक्त नहीं हो पाया है चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष। भारतीय परंपरा के महान स्मृतिकारों ने, धर्मशास्त्रज्ञों ने एक स्त्री के लिए उसका पति ही परमेश्वर या देवता है, मानने को बाध्य किया, चाहे वह पति कितने ही अवगुणों से युक्त हो।

''अशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वी परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पति।।[4]

(अर्थात् सदाचार से हीन, परस्त्री में अनुरक्त और विधा आदि गुणों से हीन भी पति पतिव्रता स्त्रियों का देवता के समान पूज्य होता है।)

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।।
कार्य पत्न्या प्रतिदिनमिति कर्म चवैदिकम्।।[5]

(अर्थात् स्त्रियों का विवाह संस्कार ही वैदिक संस्कार पति–सेवा ही गुरुकुल निवास और गृहकार्य ही अग्निहोत्र कर्म कहा गया है, अतएव उनके लिए यज्ञोपवीत, गुरुकुल निवास और अग्निहोत्र कर्म करने की शास्त्रज्ञा नहीं है। अग्निहोत्र की सेवा, सांयकाल पति के कार्यों में सहयोग दान को प्रतिदिन करना चाहिए, यही उनका वैदिक कार्य है।)

भारतीय इतिहास में वैदिक युग को स्त्रियों के लिए स्वर्णिम युग माना जाता है। स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने की स्वतंत्रता थी। स्त्रियों द्वारा रची गई वेद की कई ऋचाएँ इसके प्रमाण हैं। विश्ववारा एक दार्शनिक और मन्त्रद्रष्टी स्त्री थी जिन्होंने ऋग्वेद के एक प्रार्थना मंत्र की रचना की थी।[6] इसी प्रकार ऋषि कक्षीवान की पुत्री घोषा ने भी ऋग्वेद के दो प्रार्थना–पदों की रचना की थी।[7] सम्पत्ति पर भी उनका समान अधिकार था। घर की स्वामिनी होने के बावजूद उनका कार्यक्षेत्र घर तक सीमित नहीं था। वे घर के बाहर भी निकलती थीं। क्षत्रिय स्त्रियों को युद्ध में सारथ्य करने का अधिकार प्राप्त था। शतपथ ब्राह्मणा में बताया गया है कि दैनंदिन प्रार्थनाओं और यज्ञादिक कर्मों को करने का अधिकार एक अविवाहित व्यक्ति को नहीं है।[8] यज्ञादिक कर्मों के समय मंत्रों का गायन स्त्री का धर्म है।[9] यहां प्रश्न उठता है कि क्या सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शूद्र) के स्त्रियों की स्थिति एक समान ही

थी? जब बहुसंख्यक वर्ग शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं था, समानता, स्वतंत्रता आदि का उनके लिए कोई प्रश्न ही नहीं था तो फिर उस वर्ग की स्त्रियों के लिए तो इन सभी की कल्पना भी निरर्थक है।

स्पष्टतः मुट्ठीभर स्त्रियों को कुछ अधिकार मिल जाने को हम संपूर्ण नारी जाति को वही अधिकार प्राप्त था, ऐसा नहीं कह सकते हैं। वैदिक युग के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में गिरावट ही होती गयी। उनके अधिकार छीनते चले गये। धीरे–धीरे पुरुष के अधिकार प्राप्ति की इच्छा बढ़ती चली गई और परिणामस्वरूप स्मृतिकाल, धर्मशास्त्र तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छिनते गये और इन्हें परतंत्र, निस्साह्य और निर्बल मान लिया गया।

धर्मशास्त्रकाल, मध्ययुगीन तथा कुछ हद तक ब्रिटिश काल तक स्त्रियों को परतंत्र, निस्सहाय एवं निर्बल माना जाता रहा। इन कालों में विधवा–विवाह प्रतिबंध, बाल–विवाह, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी–विवाह, नारी अशिक्षा, नारी परतंत्रता, सती प्रथा, की कुरूरता, यहां तक कि सती के लिए जबरन बाध्य किया जाना, आर्थिक अधिकारों से वंचित आदि अपने शिखर पर था। इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे एक निर्जीव पदार्थ के समान हो गई जो अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उफ भी नहीं कर सकती थी। स्त्रियों की यह स्थिति भारत समेत पूरी दुनिया में देखी जा सकती है।

भारत में परिवार का शास्त्रीय स्वरूप संयुक्त परिवार रहा है। नाभिक परिवार (Neucliar Family) भारतीय अवधारणा नहीं है। कर्वे का मत है कि यहां (भारत में) परिवार का अर्थ संयुक्त परिवार से ही है। हिन्दू धर्म में विवाह एवं परिवार को धर्म का अंग माना गया है। वैदिक काल से लेकर अब तक भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली रही है, चाहे इसके स्वरूप और संरचना में परिवर्तन आते रहे हों। संयुक्त परिवार के अनेकों दोषों में एक प्रमुख दोष यह रहा है कि इसमें स्त्रियों की दुर्दशा होती है तथा उनकी स्थिति बड़ी अजीबोगरीब होती है। नव–वधू का प्रथम प्रति–गृह प्रवेश एक लक्ष्मी के रूप में होता है। सास, ननद एवं अन्य स्त्रियाँ उनकी बलाएँ लेती हैं, स्वागत गान गाती हैं परन्तु यह एक दिखावा मात्र होता है। वस्तुतः बाद में चलकर उसकी स्थिति एक दासी के समान हो जाती है जिसका संपूर्ण जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने या उनकी देखभाल करने एवं अन्य सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत होता है। उसे मनोरंजन का साधन मात्र समझा जाता है। संयुक्त परिवार में रूढ़िवादी परम्पराओं व अनुपयोगी धार्मिक कर्मकाण्डों को अत्यधिक प्रश्रय दिया जाता है तथा इसके माध्यम से स्त्रियों को अपने वश में रखने का षड्यंत्र रचा गया है। संयुक्त परिवार के माध्यम से कई समाजव्यापी समस्याएँ जैसे बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, विधवा–विवाह पर रोक, पर्दा–प्रथा, जाति अन्तर्विवाह, जनसंख्या की समस्या, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव, स्त्रियों का शोषण आदि उत्पन्न हुई हैं।

21वीं सदी में भी भारत का अधिकांश समुदाय धार्मिक रूढ़िगत मान्यताओं से संचालित होता है। घर में बहु के रूप में नौकरानी लाने की भावना निहित रही है। शादी के समय लड़के की माँ को सगे–सम्बन्धियों के द्वारा यह कहते हुए सुन लिया जाता है कि अब आपको क्या चिन्ता, घर में बहु आ रही है, अब तो आप आराम से घर में बैठकर खायें। इस विचार के पीछे स्पष्टतः यही धारणा निहित है कि घर में बहु बनाम नौकरानी लायी जा रही है। विवाह से ही जुड़ी एक प्रथा 'कन्यादान' भी स्त्रियों के शोषण एवं उनके ऊपर होने वाले अत्याचार का कारण रहा है। हिन्दू संस्कृति में विवाह में वधू के पिता वर को कन्या का दान देते हैं, इसलिए यह रिवाज कन्यादान कहलाता है और दान की हुई चीज पुनः वापस नहीं ली जाती है। इसलिए यह कहावत प्रचलित है कि लड़की की डोली बाप के घर से और अर्थी पति के घर से निकलती है। यह धारणा भारतीय संस्कृति में नारी के प्रति हिंसा और शोषण का बहुत बड़ा कारण रहा है। एक बार पिता ने कन्या को दान कर दिया,उसके बाद वह वापस अपने बाप के घर नहीं जा सकती, चाहे पति और ससुराल पक्ष के लोग कितना ही अत्याचार उसके साथ क्यों न

करें। यद्यपि इस तरह की हिंसा को रोकने के लिए घरेलू हिंसा कानून लाया गया तथापि अनेकों कानूनों के बावजूद सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। आज भी पति के घर से ठुकराई गई स्त्री को समाज घृणा की दृष्टि से देखता है तथा इसके लिए स्त्री को ही जिम्मेवार मानता है।

सदियों से महिलाएँ भी धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़िगत मान्यताओं से पोषित होते–होते उनकी मानसिकता भी ऐसी हो गई है कि स्वयं को उन मान्यताओं से मुक्त होकर सोचना भी पाप समझती हैं। उन्हीं महिलाओं में से एकाध उन रूढ़िगत अंधविश्वासपूर्ण मान्यताओं का विरोध करती हैं तो उन्हें पुरुषों से पहले महिलाओं की ही आलोचना एवं घृणित दृष्टिकोण का शिकार होना पड़ता है।

हिन्दू धर्म में पति, बेटे आदि की लम्बी उम्र के लिए महिलाओं के व्रत रखने का प्रावधान है, किन्तु कहीं भी स्त्रियों की लम्बी उम्र हेतु पुरुषों को व्रत रखने का नियम नहीं है। शास्त्रों का यही उद्घोष है कि महिलाएँ जीती ही हैं, पुरुषों के लिए, उनका अपना कोई अस्तित्व, अलग पहचान आदि का कोई प्रश्न ही नहीं है। महिलायें कितना ही व्रत,उपवास,तीर्थाटन आदि कर लें, उसकी शुद्धि केवल पति के चरण जल से होती है। चाणक्य अपने नीतिसूत्र में लिखते हैं –

> ''न दानैः शुद्धयते नारी नोपवासशतैरपि।
> न तीर्थसेवया तद्वद भर्तुः पादोदकैर्यथा।''[10]

(अर्थात् स्त्री न तो दान से, न सैकड़ों उपवास–व्रतों से, न तीर्थाटन करने से उस प्रकार से शुद्ध हो पाती है, जैसे वह अपने पति के चरण –जल से शुद्ध होती है।)

अतः पति की चरण–सेवा ही स्त्री के कल्याण के लिए उत्तम है। उसका पति ही उसके लिए परमेश्वर है।

भारत ही नहीं विश्व के महान विद्वान आदि भी स्त्रियों के संबंध में बात करते समय अपने दृष्टिकोण को संकुचित कर लेते दिख पड़ते हैं। अरस्तू जैसे महान यूनानी दार्शनिक भी मानते हैं कि स्त्रियाँ कुछ निश्चित गुणों के अभाव के कारण स्त्रियाँ हैं।हमें यह मान लेना चाहिए कि स्त्री प्राकृतिक दोष से ग्रस्त हैं।[11] प्लेटो ने भी ईश्वर को दो बातों के लिए धन्यवाद दिया था – 1. उसे स्वतंत्र पैदा किया, 2. तथा उसे पुरुष के रूप में उत्पन्न किया। टॉलस्टॉय जैसे महान विचारक स्त्री की बात आते ही अपने महानतम विचारों को दरकिनार कर स्त्री के संबंध में निकृष्ट विचारों को प्रदर्शित करते हुये कहते हैं –

''मैं स्त्रियों के बारे में सत्य का उल्लेख तभी करूंगा, जब मेरा एक पैर कब्र में रहेगा। तभी मैं सत्य का उल्लेख करूंगा और अपनी कॉफिन में कूदकर ऊपर से इसे बन्द कर लूंगा और कहूंगा, ''अब जो भी मेरे साथ करना हो करो।''[12] हार्वर्ड विश्वविद्यालय के डॉ. ए. ए. रॉबैक यह मानते हैं कि पुरुषों में तार्किक ढंग से चिंतन करने की जन्मजात् प्रवृत्ति होती है, परन्तु आमतौर पर स्त्रियों में उसका अभाव ही पाया जाता है।[13] स्पष्ट है कि महिलाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण केवल भारत के ही विद्वानों द्वारा ही नहीं व्यक्त किये हैं, अपितु पश्चिम के बौद्धिक दृष्टिवाले कुछ विद्वान भी महिलाओं के संदर्भ में उसी मानसिकता के परिचायक हैं।

किसी भी क्षेत्र में समानता की बात या तुलना तभी हो सकती है जब दोनों का विकास समान स्तर पर हुआ हो। विश्व में कहीं भी महिलाओं को पुरुषों के समान स्वतंत्रता एवं आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि किसी भी क्षेत्र में समान अधिकार नहीं दिया गया था तो फिर उनकी किसी

भी क्षेत्र में पुरुषों से तुलना करना और पुरुषों को श्रेष्ठ सिद्ध कर देना बिल्कल तर्कहीन एवं अबौद्धिक ही कहा जायेगा।

लिंगभेद के प्रश्न को उठाने वाली सर्वप्रथम दार्शनिक चिंतक साइमन डी बुआ अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सेकेण्ड सेक्स' में लिखती हैं कि पुरुषों ने स्वयं को विशुद्ध चित्त 'Being-for-itself' (स्वयं में सत्) के रूप में परिभाषित किया है तथा स्त्रियों की स्थिति का अवमूल्यन करते हुए उन्हें 'अन्य' अर्थात् वस्तु के रूप में परिभाषित किया है। भारतीय दर्शन के सबसे प्राचीन दर्शन 'सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष इन दो स्वतंत्र तत्व से सृष्टि की रचना स्वीकार किया गया है। प्रकृति को अचेतन, अबौद्धिक तथा पुरुष को चेतन और ज्ञानस्वरूप माना गया है। प्रकृति में जो गुण निर्धारित किये गये हैं वे सभी नारी के गुणों से मिलते हैं– प्रकृति रूपवती है लज्जाशील है, एक बार पुरुष द्वारा देखे जाने के पश्चात् पुनः उसके सामने नहीं आती आदि। प्रकृति का अपना कोई उद्देश्य नहीं है, वह पुरुष के भोग या अपवर्ग (मोक्ष) के लिए ही क्रियाशील होती है।[14] स्त्री को जड़ या वस्तु के रूप भारतीय प्राचीन दर्शन में प्रारंभ से ही माना जाता रहा है, जिसका समर्थन हम साइमन डी बुआ के विचार में पाते हैं। उपरोक्त विचारधारा ने प्रकृति और नारी दोनों को घोर शोषण का शिकार बना दिया।

प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि 'समय सदैव एक समान नहीं रहता।' अनेक शताब्दियों की दारूण दासता के बाद19वीं और 20वीं शताब्दियों में नारी की स्थिति में सुधार होना प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता–समानता–भ्रातृत्व' के सिद्धांत को स्त्री समुदाय पर भी लागू करने की मांग जोर पकड़ने लगी। यूरोप में प्रारंभ हुई नारी मुक्ति आंदोलन की हवा भारत में भी बहनी शुरू हुई। भारतीय समाज में 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही कुछ विवेकशील व्यक्तियों ने भारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। इस क्षेत्र में राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रमाबाई रानाडे, मैडमकामा, तारूनदत्त एवं स्वर्णकुमारी देवी आदि ने स्त्रियों में जागरुकता लाने एवं सती प्रथा पर कानूनी रोक लगाने, बाल विवाह अन्त, विधवा पुनर्विवाह के लिए प्रयास, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना, पर्दा प्रथा का अन्त, बहुपत्नी विवाह की समाप्ति आदि के लिए ऐतिहासिक योगदान दिया। महात्मा गांधी के द्वारा स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए विशेष प्रयास किये गये। इसी प्रकार महिला संगठनों के द्वारा भी अनेक प्रयास किये गये तथा संवैधानिक प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ। मारग्रेट नोबेल, ऐनी बेसेंट एवं मारग्रेट कुशनल ने भारत में स्त्री आन्दोलन को सशक्त बनाया।

संवैधानिक व्यवस्थाओं में स्वतंत्रत में भारत संविधान में स्त्री–पुरुषों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार दिये गये तथा बहुपत्नी विवाह पर रोक लगा दी गयी। इसके साथ ही विशेष परिस्थितियों में विवाह–विच्छेद की व्यवस्था की गई। 1956 में 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू नाबालिग और संरक्षता अधिनियम, हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण–पोषण अधिनियम पारित किये गये। इन अधिनियमों के पास हो जाने से अन्तर्जातीय विवाह, विधवा–पुनर्विवाह एवं प्रेम–विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त हो गयी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। आज स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता प्राप्त कर रही हैं तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं। नारी शिक्षा में व्यापक सुधार हुआ। आज लड़कियाँ केवल कला, शिल्पकला और संगीत की ही शिक्षा नहीं ग्रहण कर रही हैं। स्त्री शिक्षा के बहुमुखी प्रसार से अनेक कुरीतियों, कुप्रथाएँ, अंधविश्वास और रूढ़िवादी मान्यताओं की समाप्ति हो रही है। महिलायें आर्थिक गतिविधियों में समान रूप से सहभागी बन रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा सेवाओं, आर्किटेक्चर, इंजीनियरिंग जैसे अनेकों क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता में अप्रत्याश्रित वृद्धि परिलक्षित हो रही है। इतना ही नहीं कॉर्पोरेट सेक्टर में जहां दो दशक पहले तक

पुरुषों का ही वर्चस्व था वहां आज महिलाओं ने केवल अपने उच्च प्रबंधकीय क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं, बल्कि नेतृत्व भी कर रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की राजनीतिक चेतना में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, कैबिनेट स्तर के मंत्रियों, राजदूत, मुख्यमंत्री आदि के रूप में अनेक महिलाओं ने काफी ख्याति अर्जित किया है और वर्त्तमान समय में भी अनेक महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च पदों पर महिलाएँ विराजमान हैं।

नारी की उपरोक्त स्वर्णिम स्थिति के बावजूद 21वीं सदी इस कटु यथार्थ की साक्षी हैं कि समाज का आधा हिस्सा महिलाएँ अवांछित भेदभाव और अन्यायपूर्ण व्यवस्था की शिकार आज भी हैं। आज भी महिलाएँ पुरुषवादी मानसिकता के कारण विकास व प्रगति के स्तरीय स्पर्श से वंचित हैं। दहेज जैसी कुप्रथा से हमारा समाज आज भी ग्रसित है। दहेज के कारण शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना यहां तक कि हत्या किये जाने की घटना आये दिन समाज में देखने को मिल जाती है।

कन्याभ्रूण हत्या अभी तक जारी है। इस तथ्य के साथ विडंबना यह जुड़ी है कि इस घातक प्रवृत्ति का निर्वाह प्रायः शिक्षित परिवारों द्वारा अधिक 'निष्ठा' से किया जा रहा है। बाल–विवाह भी भारत में जारी है। यौन शोषण के विरुद्ध अनेक कठोर कानून होने के बावजूद यौन–अत्याचार बढ़ता ही जा रहा है। स्कूल, कॉलेजों, कार्यालयों, ट्रेन, बसों आदि कहीं भी महिलाएँ पूर्ण रूपेण सुरक्षित नहीं हैं। अश्लील इशारे, भद्दी मजाकों आदि द्वारा तो स्त्री के ऊपर मानसिक यौन–शोषण किया ही जा रहा है और यदि उनके मनोवेग बढ़ जाये तो नारी कहीं भी बलात्कार का शिकार हो सकती है। उपरोक्त स्थितियों से साफ है कि कानून, संविधान और सरकार की तमाम योजनाओं के साथ ही कुछ सामाजिक संगठनों की कोशिशें भी महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए काफी नहीं हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति में फिल्म, टेलीविजन के विभिन्न चैनलों, पत्रिकाओं, इण्टरनेट, मोबाईल, फेसबुक, व्हाटसऐप, आदि पर नारी–देह को एक संसाधन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। फिल्मों में जिस तरह के दृश्य संगीत आदि परोसे जा रहे हैं, वे पुरुष की वासना को बढ़ाते हैं, जिनका शिकार महिलाएँ होती हैं। इस वासना की अंधी दौड़ में वे नैतिक और अनैतिक का अन्तर भी भूल बैठते हैं।

आज के बाजारवाद और उपभोक्तावाद के शिकंजे से अपनी आजादी और अस्मिता को बचाए रखना आज की महिलाओं का कर्त्तव्य है। अपने ऊपर होने वाले शारीरिक और मानसिक शोषण के विरुद्ध स्वयं को शारीरिक और मानसिक रूप से सक्षम बनाना आवश्यक हो गया है। साथ ही पुरुष समाज को भी अपने नैतिक चरित्र का उत्थान करना अत्यन्त अपरिहार्य है, क्योंकि एक अहिंसात्मक और सुव्यवस्थित समाज नैतिक मूल्यों, आदर्शों आदि पर ही अवलम्बित होता है। इसके साथ ही वक्त आ गया है कठोर कानून और प्रशासनिक मानकों को अपनाकर महिलाओं की स्थिति को मजबूत बनाने का। समाज के पतन को रोकने के लिए ऐसी तमाम बुराईयों को जड़ से खत्म करना होगा जो समय के साथ हमारी मानसिकता को भ्रष्ट कर रही हैं। सभी का मिलाजुला प्रयास ही भारतीय महिलाओं के मुक्ति और सशक्तिकरण के लक्ष्य को पूरा कर सकता है।

''नहीं चाहिए मुझे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि के रूप में देवी की पदवी। नहीं चाहिए मुझे सती सावित्री जैसी उपमाओं का उपहार। नहीं चाहिए मुझे सीता जैसी अग्नि में भस्म होकर निकलीस्वर्ण प्रतिमाओं का शृंगार। बस मुझे दे दो एक मानव अस्तित्व के रूप में इंसान की तरह जीने का अधिकार।''

संदर्भ

1. सातवलेकर, डॉ. श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेदभाष्यम्, वर्ल्ड कलास पब्लिकेशन, मेरठ, 2010, पृ.64
2. वर्मा, डॉ. रामचन्द्र, टीकाकार शास्त्री, मनुस्मृति, प्रभात पेपरबैक्स, 2020, पृ.213
3. वही, पृ.214
4. वही
5. वही, पृ.60
6. ऋग्वेद, पंचम मंडल, सूक्त सं.28, (साभार ऋग्वेद गंगा सहाय, डॉ. शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979
7. ऋग्वेद, दसवां मंडल, सूक्त सं.–39, 40 (साभार–वही)
8. शतपथ ब्राह्मण, V, 1,6, 10 (साभार, डॉ. शिव भानु सिंह, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, संस्करण 2008, पृ.403
9. शतपथ ब्राह्मण, xiv, 3, 1, 3, 5 (साभार–वही)
10. संपूर्ण चाणक्य नीति सूत्र व जीवन परिचय, महेन्द्र मित्तल, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली 2015, पृ. 138
11. सिंह, शिव भानू, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, संस्करण 2008, पृ.399
12. वही, पृ.396
13. वही, पृ.397
14. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2010, पृ.153

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

भारतीय जाति व्यवस्था : ऐतिहासिक सर्वेक्षण

श्रीधर दयानिधि

एम0ए0, समाजशास्त्र
यूजीसी–नेट

जाति व्यवस्था भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण है। भारतीय समाज में स्तरीकरण का यह एक महत्वपूर्ण कारक है। भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों में वर्गीकृत है। यह समूह अंतर्विवाही समूह होता है। इन समूहों की कुछ विशेषताएँ होती हैं जैसे–सदस्यता का जन्मजात होना, एक निश्चित व्यवसाय होना और कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं के साथ साथ खान–पान और सामाजिक सहवास के नियमों का पालन करते हुए रहना[1] आदि।

जाति एक प्राचीन संस्था है जो हजारों वर्षों से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। लेकिन जाति सिर्फ भारतीय समाज के अतीत का हिस्सा भर नहीं है यह वर्तमान समाज का भी अभिन्न अंग है।[2] भारतीय समाज सहित पूरे भारतीय उपमहाद्वीप से जुड़ी हुई यह एक अनोखी संस्था है। यद्यपि विश्व की अनेक संस्कृतियों में सामाजिक स्तरीकरण मौजूद रहा है लेकिन भारतीय समाज में मौजूद यह जाति व्यस्था अनूठी है। यह हिन्दू समाज की संस्थात्मक विशेषता है लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभाव के कारण यह अन्य धार्मिक समुदायों में भी फैली हुई है। मुसलमानो, ईसाइयों और सिखों में इसके प्रभाव देखे जा सकते हैं।[3]

'जाति' शब्द के लिए अंग्रेजी में कास्ट शब्द प्रचलित है जो मूलतः पुर्तगाली शब्द है। इसका अर्थ है 'विशुद्ध नस्ल'। भारतीय प्राचीन भाषा संस्कृत में इसे 'वर्ण' और 'जाति' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। भारतीय समाज के ऐतिहासिक अवलोकन और अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'वर्ण' का अर्थ त्वचा के 'रंग' से है। इसमें प्रारंभ में समाज की चार श्रेणियाँ बनीं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस विभाजन में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण भाग शामिल नहीं था। ये भाग थे– 'जाति बहिष्कृत', 'विदेशी', 'दास', 'युद्धों में पराजित' और 'अन्य लोग'। इन समुदायों को कभी–कभी 'पंचम' या पांचवीं श्रेणी भी कहा गया।[4]

'वर्ण' और 'जाति' का आपसी संबंध विद्वानों के बीच बहस का विषय रहा है। 'वर्ण' को एक अखिल भारतीय सामूहिक वर्गीकरण के रूप में समझा जा सकता है। 'जाति' को क्षेत्रीय या स्थानीय उप–वर्गीकरण के रूप में समझा जा सकता है जिसमें सैकड़ों या यहाँ तक कि हजारों एवं उप–जातियों से बनी अत्यधिक जटिल व्यवस्था शामिल होती है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में स्पष्ट मान्यता नहीं है। हालांकि वर्ण की उत्पत्ति के संबंध में ऐतिहासिक साक्ष्य इसे ऋगवैदिक काल के अंतिम दौर तक ले जाते हैं। ऋगवैदिक काल के महत्वपूर्ण स्रोत 'ऋगवेद' के 'पुरुष सुक्त' में वर्ण–विभाजन के संकेत उपलब्ध होते हैं। यह माना जाता है कि ऋगवेद का प्रथम और दशम मंडल बाद के हैं। ऐतिहासिक

साक्ष्यों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में वर्ण–विभाजन की शुरुआत ऋगवैदिक काल के आखिरी दौर में और मूलतः उत्तर वैदिक काल में हुई। अर्थात अपने प्रारंभिक काल में भारतीय जाति–व्यवस्था दरअसल 'वर्ण–व्यवस्था थी। यह विभाजन बहुत कठोर नहीं था। यह विभाजन जन्म आधारित नहीं था। यह मूलतः कर्म आधारित था। वर्णों के बीच स्थान परिवर्तन सामान्य बात थी। उत्तर वैदिक काल आते–आते जाति कठोर संस्था बनने लगी। भारतीय जाति–व्यवस्था को उनकी निम्न विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1. जाति जन्म से निर्धारित होती है। कोई बच्चा जन्म लेते ही अपने माता–पिता की जाति में स्वतः आ जाता है।
2. जाति की सदस्यता के साथ विवाह संबंधी कठोर नियम होते हैं। जाति समूह 'सजातीय' होते हैं अर्थात् विवाह समूह के सदस्यों में ही हो सकते हैं।
3. जातियों में आपसी उप–विभाजन भी होता है आर्थात् जातियों में हमेशा उप–जातियाँ होती हैं और कभी–कभी उप–जातियों में भी उप–उप–जातियाँ होती हैं। इसे खंडात्मक संगठन कहते हैं।
4. पारंपरिक तौर पर जातियाँ व्यवसाय से जुड़ी होती हैं। एक जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति उस जाति से जुड़े व्यवसाय को ही अपना सकता है। इससे व्यवसाय के वंशानुगत होने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। ये व्यवसाय पीढ़ी–दर पीढ़ी हस्तांतरत होते रहते हैं।[5]

वैदिक काल के बाद मौर्य काल(322 ई. पूर्व.–184 ई. पूर्व) में संपूर्ण भारत एक शासक के अधीर प्रथम बार राजनैतिक रूप से एक हुआ। राजनीतिक एकता ने देश की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। कौटिल्य के लेख इस काल में जाति प्रथा के सामाजिक संगठन और कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालते हैं। कौटिल्य ने ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों पर लगाए गए कई प्रतिबन्धों को हटाने का प्रयत्न किया और घोषणा की कि शाही कानून धर्म के कानून से ऊपर होंगे।[6]

मौर्योत्तर काल में ब्राह्मण धर्म और जाति–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था के उत्थान और विकास को प्रोत्साहन मिला। मनुस्मृति(185 ई. पू.) में ब्राह्मणों ने अपने लिए विशेषाधिकारों का प्रावधान किया और शूद्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए। कानून में समानता पूरी तरह नष्ट होने के संकेत इस दौर के साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं। जाति प्रथा के कठोर मार्ग पर चलने और एक नवीन संरचना धारण करने के साक्ष्य इस दौर में मिलने लगते हैं। गुप्त काल(300 ई.–500 ई.) में ब्राह्मण्वाद भारत का नृजातीय धर्म हो गया और जाति प्रथा को अधिक प्रोत्साहन मिला। गुप्तोत्तर काल(हर्षवर्द्धन और अन्य) के समय भी भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था की कमोवेश वही संरचना रही।

मध्य युग में राजपूत काल (700 से 1200 ई.) और मुस्लिम काल (1206 ई. से 1707 ई.) में सांस्कृतिक जीवन पहले से भिन्न था। लेकिन राजनीतिक कारकों के कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था नहीं बदली। राजपूतों की अपने वंशों के प्रति निष्ठा ने उन्हें देश के प्रति राष्ट्र भक्ति से उदासीन बना दिया। नयी जातियों और उपजातियों का जन्म हुआ जो अपने ही हितों में संलग्न हो गए। इससे देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा। मुस्लिम काल में जाति–व्यवस्था और कठोर हो गई क्योंकि मुस्लिम हिन्दुओं के लचीलेपन में समाहित नहीं हुए। ब्राह्मणों ने हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन से बचाने का उत्तरदायित्व सम्भालते हुए, हिन्दुओं पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए और जाति व्यवस्था को और कठोर बना दिया।[7]

प्रारंभिक ब्रिटिश काल में देश के भौतिक विकास, बाहरी दुनिया से संपर्क, सरकार की सामाजिक–आर्थिक नीतियों और कुछ वैधानिक उपायों द्वारा हमारे धार्मिक सिद्धांतों, सामाजिक प्रथाओं

तथा समाज की जाति–व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। जाति–व्यवस्था की दृढ़ता को एक और आघात तब लगा जब कुछ सामाजिक उपायों से अस्पृश्यों की कुछ निर्योग्यताएं समाप्त कर दी गई। ब्रिटिश सरकार ने ये उपाय महज प्रशासनिक कारणों से किए थे उनका समाज सुधार का कोई उद्देश्य नहीं था। यह विचार महत्वपूर्ण विचारकर घूर्ये ने भी व्यक्त किए हैं। भारतीय समाज सुधारकों के कुछ सामाजिक आंदोलनों ने भी भारतीय जाति–व्यवस्था के बंधन ढीले किए और कुछ बदलाव संभव हुए। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया ने भी जाति की संरचना को प्रभावित किया। भोजन संबंधी निषेध तब कमजोर पड़ने लगे जब विभिन्न जातियों के औद्योगिक श्रमिकों ने गांवों में अपने परिवारों को छोड़कर शहरों में एक ही मकान में इकट्ठे रहना प्रारंभ किया। नगरीकरण और शहरों के विकास ने भारतीय जाति–व्यवस्था की कार्य प्रणाली को काफी बदल दिया। न केवल सहभोजी अवरोध कम हो गए हैं, बल्कि ब्राह्मणों के अधिकारों पर भी प्रश्न चिन्ह लगने लगे हैं। किंगस्ले डेविड ने कहा है कि शहरों का अनजानापन, भीड़–भाड़, गतिशीलता, धर्मनिरपेक्षता और पवित्रनशीलता जाति की क्रियात्मकता हो लगभग असम्भव बना देती है।[8]

1947 में देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद, औद्योगीकरण और नगरीकरण के अलावा अन्य कारणों ने भी जाति व्यवस्था को प्रभावित किया। ये कारण हैं–विभिन्न राज्यों का विलय, अनेक सामाजिक कानूनों का लागू होना, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक–धार्मिक सुधार और आन्दोलन, पश्चिमीकरण, आधुनिक पेशों का विकास, स्थान गतिशीलता और बाजार अर्थव्यवस्था का विकास।

वर्तमान में भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था और उसकी कार्यप्रणाली के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

1. जाति व्यवस्था उन्मूलन की प्रक्रिया में नहीं है बल्कि आधुनिक परिवर्तनों के साथ पर्याप्त सामंजस्य कर रही है।
2. जाति का धार्मिक आधार टूट गया है।
3. विविध प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने की पुरानी सामाजिक प्रथाएं समाप्त हो गई है। जाति अब नवीन मूल्यों वाली व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकती।
4. अब जाति व्यक्ति के पेशेवर जीवन को निर्धारित नहीं करती यद्यपि उसकी सामाजिक प्रस्थिति आज भी उसकी जातीय सदस्यता पर निर्भर है।
5. पिछड़ी जाति एवं दलितों को समानता प्रदान करने के लिए गंभीर प्रयत्न किए जा रहे हैं।
6. अन्तर्जातीय संघर्ष बढ़ रहे हैं, परन्तु यह संघर्ष सांस्कारिक प्रस्थिति के आधार की अपेक्षा शक्ति अर्जित करने के लिए अधिक हैं।
7. जातिवाद में बढ़ोत्तरी हुई है।
8. गांवों में यजमानी प्रथा कमजोर पड़ गई है। इससे अन्तर्जातीय सम्बंधों पर प्रभाव पड़ा है।
9. गांवों में किसी जाति का वर्चस्व अब उसकी धार्मिक प्रस्थिति पर निर्भर नहीं करता।
10. जाति और राजनीति एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।
11. एक ओर कुछ जातियों के संगठन मजबूत हुए हैं तो दूसरी ओर अधिकतर जातियों ने अपनी सामूहिक एकता खो दी है और उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास हुआ है।
12. जाति अब सामाजिक प्रगति व राष्ट्रीय विकास में बाधक नहीं है। जाति–व्यवस्था के बावजूद भी भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर है।[9]

आधार–सामग्री :

1. भारत में समाज, मोतीलाल गुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ संख्या–122–24
2. भारतीय समाज, एन.सी. ई. आर. टी, कक्षा–12, पृष्ठ संख्या–44
3. वही, पृष्ठ–44
4. वही, पृष्ठ–44
5. वही, पृष्ठ–45–46
6. भारतीय समाज, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ–42–43
7. वही, पृष्ठ–44
8. वही, पृष्ठ–44–45
9. वही –पृष्ठ–45–46

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

श्रीमद्भागवत् पुराण में हरिश्चन्द्र

डॉ0 सुधा कुमारी
पूर्व शोधच्छात्रा,
संस्कृत विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय खण्ड, नवम् स्कन्ध, अध्याय-7 के अन्तर्गत हरिश्चन्द्र का वर्णन आता है। इसके अनुसार मान्धाता के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ अम्बरीय थे। उनके दादा युवनाश्वने उन्हें पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया। उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व और यौवनाश्वा हारीत। मान्धाता के वंश में ये तीन अवान्तर गोत्रों के प्रवर्तक हुए। नागों ने अपनी बहिन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से कर दिया था। नागराज वासुकि की आज्ञा से नर्मदा अपने पति को रसातल में ले गयी। वहाँ भगवान् की शक्ति से सम्पन्न होकर पुरुकुत्सने बध करने योग्य गन्धर्वों को मार डाला। इस पर नागराज ने प्रसन्न होकर, पुरुकुत्सको वर दिया कि जो इस प्रसंग का स्मरण करेगा, वह सर्पों से निर्भय हो जायगा। राजा पुरुकुत्स का पुत्र त्रसद्दस्यु था। उसके पुत्र हुए अनरण्य। अनरण्य के हर्यश्व, उसके अरूण और अरूण के त्रिबन्धन हुआ। त्रिबन्धन के पुत्र सत्यब्रत हुए। यही सत्यब्रत त्रिशंकु के नाम से विख्यात हुए।

त्रिशंकु अपने पिता और गुरु के शाप से चाण्डाल हो गये थे, परन्तु विश्वामित्र जी के प्रभाव से वे सशरीर स्वर्ग में चले गये। देवताओं ने उन्हें वहाँ से ढकेल दिया और वे नीचे को सिर किये हुए गिर पड़े परन्तु विश्वामित्र जी ने अपने तपोबल से उन्हें आकाश में ही स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाश में लटके हुए दीखते हैं।

त्रिशंकु के पुत्र थे हरिश्चन्द्र। उनके लिए विश्वामित्र और वशिष्ठ एक दूसरे को शाप देकर पक्षी हो गये और बहुत वर्षों तक लड़ते रहे। हरिश्चन्द्र के कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारद के उपदेश से वे वरूण देवता की शरण में गये और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मुझे पुत्र प्राप्त हो। महाराज! यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसी से आपका यजन करूँगा।' वरूण ने कहा- ठीक है। तब वरूण की कृपा से हरिश्चन्द्र को रोहित नामक पुत्र हुआ।[1] पुत्र होते ही वरूण ने आकर कहा- हरिश्चन्द्र तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया। अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्र ने कहा जब आपके यज्ञपशु के मुँह में दाँत निकल आयेंगे, तब वह यज्ञ के योग्य होगा। दाँत उग आने पर वरूण ने कहा- अब इसके दाँत निकल आये, मेरा यज्ञ करो। हरिश्चन्द्र ने कहा- जब इसके दूध के दाँत गिर जायेंगे, तब यह यज्ञ के योग्य होगा।

दूध के दाँत गिर जाने पर वरूण ने कहा- अब इस यज्ञपशु के दाँत गिर गये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्र ने कहा जब इसके दुबारा दाँत आ जायेंगे, तब यह पशु यज्ञ के योग्य हो जायगा। दाँत के फिर उग आने पर वरूण ने कहा अब मेरा यज्ञ करो। हरिश्चन्द्र ने कहा वरूण जी महाराज! क्षत्रिय पशु तब यज्ञ के योग्य होता है, जब वह कवच धारण करने लगे। परीक्षित् इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र के प्रेम से हीलाहवाला करके समय टालते रहे। इसका कारण यह था कि पुत्र स्नेह की फाँसी ने उनके हृदय को जकड़ लिया था। वे जो-जो समय बताते, वरूण देवता उसी की बाट देखते। जब रोहित को इस बात का पता चला कि पिता जी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं, तब वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए हाथ में धनुष लेकर, वन में चला गया।

कुछ दिन के बाद उसे मालूम हुआ कि वरूण देवता ने रुष्ट होकर मेरे पिताजी पर आक्रमण किया है- जिसके कारण वे जलोदर रोग से पीड़ित हो रहे हैं, तब रोहित अपने नगर की ओर चल पड़ा। परन्तु इन्द्र ने आकर उसे रोक दिया। इन्होंने कहा- बेटा रोहित, यज्ञपशु बनकर मरने की अपेक्षा तो पवित्र तीर्थ और दोनों का सेवन करते हुए पृथ्वी में विचरना ही अच्छा

है। इन्द्र की बात मानकर वह एक वर्ष तक और वन में ही रहा।[2] इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी रोति अपने पिता के पास जाने का विचार किया, परन्तु बूढ़े ब्राह्मण का वेश धारण कर हर बार इन्द्र आते और उसे रोक देते। इस प्रकार छः वर्ष तक रोहित वन में ही रहा। सातवें वर्ष जब वह अपने नगर को लौटने लगा, तब उसने अजीगर्त से उनके मझले पुत्र शुनःशेप को मोल ले लिया और उसे यज्ञ पशु बनाने के लिए अपने पिता को सौंपकर उनके चरणों में नमस्कार किया। तब परम यशस्वी एवं श्रेष्ठ चरित्रवाले राजा हरिश्चन्द्र ने जलोदर रोग से छूटकर पुरुषमेध यज्ञ द्वारा वरूण आदि देवताओं का यजन किया। इस यज्ञ में विश्वामित्र जी होता हुए। परम संयमी जमदग्नि ने अध्वर्युका काम किया।

वशिष्ठ ब्रह्मा बने और अयास्य मुनि सामगान करने वाले उद्गाता बने। उस समय इन्द्र ने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र को एक सोने का रथ दिया था। हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी के साथ सत्य में दृढ़तापूर्वक स्थित देखकर विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें उस ज्ञान का उपदेश दिया, जिसका कभी नाश नहीं होता। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्र ने अपने मन को पृथ्वी में, पृथ्वी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में और वायु को आकाश में स्थिर करके, आकाश को अहंकार में लीन कर दिया। फिर अहंकार को महत्व में लीन करके उसमें ज्ञान-कला का ध्यान किया और उससे अज्ञान को भस्म कर दिया। इसके बाद निर्वाण-सुख की अनुभूति से उस ज्ञान-फलाका भी परित्याग कर दिया और समस्त बन्धनों से मुक्त होकर वे अपने उस स्वरूप में स्थित हो गये, जो न तो किसी प्रकार बतलाया जा सकता है और न उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का अनुमान ही किया जा सकता है।

पद्मपुराण में हरिश्चन्द्र

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड के अध्याय 32 के अन्तर्गत व्रत तथा विविध प्रकार के दान आदि की महिमा के क्रम में राजा हरिश्चन्द्र का वर्णन मिलता है। नारद जी महादेव जी से किसी व्रत के बारे में बताने की प्रार्थना करने पर महादेव जी बताते हैं-

पूर्वकाल में हरिश्चन्द्र नाम एक चक्रवर्ती राजा हो गये थे। उन पर संतुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने उन्हें एक सुन्दर पुरी प्रदान की, जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली थी। उसमें रहकर राजा हरिश्चन्द्र सात द्वीपों से युक्त वसुन्धरा का धर्मपूर्वक पालन करते थे। प्रजा को वे पुत्र की भाँति मानते थे। राजा के पास धन-धान्य की अधिकता थी। उन्हें नाती पातों की भी कमी न थी। अपने उत्तम राज्य का पालन करते हुए राजा को एक दिन बड़ा विस्मय हुआ, वे सोचने लगे- 'आज के पहले कभी किसी को ऐसा राज्य नहीं मिला था। मेरे सिवा दूसरे मनुष्यों ने ऐसे विमान पर सवारी नहीं की होगी। यह मेरे किस कर्म का फल है, जिससे मैं देवराज इन्द्र के समान सुखी हूँ?''

राजाओं में श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार सोच विचारकर अपने उत्तम विमान पर आरूढ़ हुए आकाशमार्ग से जाते समय पर्वतों में श्रेष्ठ मेरू पर उनकी दृष्टि पड़ी। उस श्रेष्ठ शैल पर ज्ञानयोग- परायण ब्रह्मर्षि सनत्कुमार दिखायी पड़े, जो सुवर्णमयी शिला के ऊपर विराजमान थे। उन्हें देखकर राजा अपना विस्मय पूछने के लिए उतर पड़े। उन्होंने पास जा हर्ष में भरकर मुनि के चरणों में मस्तक झुकाया। ब्रह्मर्षि ने भी राजा का अभिनन्दन किया। फिर सुखपूर्वक बैठकर राजा ने मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमारजी से पूछा- भगवन! मुझे जो यह सम्पत्ति प्राप्त हुई है, मानवलोक में प्रायः दुर्लभ है। ऐसी सम्पत्ति किस कर्म से प्राप्त होती है? मैं पूर्वजन्म में कौन था? ये सब बातें यथार्थस्य से बतलाइये'। सनत्कुमार जी बोले- राजन्! सुनो- तुम पूर्वजन्म में सत्यवादी, पवित्र एवं उत्तम वैश्य थे। तुमने अपना काम-धाम छोड़ दिया था, इसलिये बन्धु बान्धवों ने तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम्हारे पास जीविका का कोई साधन नहीं रह गया था, इसलिए तुम स्वजनों को छोड़कर चल दिये। स्त्री ने ही तुम्हारा साथ दिया। एक समय तुम दोनों किसी को जंगल में जा पहुँचे। वहाँ एक पोखरे में कमल खिले हुए थे। उन्हें देखकर तुम दोनों के मन में यह विचार उठा कि हम यहाँ से कमल ले लें। कमल लेकर तुम दोनों एक-एक पग भूमि लाँघते हुए शुभ एवं पुण्यमयी वाराणसी पुरी में पहुँचे। वहाँ तुम लोग कमल बेचने लगे किन्तु कोई भी उन्हें खरीदता नहीं था। वहीं खड़े-खड़े तुम्हारे कानों में बाजे की आवाज सुनायी पड़ी। फिर तुम उसी ओर चल दिये। वहाँ काशी के विख्यात राजा इन्द्रद्युम्न की सती-साध्वी कन्या चन्द्रावती ने, जो बड़ी सौभाग्यशालिनी थी, जयन्ती नामक जन्माष्टमी का शुभकारक व्रत किया था।

वहाँ पहुँचने पर तुम्हारा चित्त संतुष्ट हो गया। तुमने वहाँ भगवान के पूजन का विधान देखा। कलश के ऊपर श्रीहरि की स्थापना करके उनकी पूजा हो रही थी। विशेष समारोह के साथ भगवान का पूजन किया गया था, भिन्न-भिन्न पुष्पों से उनका शृंगार हुआ था। भगवान की भक्ति से वशीभूत हो तुमने भी अपनी पत्नी के साथ कमल के फूलों से वहाँ श्रीहरि का पूजन किया तथा पूजा से बचे हुए फूलों को उनके समीप ही बिखेर दिया। तुमने भगवान को पुष्पमय कर दिया। इससे उस कन्या को बड़ा संतोष हुआ। वह स्वयं तुम्हें धन देने लगी, किन्तु तुमने नहीं लिया। जब राजकुमारी ने तुम्हें भोजन के लिए निमनित्रत किया, किन्तु उस समय तुमने न तो भोजन स्वीकार किया और न तो भोजन स्वीकार किया और न धन ही लिया। यही पुण्य तुमने पिछले जन्म में उपार्जित किया था। फिर अपने कर्म के अनुसार तुम्हारी मृत्यु हो गयी। उसी महान पुण्य के प्रभाव से तुम्हें विमान मिला है। राजन् पूर्वजन्म में जो तुम्हारे द्वारा वह पुण्य हुआ था, उसी का ल इस समय तुम भोग रहे हो।

हरिश्चन्द्र बोले- मुनिवर किस महीने में वह तिथि आती है और किस विधि से उसका व्रत करना चाहिये? यह मुझे बताइये। तत्पश्चात् सनतकुमार व्रत के बारे में विस्तृत बताते हैं- इस प्रकार पद्मपुराण के अन्तर्गत व्रत और दान आदि की महिमा के क्रम में हरिश्चन्द्र का नाम आता है।

अग्नि पुराण में हरिश्चन्द्र

अग्निपुराण के अध्याय 273 के अन्तर्गत सूर्य वंश का वर्णन आता है। जिसके अन्तर्गत अग्नि देव कहते हैं-

पुरुकुत्सात्त्रसदस्युः संभूतो नर्मदाभवः।

संभूतस्य सुधन्वाऽभूरित्रधन्वाऽथ सुधन्वनः॥

चित्रधन्वनस्तु तरूणस्तस्य सत्यव्रतः सुतः।

सत्यब्रतात्सत्यसो हरिश्चन्द्रश्च तत्सुतः॥

हरिश्चन्द्रोद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद्रवृकोऽभवत्।

वृकाद्रबाहुश्च बाहोश्च सगरतस्य च प्रिया॥

पुरुकुत्स से नर्मदा (नाम की स्त्री) से त्रसधस्यु नामक पुत्र हुआ। सम्भूत से सुधन्वा और उससे त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ। त्रिधन्वा से तरूण उत्पन्न हुआ। तरूण से सत्यव्रत की उत्पत्ति हुई। सत्यव्रत का पुत्र सत्यरथ हुआ और सत्यरथ का पुत्र हरिश्चन्द्र। हरिश्चनद्र से रोहिताश्च और रोहिताश्च से वृक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ वृक से बाहु और बाहु से सगर की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार अग्नि पुराण के अन्तर्गत हरिश्चन्द्र के वंश का वर्णन मिलता है।

विष्णुपुराण में हरिश्चन्द्र

विष्णुपुराण में हरिश्चन्द्र का संकेत मिलता है। जिसके अन्तर्गत मुख्य रूप से राजा हरिश्चन्द्र के वंश के बारे में वर्णन आता है-

तस्मात् सत्यव्रतः। सोऽसौ त्रिशंकु संज्ञामवाप,

चण्डालतामुपगतश्च द्वादशवार्षिक्यामना वृष्टयां

विश्वामित्रकलत्रापत्यपोषणार्थं चाण्डालप्रतिगहपरिहरणाय च

जाहन्वीतीरै न्यग्रोधे मृगमांसमनुदिनं बबंध॥

स तु परितुष्टेन च विश्वामित्रेण सशरीरः स्वर्गमारोपितः।

त्रिशंर्कोहरिश्चन्द्रः, तस्मात् रोहिताश्वः, ततश्च हरितः

हरिताच्चञ्चुः, चञ्न्योविंजयसुदेवौ रूरूको विजयात्, ततो

बाहुः। योऽसोक घादिभि – खजितोऽन्तर्व्यसह एवं प्रविवेश।

उपरोक्त वर्णन विष्णुपुराण के चतुर्थ अध्याय से लिया गया है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि त्रिशंकु से हरिश्चन्द्र हुए हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और रोहिताश्व से हरित हुए। हरित से चञ्चु और चञ्चु से विजय और वासुदेव तथा विजय से रूरूक और रूरूक से वृक उत्पन्न हुए।

वायुपुराण में हरिश्चन्द्र

वायुपुराण के अनुसार राजा त्रिशंकु की पत्नी कैकयवंश में उत्पन्न सत्यव्रता नाम की थी। उसने हरिश्चन्द्र नाम परम धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया। वह राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र के रूप में परम विख्यात था। उसने अपने समय में राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया। समस्त पृथ्वी मण्डल का वह एकछत्र सम्राट था ऐसा सुना जाता है। हरिश्चन्द्र का पुत्र परम बलवान रोहित था। रोहित का पुत्र हरित हुआ। हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ।[3]

श्रीस्कन्द-महापुराण में हरिश्चन्द्र

स्कन्द-महापुराण के नागर खण्ड में हरिश्चन्द्र के राजा बनने एवं उनके पिता त्रिशंकु का विस्तृत विवरण मिलता हैः-

पूर्वकाल में त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध एक सूर्यवंशी राजा थे। वे महर्षि वशिष्ठ के शिष्य थे और सदा यज्ञ-योग आदि किया करते थे। उन्होंने प्रजा का पुत्र की भाँति पालन किया था। एक दिन राजसभा में बैठे हुए मुनिवर वशिष्ठजी से राजा ने विनयपूर्वक कहा- भगवन्! अब मैं ऐसे यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना करना चाहता हूँ, जिससे इस शरीर के साथ ही स्वर्गलोक में शीघ्र जाना सम्भव हो सके।' वशिष्ठजी ने कहा- राजन्! ऐसा कोई यज्ञ नहीं है, जिसके द्वारा इसी शरीर से मनुष्य स्वर्ग में जा सके। स्वयम्भू ब्रह्माजी ने जिन अग्निष्टोम आदि यज्ञों का प्रतिपादन किया है, उनके करने पर भी दूसरे ही शरीर से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। त्रिशंकु बोले- प्रभो! यदि इसी शरीर से स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला यज्ञ आप मुझसे नहीं करा सकते तो मैं किसी दूसरे ब्राह्मण को आचार्य बनाकर उस यज्ञ का अनुष्ठान करूँगा। त्रिशंकु का यह वचन सुनकर महर्षि वशिष्ठ ने हँसते हुए कहा- 'पृथ्वीनाथ! आज ही वैसा यज्ञ कीजिए (मुझे कोई आपत्ति नहीं है)।'' तब राजा वशिष्ठ मुनि को प्रणाम करके उस स्थान पर गये, जहाँ उनके सौ पुत्र रहते थे। उनके सामने भी राजा ने अपना वही प्रयोजन रक्खा। तब उन्होंने भी वही उत्तर दिया, जो वशिष्ठ जी ने कहा था। यह सुनकर राजा ने पुनः उनसे कहा- 'गुरुपुत्रों! आपके पिताजी इस समय मुझे सशरीर स्वर्ग भेजने में असमर्थ हो गये हैं, अतः मैंने उनको छोड़ दिया है। अब मेरे पुरोहित वे नहीं रहे। यदि आप लोग भी मुझसे वैसा यज्ञ नहीं करवायेंगे तो आपको भी छोड़कर मैं शीघ्र दूसरे पुरोहित का वरण करूँगा।' यह सुनकर वे सभी गुरुपुत्र कुपित हो उठे और कठोर वाणी में बोले- 'पापी! तूने हितैषी गुरु का त्याग किया है, इसलिए तू सब लोगों द्वारा निन्दित चाण्डाल हो जा।' उनका यह वाक्य पूरा होते ही राजा त्रिशंकु उसी क्षण विकृत एवं विकराल शरीरधारी चाण्डाल हो गये। अपने को विकृत चाण्डाल के रूप में देखकर राजा को बड़ी लज्जा हुई। वे बहुत दुःखी होकर इधर-उधर घूमने लगे। सोचने लगे- 'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किस प्रकार मुझे शान्ति मिलेगी? मैं जलती हुई आग में समा जाऊँ अथवा विष खा लूँ? किसी उपाय से आज मेरी मृत्यु हो जाय। ऐसे घृणित शरीर के द्वारा उन स्त्रियों को मैं कैसे देखूँगा, जिनके साथ वैसे दिव्य शरीर से क्रीड़ा की है।'

इस प्रकार शोक करते हुए राजा ने रात्रि के समय अपने नगर में प्रवेश किया तथा राजद्वार पर ठहरकर मंत्रियों सहित पुत्र को बुलाकर शाप सम्बन्धी सब बातें बतायीं। दूर खड़े हुए हरिश्चन्द्र राजा का यह वचन सुनकर वे मंत्री और पुत्र भी शोक-मग्न हो रोने लगे। तब राजा ने मंत्रियों से कहा- 'यदि मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में अविचल भक्तिभाव हो तो अब मेरे पुत्र का मंत्रित्व स्वीकार करो। मेरा ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र मुझे बहुत ही प्रिय है, अतः शान्तचित्त होकर इसी को मेरे स्थान पर यथासम्भव शीघ्र राजा बनाओ। मैं तो अब अपने संकल्प को पूरा करूँगा। या तो इसी प्रयत्न में प्राण दे दूँगा या संदेह स्वर्गलोक में जाऊँगा।' ऐसा कहकर त्रिशंकु वन में चले गये और मंत्रियों ने उनके पुत्र को राजसिंहासन पर बिठा दिया। तदनन्तर त्रिशंकु ने यह निश्चय किया कि इस समय त्रिलोकी में विश्वामित्र मुनि को छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो मुझे इस भयंकर दुःख से

बचावे। ऐसा विचार कर उन्होंने कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे विश्वामित्र का आशय ढूँढ़ने लगे। इतने में ही दूर से उन्हें काले धुएँ का पुञ्ज दिखायी दिया और जल का स्पर्श करके आती हुई शीतल वायु ने उनकी सारी थकावट दूर कर दी इससे जलाशय और आश्रम का अनुमान करके वे जल्दी-जल्दी चलने लगे। थोड़ी ही देर में नदी के तट पर एक मनोहर आश्रम दृष्टिगोचर हुआ, जो सब ओर से फूले-फले वृक्षों द्वारा घिरा था। वहाँ नेवले सर्पे के, उल्लू कौवों के, बिलाव चूहों के और व्याघ्र नाना प्रकार के मृगों के साथ खेल रहे थे। उस आश्रम पर पहुँचकर त्रिशंकु ने तपस्या के निधान विश्वामित्र मुनि को देखा। उनका दर्शन करके दूर खड़े हो अपने नाम का परिचय देते हुए उन्होंने मुनि का साष्टांग प्रणाम किया और कहा- 'विप्रवर! मैं शाप से छूटने के लिए सम्पूर्ण जगत् के मित्र महर्षि विश्वामित्र की शरण में आया हूँ।' विश्वामित्र जी बोले- नृपश्रेष्ठ! तुम तो वशिष्ठ जी के यजमान हो, वशिष्ठ अथवा उनके पुत्रों को ही तुम्हारा यज्ञ कराना चाहिये, फिर उन्होंने तुम्हें शाप क्यों दिया? तुमने उनका क्या अपराध किया था?

त्रिशंकु कहे मुने! मैंने वशिष्ठ जी से ऐसा यज्ञ कराने के लिए प्रार्थना की थी, जिसके द्वारा मेरा इसी शरीर से स्वर्गलोक में जाना हो सके। मेरी प्रार्थना सुनकर उन्होंने उत्तर दिया- 'राजन्! ऐसा कोई यज्ञ नहीं है, जिससे देहान्तर ग्रहण किये बिना इसी शरीर से स्वर्गलोक में जाया जा सके।' इस पर मैंने उनसे कहा 'यदि आप किसी उत्तम यज्ञ के प्रभाव से मुझे इस शरीर के साथ ही स्वर्गलोक में नहीं पहुँचायेंगे तो मैं आज ही अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी दूसरे ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाऊँगा।' मेरा यह विचार जानकर वे बोले- 'जिससे तुम्हारा भला हो, वह करो।' तब मैंने उनके पुत्रों के पास जाकर वशिष्ठ जी के साथ की हुई सारी बातें कह सुनायीं। इस पर उन सबने मुझे शाप देकर चाण्डाल की दशा में पहुँचा दिया। मुनीश्वर! तब मैंने मन-ही-मन आपका स्मरण किया और बहुत दूर से बड़ी भारी आशा लगाकर आपके पास यहाँ कुरुक्षेत्र में आया हूँ। मुने! आपके लिए त्रिलोकी में कुछ भी असाध्य नहीं है। अतः आप मुझ दुखिया के दुःख निवारण का कोई उपाय करें।' विश्वामित्र जी ने कहा- राजन्! मैं तुमसे वैसा यज्ञ कराऊँगा, जिससे क्षणभर में तुम स्वर्गलोक में चले जाओगे। आओ, मेरे साथ तीर्थयात्रा के लिए चलो, जिससे चाण्डालता से मुक्त होकर यज्ञ करने के योग्य हो जाओ। यों कहकर विश्वामित्र जी त्रिशंकु को अपने पीछे-पीछे आने का आदेश दे तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। उन महात्मा के साथ तीर्थों में विचरते हुए त्रिशंकु का बहुत समय बीत गया, किन्तु वे पाप और चाण्डालत्व से छुटकारा न पा सके। क्रमशः यात्रा करते हुए वे दोनों अर्बुदाचल (आबू) के समीप आये। उस पर्वत पर चढ़कर उन्होंने पापनाशक अचलेश्वर का दर्शन किया। मन्दिर से निकलने पर वहीं मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय जी से भेंट हो गयी। विश्वामित्र जी को देखकर मार्कण्डेय जी ने पूछा- 'मुनीश्वर! इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं और आपके पीछे यह कौन दिखायी देता है?' विश्वामित्र जी बोले- मुने! ये राजाओं में श्रेष्ठ त्रिशंकु हैं। वशिष्ठ पुत्रों ने क्रोध करके इन्हें चाण्डाल की दशा को पहुँचा दिया है। मैंने इनसे प्रतिज्ञा की है कि जब तक तुम पवित्र नहीं हो जाओगे, तब तक मैं तुम्हारे साथ सब तीर्थों में भ्रमण करूँगा। मैंने पृथ्वी के सभी तीर्थों और मन्दिरों में भ्रमण कर लिया। परन्तु ये अभी तक पवित्र न हो सके। अतः अब मैं इस पृथ्वी को त्यागकर कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा।

मार्कण्डेय जी ने कहा- मुने! यदि ऐसा है, तो आप इस पृथ्वी को त्यागकर कहीं न जाइये। इस पर्वत से नैर्ऋत्यकोण में आनर्त देश के भीतर एक स्थान है, जहाँ श्रेष्ठ देवताओं ने पहले सुवर्णमय शिवलिंग की स्थापना की थी। पाताल में जो हाटकेश्वर लिंग प्रसिद्ध है, उसी के नाम पर इस शिवलिंग को भी लोक में हाटकेश्वर कहते हैं। द्विजश्रेष्ठ! वहीं पातालगंगा का जल है, जो रसातल से प्रकट हुआ है। उसी के द्वारा यत्नपूर्वक पाताल में प्रवेश करके श्रद्धापूर्वक आप लोग पातालगंगा के जल में स्नान करें। तत्पश्चात् ये त्रिशंकु हाटकेश्वर का दर्शन करके चाण्डालत्व से मुक्त एवं शुद्ध हो जायेंगे। मार्कण्डेय जी का यह वचन सुनकर विश्वामित्र मुनि त्रिशंकु को साथ लेकर वहाँ गये और पाताल में प्रवेश करके राजा को पातालगंगा के जल में नहलाया। स्नान के पश्चात् हाटकेश्वर का दर्शन करके वे चाण्डालत्व से मुक्त होकर सूर्य के समान तेजस्वी हो गये। निष्पाप होकर त्रिशंकु ने मुनिवर विश्वामित्र को प्रणाम किया। मुनि बोले- 'राजेन्द्र! सौभाग्य की बात है, जो तुम इस समय चाण्डालत्व से छुटकारा पा गये। मित्र! तुम्हारे लिए मैं स्वयं ब्रह्मा जी के पास जाकर प्रार्थना करूँगा कि वे तुम्हारे यज्ञ में यज्ञभाग ग्रहण करें अतः जब जब मैं ब्रह्मलोक से आता हूँ, तब तक तुम या के सब सामान यहीं गंगाओ।' राजा ने 'बहुत अच्छा' कहकर मुनि की आज्ञा स्वीकार की। तब वे ब्रह्मा जी के समीप जा उन्हें प्रणाम करके बोले- 'प्रपितामह! मैं राजा त्रिशंकु के द्वारा इस संकल्प से यज्ञ कराऊँगा कि वे मनुष्य-शरीर से ही आपके लोक में जा सकें। अतः आप शिव, विष्णु आदि सब देवताओं के

साथ यज्ञमण्डप में पधारें।' ब्रह्मा जी ने कहा- ब्रह्मन्! देहान्तर ग्रहण किये बिना केवल यज्ञकर्म से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। हम सब देवताओं के मुख अग्नि हैं। वेदोक्त विधि से भलीभाँति आहुति देने पर हम सब लोग यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करेंगे। अतः राजा अग्निमुख में ही आहुति दें। फिर उस यज्ञ के प्रसाद से देहत्याग के पश्चात् वे अवश्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे।

ब्रह्मा जी का वचन सुनकर विश्वामित्र जी बोले- 'अच्छा तो आप मेरी तपस्या का बल देखिये। मैं त्रिशंकु से विधिवत् दक्षिणायुक्त यज्ञ कराकर उसी के द्वारा उन्हें यहाँ ले आऊँगा।' ऐसा कहकर विश्वामित्र जी पृथ्वी पर लौट गये और महात्मा त्रिशंकु के यज्ञ को सम्पन्न करने की चेष्टा में संलग्न हो गये। यज्ञ प्रारम्भ के लिए योग्य शुभ समय आने पर उसी श्रेष्ठ वन में उन्होंने वेदों के पारंगत ब्राह्मणों को बुलाकर राजा को यज्ञ की दीक्षा दी। उस यज्ञ में वे स्वयं ही अध्वर्यु (यजुर्वेदपाठी) हुए। शाण्डिल्य मुनि होता (ऋग्वेदी) के पद पर प्रतिष्ठित हुए, महर्षि गौतम को ब्रह्मा का पद प्राप्त हुआ, मित्रावरूण कर्म में महर्षि चयवन आग्नीघ्र बनाये गये। याज्ञवल्क्य उद्गाता (सामवेदी), बैमिनि प्रतिहर्ता, शंकुकर्ण प्रस्तोता, गालब उन्नेता, पुलस्त्य जी उच्छंसी तथा मुनीश्वर गर्ग होता हुए। अत्रि नेष्टा तथा भृगुजी अच्छावाक बनाये गये। श्रद्धालु त्रिशंकु ने इन सबको ऋत्विज बनाया और स्वयं बाल कटवाकर मृगचर्म धारण किया। हाथ में हरिण का सींग लिया और दूध पीकर रहने लगे। उपर्युक्त सब महर्षियों को वरण करके उन्हें यज्ञकर्म में लगाया। इस प्रकार दीर्घकाल तक चालू रहने वाले उस यज्ञ के आरम्भ होने पर सब दिशाओं से वेद-वेदांगों के पारगामी ब्राह्मण वहाँ आने लगे। बहुत-से दीन, अन्ध, कृपण (कंगाल) गृहस्थ आये। वहाँ सब ओर अन्नमय पर्वत खड़े किये गये थे और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देने के लिए अनेक प्रकार की असंख्य वस्तुएँ संग्रह की गयी थीं। देवता अग्निमुख से राजा के हविष्य को ग्रहण करते रहे। इस प्रकार यज्ञ करते हुए राजा के बारह वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु उन्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं हुई। तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञान्त-स्थान किया तथा ऋत्विजों को यथायोग्य दक्षिणाएँ देकर तृप्त किया। ब्राह्मणों को विदा करने के पश्चात् राजा त्रिशंकु ने वहाँ आये हुए अन्य सम्बन्धियों और मित्रों को भी विदा किया। तदन्तर वे विश्वामित्र जी से बोले 'ब्रह्मन्! आपके प्रसाद से मुझे दुर्लभ फल की प्राप्ति हुई। चाण्डालता भी नष्ट हो गयी, परन्तु इसी शरीर से स्वर्गलोक नहीं मिला। केवल यही एक दुःख मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा है। मुने! अब वशिष्ठ के पुत्र यह सब बात सुनकर मेरा उपहास करेंगे। अतः अब मैं वन में रहकर तपस्या करूंगा। राज्य नहीं करूँगा।' त्रिशंकु की यह बात सुनकर विश्वामित्र जी बोले- राजन्! खेद न करो, मैं तुम्हें इसी शरीर से स्वर्गलोक में भेजूँगा। इतना कहकर विश्वामित्र ने चन्द्रशेखर भगवान् शंकर का दर्शन किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की- विश्वामित्र जी बोले- अचिन्त्य महादेव! आपकी जय हो। पार्वतीवल्लभ! आपकी जय हो! कृष्ण! जगन्नाथ! कृष्ण! जगन्दुरो! आपकी जय हो! अचिनत्य! अमेय! अनन्त! अच्युत! आपकी जय हो! अमर! अजेय! अव्यय! सुरेश्वर! आपकी जय हो! सर्वव्यापक! सर्वेश्वर! सर्वदेवाश्रय! सबके ध्यान करने योग्य शिव! आपकी जय हो! सर्वपापनाशन! आप ही धाता, विधाता, कर्ता और रक्षक हैं। देवेश! चार प्रकार के प्राणियों का कल्याण करने वाले भी आप ही हैं। जैसे तिल में तेल और दही में घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार समस्त संसार आपसे व्याप्त है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और अग्नि हैं। आप ही वषट्कार, यज्ञ तथा सूर्य हैं। अथवा बहुत कहने या स्तुति करने की क्या आवश्यकता है, प्रभो! मैं आपकी वेदवर्णित विभूति को बहुत संक्षेप में बतला रहा हूँ। भगवान्! तीनों लोकों में चर और अचर जो कुछ दिखायी देता है, सबमें आप व्याप्त हैं। ठीक उसी तरह, जैसे काष्ठ में अग्नि व्याप्त रहती है।

श्री भगवान् बोले- मुने! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो। विश्वामित्र जी ने कहा- महेश्वर! आपकी कृपा से मुझमें संसार की सृष्टि करने का सामर्थ्य हो जाय।

'एवमस्तु' कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और विश्वामित्र वहीं स्थित हो ध्यानपूर्वक चार प्रकार की सृष्टि रचने लगे। इस प्रकार जल में प्रवेश करके सृष्टिचिन्तन करने वाले विश्वामित्र ने जिन-जिन वस्तुओं की सृष्टि की, वे सब आज भी दृष्टिगोचर होती हैं। उन्होंने समस्त देवगण, नक्षत्र, ग्रह, मनुश्य, नाग, राक्षस, वृक्षयुक्त लता, सप्तर्षि और ध्रुव आदि सबकी रचना की तथा उन सबको अपने-अपने कर्तव्य कर्मों में नियुक्त किया। तब आकाश में एक ही साथ दो सूर्य और दो चन्द्रमा उदित हुए तथा अन्यान्य ग्रह भी दुगुने उत्पन्न हो गये। सप्तर्षियों सहित सम्पूर्ण नक्षत्र भी दुगुने भासित होने लगे। इस प्रकार आकाश में सभी ग्रह, नक्षत्र द्विगुण हो एक-दूसरे से स्पर्धा रखकर लोगों के मन में भ्रम उत्पन्न करने लगे। यह देख इन्द्र सब देवताओं के साथ ब्रह्मा जी के पास गये और प्रणाम करके बोले- 'सुरश्रेष्ठ! इस समय विश्वामित्र जी ने सृष्टिरचना प्रारम्भ की

है। अतः जब तक उनकी सृष्टि से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त न हो जाय, तब तक ही आप स्वयं जाकर उन्हें रोकिये।' तब ब्रह्मा जी मुनिवर विश्वामित्र के पास गये और इस प्रकार बोले- 'ब्रह्मर्षे! तुम मेरे कहने से सृष्टि-रचना का कार्य बंद करो।'

विश्वामित्र जी बोले- यदि नृपश्रेष्ठ त्रिशंकु इसी शरीर से आपके लोक में चले जायँ, तो मैं नयी सृष्टि नहीं करूँगा। ब्रह्माजी ने कहा- मुनीश्वर! मुझे स्वीकार है, ये राजा त्रिशंकु इसी शरीर से मेरे साथ स्वर्गलोक में चलें। तुम सृष्टिरचना से मुक्त हो जाओ।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी त्रिशंकु को साथ लेकर चले गये और महर्षि विश्वामित्र हर्ष में भरकर नहीं टिके रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्कन्द-पुराण में हरिश्चन्द्र को त्रिशंकु के द्वारा गद्दी सौंपे जाने का वर्णन मिलता है तथा विस्तृत रूप में हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु की कथा बड़ी मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत की गयी है।

भविष्यपुराण में हरिश्चन्द्र

भविष्यपुराण में भविष्य नाम की सार्थकता चरितार्थ हुई दीखती है। वंशानुकीर्तन सभी पुराणों का मुख्य लक्षण है- वंशानुकीर्तनं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्। यह विषय सभी पुराणों में प्राप्त होता है। भविष्यपुराण में बड़ी सावधानी से सत्ययुग, त्रेतायुग आदि के दीर्घायु राजाओं के राज्य आदि का उल्लेख हुआ है। राजा हरिश्चन्द्र सत्ययुग के कराजवंश के अन्तर्गत आते हैं। अतः भविष्यपुराण के आधार पर सत्युग के राजवंश का वर्णन निम्न प्रकार से हैः-

श्वेतवाराहकल्प में ब्रह्मा के वर्ष के तीसरे दिन सातवें मुहूर्त के प्रारम्भ होने पर महाराज वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने सरयू नदी के तट पर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या की और उनकी छींक से उनके पुत्र रूप में राजा इक्ष्वाकु का जन्म हुआ।

ब्रह्मा के वरदान से उन्होंने दिव्य ज्ञान की प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। उन्हीं की कृपा से उन्होंने छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र विकृखि हुए अपने पिता से सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार नौ सौ वर्षों तक राज्य करके वे स्वर्ग पधार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होंने भी पिता विकुक्षि से सौ वर्ष कम अर्थात् पेंतीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र ककुत्स्थ हुए। उन्होंने पैंतीस हजार सात सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए, उन्होंने पैंतीस हजार छः सौ वर्षों तक राज्य किया और उनके पुत्र विश्वगश्व हुए, उन्होंने पैंतीस हजार चार सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्व हुए, जिन्होंने पैंतीस हजार दो सौ वर्षों तक राज्य किया। राजा भद्राश्व के पुत्र युवनाश्व हुए, उन्होंने पैंतीस हजार एक सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्त हुए। (इन्होंने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी थी) उस समय सत्ययुग में समग्र भारतवर्ष में धर्म, अपने तप, शौच, दया तथा सत्य चारों चरणों से विद्यमान था। इन सभी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने उदयाचल से अस्ताचलपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रावस्त ने पैंतीस हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके कपुत्र बृहदश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार नौ सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र कुवलयाश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। महाराज कुवलयाश्व के पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैंतीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र निकुम्भक हुए, उन्होंने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् बत्तीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र संकटाश्व हुए, उन्होंने एक हजार वर्ष कम अर्थात् इकतीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया।

उनके पुत्र प्रसेनजित् हुए, उन्होंने तीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। इसके बाद रवणाश्व हुए, उन्होंने उनतीस हजार आठ सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्रगान्धाता हुए, उन्होंने अपने पिता से एक सौ वर्ष कम अर्थात् उनतीस हजार सात सौ वर्षों तक राज्य किया। महाराज गान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स हुए उन्होंने उनतीस हजार छः सौ वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र त्रिशदश्व हुए, उनके रथ में तीन श्रेष्ठ घोड़े जुते रहते थे, इसीलिए वे त्रिंशदश्व के नाम से विख्यात हुए। राजा त्रिंशदश्व के पुत्र अनरण्य के पुत्र पृषदश्व हुए, वे छः हजार वर्षों तक राज्य करके अंत में पितृलोक को चले गये। अनन्तर हर्यश्वनाम के राजा हुए, उन्होंने राजा पृषदश्व से एक हजार वर्ष कम अर्थात् पाँच हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान् हुए, उन्होंने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षों तक राज्य किया तदनन्तर उनको त्रिधन्वा नाम का पुत्र

हुआ, उसने अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षों तक राज्य किया। तब तक भारत में सत्ययुग का द्वितीय पाद समाप्त हो गया। महाराज त्रिधन्वा के पुत्र त्रयमारुणि हुए, वे अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षों तक राज्य करके स्वर्ग चले गये। उनके पुत्र त्रिशंकु हुए और उन्होंने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया।

छद्म के कारण राजा त्रिशंकु हीनता को प्राप्त हुए। उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, इन्होंने बीस हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए, उन्होंने पिता के समान ही राज्य किया। उनके पुत्र का नाम हारीत था। राजा हारीत ने भी पिता के समान ही दीर्घकाल तक राज्य किया। उनके पुत्र चंचुभूप हुए। पिता के तुल्य वर्षों तक उन्होंने राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होंने भी पिता के तुल्य वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र रूक हुए, उन्होंने भी पिता के तुल्य वर्षों तक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णु भक्त थे एवं इनकी सेवा बहुत विशाल थी। उनके राज्य में मणि स्वर्ण की समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभी को सुलभ थी। उस समय सत्युगि का पूर्ण धर्म विद्यमान था। एत्ययुक के तृतीय चरण के मध्य में राजा रूरूक के पुत्र महाराज सगर हुए। वे शिवभक्त तथा सदाचार सम्पन्न थे। उनके (एक रानी से उत्पन्न साठ हजार) पुत्र सागर नाम से प्रसिद्ध हुए। मुनियों ने तीस हजार वर्षों तक उनका राज्य-काल माना है। (कपिल मुनि के शाप से) सगर-पुत्र नष्ट हो गये दूसरी रानी से असमंजस नाम का एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अंशमान हुए। उनके दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, जिनके द्वारा पृथ्वी पर लायी गयी गंगा भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हुई। भगीरथ के कपुत्र श्रुतसेन हुए। महाराज सगर से श्रुतसेननत के पुत्र नाभाग तथा नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीश अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णुभक्त हुए, जिनकी रक्षा में सुदर्शनचक्र रात-दिन नियुक्त रहता था।

भारत में सत्ययुग का तीसरा चरण समाप्त हो चुका था। सत्ययुग के चतुर्थ चरण में महाराज अम्बरीश के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुताश्व, अयुताश्व के पुत्र ऋतुपर्ण, उनके पुत्र सर्वकाम तथा उनके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपाद के पुत्र सुदास को वसिष्ठ जी के आशीर्वाद से भदयन्ती से उत्पन्न अश्मक (सौदास) नाम का पुत्र प्राप्त हो सकेगा? सौदासतक के ये सात राजा वैष्णव कहे गये हैं। गुरु के शाप से सौदास ने अंगोसहित अपना सम्पूर्ण राज्य गुरु को समर्पित कर दिया। गोकर्ण लिंग-भक्त शैव कहा जाता है। राजा अश्मक के पुत्र हरिवर्मा साधुओं के पूजक थे। उनके कपुत्र दशरथ (प्रथम) हुए, उनके कपुत्र दिलीप (प्रथम) हुए, उनके पुत्र विश्वसह हुए, उन्होंने दस हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके अधर्म आचरण के कारण उस समय सौ वर्षों तक भयंकर अनावृष्टि हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और रानी के आग्रह करने पर महर्षि वसिष्ठ ने यत्नकर यज्ञ के द्वारा खट्यांग नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा खट्यांग ने शस्त्र धारण कर इन्द्र की सहायता से तीस हजार वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर देवताओं से वर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके पुत्र सुदर्शन हुए। महामनीषी सुदर्शन ने राजा काशीराज की पुत्री से विवाह कर देवी के प्रसाद से राजाओं को जीतकर धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भरतखण्ड पर पाँच हजार वर्षों तक राज्य किया।

एक दिन स्वप्न में महाकाली ने राजा सुदर्शन से कहा- 'वत्स! तुम अपनी पत्नी के साथ तथा महर्षि वसिष्ठ आदि से समन्वित होकर हिमालय पर जाकर निवास करो, क्योंकि शीघ्र ही भीषण झंझावात के प्रभाव से भरतखण्ड का प्रायः क्षय हो जायेगा। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं के अनेक उपद्वीप झंझावातों के कारण समुद्र के गर्त में विलीन से हो गये हैं। भारतवर्ष में भी आज के सातवें दिन भीषण झंझावात आयेगा।' स्वप्न में भगवती द्वारा प्रलय का निर्देश पाकर महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओं, वैश्यों तथा ब्राह्मणों और अपने परिकरों के साथ हिमालय पर चले गये और भारत का बड़ा सा भू-भाग समुद्री-तूफान आदि के प्रभाव से नष्ट हो गया। सम्पूर्ण प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। पुनः कुछ समय के अनन्तर भूमि स्थल रूप में दिखलायी देने लगी।

संदर्भ-सूची :

1. सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः।
वरूणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो।।
यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति।
तथेति वरूणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः।।
2. भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषवणैः।

रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत् समाम्।।

3. विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशंकुर्दि विराजते।
देवौः सार्द्धं महातेजानुग्रहातस्य धीमतः।
शनैर्याव्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता।
अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशंकुग्रह भूषिता।
तस्य सत्यरता नाम भाद्यर्याकैकयवंशजा।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम्।।
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः।
आहर्त्ता राजसूयस्य समाडिति परिश्रुतः।।
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितोनाम वीर्यर्यावान्।
हरितो रोहितस्याम चंचुहारीत उच्यते।।

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

रमणिका गुप्ता की कविताओं में आदिवासी जीवन

अनिल कुमार
शोध–छात्र स्नाकोतर (हिन्दी विभाग)
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा (बिहार)

रमणिका गुप्ता का आदिवासियों के जीवन से गहरा संबंध रहा है।वे उनके जीवन से काफी प्रभावित रही है।उन्होने उनके जीवन के लगभग सभी पहलुओं को काफी नजदीक से जाना –पहचाना है यहीं कारण है कि इन्होने आदिवासीं जिवन पर आधारित 'आदिवासी कविताएं' नामक काव्य–संग्रह का प्रणयन किया है इस पुस्तक के सम्बंध में मदन कश्यप ने लिखा है– रमणिका गुप्ता हिन्दी की उन कुछ कवियों में है जिन्होने आदिवासी समाज की समृद्व सांस्कृतिक परंपरा और संर्घष को समझने का लगातार प्रयत्न किया है। बल्कि वे शायद हिन्दी की अकेली गैर आदिवासी रचनाकार हैं; जिन्होने झारखण्ड के आदिवासियों केसाथ कदम से कदम मिलाकर लडाइयॉ लडी है, जेल गई है; माफिया से मुकाबला किया है और अपने अनुभवों को कविता मे ढाला है। फलतः नये यथार्थ के चित्रण, नये जीवन संदर्भो के उदघाटन और कहीं–कहीं नई तरह की भाषा के प्रयोग के चलते, उनकी ये कविताऍ पाठको को आकर्षित करती है और विशेष भूखण्डों के विशेष समय खण्ड में चली आ रही जीवन की हलचलों से अवगत कराती हुई कई कथाएं, कई संस्मरण भी सुनी जाती है'– जो विरल है। उनके अनुभव संसार में मध्यवर्गीय विसंगतियों के लिए बहुत कम जगह है, वे आदिवासी समूहों और सदानों (झारखंडों की अर्द्व आदिवासी पिछडी जातियों) के जीवन में इस हद तक गहरी धंसी हुई हैं कि स्वयं को उसका ही एक हिस्सा मानती है। खास बात यह है कि जीवन को देखने का उनका दृष्टिकोण भी इन आदिवासी अनुभवों से निर्मित हुआ हैं और इसलिए वे देश और दुनिया के सभी क्षेंत्रों के आादिवासी समूहों के दुख–दर्द को भी महसूस करती है।'[1]

इन कविताओं के सबंध में विपिन चौधरी ने अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा है–'आदिवासी अस्मिता के सवालों को कविता का रूप देकर अनेक कविताएं चली। रमणिका जी की प्रकाशित व अप्रकाशित कृतियों से अभी चन्द कविताएं ही चयनित की है। ये कविताएं आदिवासी सरोकारों को विविध आयाम देती है। झारखण्ड, छतीसगढ,मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र ,गुजरात व पूर्वोतर के मेघालय ,मणिपुर, नागालैंड ,मिजोरम, अरूणाचलप्रदेश, त्रिपुरा सिक्किम, लद्वाख तथा दक्षिण में स्थित निलगिरि व ऊटी जैसे दुर्गम स्थानों पर रहने वाले आदिवासी भारतीय संस्कृति का बेशकीमती हिस्सा है। उनके जीवन व संर्घष को जुबान देती हुई सहज बोली में लिखी गई ये कविताएं, पाठकों को बांधती है, बींधती है और सोचने को मजबूर करती है।

आज समूची दुनिया मे मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूकता का डंका बज रहा है लेकिन आदिवासी संस्कृति व भाषाएं लुप्त होती जा रही है, बार–बार इन कविताओं को पढतें हुए यह अहसास पाठक के अंर्तमन से टकराता है।

आज खतरे में हैं उनकी समता–मूलक लोकतांत्रिक, स्वायतता–परक, आजाद व मुक्त संस्कृति, उनकी सामूहिक जीवनशैली, उनके जंगल, उनकी जमीन और उनकी अस्मिता और अस्तित्व। देश की नई–पुरानी पीढी असम के बाद वालें पूर्वोतर के न तो राज्यों के पहचानती है, न ही वहॉ रहने वालें आदिवासियों को। उनकी पहचाने उनके मूल्य, उनके जीवट व संकल्प और संघर्षो से परिचित कराती ये

कविताए , पूरे देश के साथ उनके दर्द का रिश्ता जोडने की पुरजोंर कोशिश है। एक अजानें, अचीन्हें भारत का दरवाजा खोलती है ये कविताएं।'[2]

रमणिका गुप्ता ने आदिवासियों के जीवन–स्तर को उचां उठाने के लिए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया साथ ही साहित्य में भी उचित सम्मान देकर उनपर केन्द्रित साहित्य लिखा। अपनी पत्रिका 'युद्धरतआम आदमी' में उन्होने आदिवासी विशेषांक निकाला। इस तरह आदिवासी जिवन की अनेक गतिविधियों को स्थान देकर इन्होने उनकी भावनाओं और मान्यताओं से साहित्य–जगत को अवगत कराया। 'प्रकृति युद्धरंत है'नामक कविता–संकल्न में 'भाग्य का बन्धुआ' कविता में एक आदिवासी आप बीती सुनाते हुए कहता है–

'भाग्य से जनमा हूँ
भाग्य से जीता हूँ
भाग्य मरता हूँ
मै भाग्य का बन्धुआ हूँ
दूर कहीं दूर जहाँ रास्ते खत्म हो गये
जहाँ जंगलों में
मानव और वन्य–पशु एक हो गये
मै अधडंका–सा कुछ खाये
कुछ भूखा–सा
संस्कृतिकी डाँडी पर
धर्म की डोली मे सम्यता की अनदेखी
अनछुई दुल्हन
को बिना छुए सदियों से ढोता हूँ
मैं भाग्य का बन्धुआ हूँ। '3

वह अपने भाग्य को कोसते हुए कहता है कि मै सर्दी, गर्मी , बरसात हर समय शीत अथवा ताप सहता रहता हूँ। धरती का नंगा तन मिहनत करके ढँकता हूँ, फिर उसी की कोख से अन्न उपजाता हूँ। अपने हाथों से कोठी में अनाज भरता हूँ। मैं सबकुछ करता हूँ। लेकिन उसका उपभोग नहीं कर सकता , फिर भी अपने आप में सन्तुष्ट रहता हूँ क्योंकि मैं भाग्य का बन्धुआ हूँ। बेड़ियों से प्यार करता हूँ। नामक कविता में आदिवासी कहता है कि मेरे पास गॅवानें के लिए कुछ भी नहीं है। अपनी बेडियॉ, गुलामी , भूख अथवा लाचारी के सिवा। मै हमेंशा–हमेंशा से गुलाम रहा हूँ। मै गरीब हू, इसलिए ऐसा बनना मेरी लचारी है। मै इसे भाग्य का खेल समझता हूँ कि भगवान ने मुझे इसी रूप मे बनाया है–

'इसलिए मै चुप हूँ
लाचार हूँ
मजबूर हूँ
पर संतुष्ट हूँ
और सहता हूँ सदियों से
सिर झुका कर हँस कर–
वरदान समझकर
भाग्य के अत्याचारों को
जुंल्मो को
और दुआ देता हूँ

दाता कों
भगवान को
कि मुझे सब सहने की शक्ति दी उसने
इसीलिए मै। बिद्रोंह नहीं करता
बस सहता हूँ
अगले जन्म में
बडे. घर में
जन्म लेने की प्रतीक्षा करता हूँ
दास रखने की तमन्ना पालता हूँ।'[4]

आदिवासी मुख्य रूप से जंगल, पहाडों एवं घाटियों मे रहते हैं। इन्ही के बीच इनका रोजी–रोजगार चलता है। अधिकांश आदिवासी कोयला की खदानों में काम करते हैं। 'कोयला' नामक कविता में वह अपने बारे में कहता है कि मैं मेहनत कश मजदूर की भूख का उपचार हूँ। उपहार भी हूँ। तुम सब अपने पसीने से मेरी कालिख धोते हो और खुद काला बन जाते हो। इसके अलावे वह ऐसे मजदूरों के सम्बंध में कहता है–

खुद अंधेरे में रहता है तू
मेरी ही तरह काला तू।
तू पैदा करता है– पर भूखा है–
तू ऊर्जा का निर्माता है–
रोशनी का दाता है
पर तेरा दिमाग रोशन नहीं
तू पानी–पानी हो जाता है
बात–बात पर
आन–बान पर
पर बिना पानी मर जाता है।
ऐ आदिम,ऐ मेहनतकश,
तुझमें आब , मुझमें आग
आ हम दोनो मिल कर
कालिख धो ले
आ, हम लडे–
अपने व्यापारियों के खिलाफं
मत्स्य–न्याय के खिलाफ
पत्थरी–परम्परा के खिलाफ
आ,हम दानों मिलकर खत्म करें उन्हें
जो अपनी प्रभुता के लिए
तुझे गुलाम बनाते है।'[5]

आदिवासी जनों को लगता है कि धरती के अन्य लोगो ने हमे प्यार–दुलार नहीं दिया है। 'तनी प्यार दो' नामक कविता में वे प्यार की याचना करते हुए कहते हैं कि यदि तुम थोडा प्यार करोगे तो हमारे जीवन मे उल्लास का क्षण आ जाएगा, हम फिर से चहक उठेंगे। हमें जो जीने का अधिकार मिला है वह हम पाना चाहतें है। इसलिए तुम सबों से आाग्रह है कि यदि तुम हमारा सम्मान

करोगे तो हम उत्साहित हो उठेंगे। फिर आदिवासी अपनी भीतरी इच्छाओं को व्यक्त करते हुए कहता है–

'तनी सींच दो
विहँस उठेंगे हम तनि कोडों तो–
फुनग उठेंगें हम
उगना है अधिकार हमारा
जीने भर आहार दो
पुहुप उठेंगें हम
तनी प्यार दो
दमक उठेंगे हम
तनी ज्ञान दो
चमक उठेगे हम
शिक्षा है अधिकार हमारा
शिक्षा को सरोकार दो
दहक उठेंगे हम।'[6]

'एक मरा–मरा गुमशदा बचपन' नामक कविता में एक आदिवासी बालक का मनोभाव व्यक्त हुआ है जिसमें वह कहता है कि पिता तुमने बचपन से ही हमें मजदूरी करने के लिए विवश कर दिया। हमने जितना कमाया उससे मेरे भाई–बहनों का पेट भरा। जब–जब मेरी माँ बीमार होती रही उसी पैसे से दवाईयाँ खरीदी गई। जाडे के समय में जो दादी की रजाई बनी थी वह मेरे ही पैसे से बनी। हम कमाकर सबकी जरूरतों को पूरा करते रहे। इससे सबके भीतर खुशियों का संचार होता रहा। आदिवासी बालक जिन–जिन स्थानों पर जाकर काम किया है उसमें एक है गाँव के बाहर जाकर गाय चरानां। वह जाने से लेकर उस समय तक रहने की स्थिति को निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त करता है–

'जब तुम मेरे हाथ में
गडेरिये की वंशी थमा कर भेज देते थे
गाँव के डाँगर चराने
जब मुझे अपने साथ ले जाते थे जमींदार के खेत
बेगारी खटवाने
मैं
जुडा रहा अपने गाँव से घर–परिवार से
बाप का साया माँ का अँचरा
बहिन का धागा
भाई का जोडीदार–सा हौसला
सुरक्षा कवच–सा घेरे रहा मुझे
रिश्तों की गरमी देती रही गरिमा।'[7]

'पिछडे' नामक कविता में एक आदिवासी कहता है कि हमलोगों ने आजीवन कमरतोड, मिहनत किया है,अपनी उन्नति के लिए कठिन श्रम करते रहे इसके बावजूद भी हम सभी पिछडे हैं इन पंक्तियों में यह भाव व्यक्त हुआ है–

'हम पिछडे थें
जमाने की भाग–दौड़ मे

कमरतोड़ मेहनत में
भले तिकड़म में पीछे थे
अब तो अगड़ो के साथ
प्रतियोगिता मे
हम पिछड़े बन गए हैं
पिछड़ा ही बने रहना चाहते हैं शायद
पिछड़ा बने रहने की आपाद्यापी में
अपने पीछे खड़ें
अपनों को ही रौंदते चल रहे हैं हम।'[8]

'आदिवासी ने तीर क्यो चलाया' कविता का भाव यह है कि आदिवासी ने यह महसूस किया कि मेरा कई तरह से शोषण किया जा रहा है । किसान का बेटा हमें कुछ नहीं समझता यही कारण है उसने ट्रैक्टर के ड्राइवर पर निशानासाधा। उसके तीर चलाते ही यह बात चारो ओर हवा मे बिखर गई ।हर ओर से यह सवाल उठकर आने लग कि आखिर आदिवासी ने तीर क्यों चलायां इसपर लोगों की कई तरह की प्रतिक्रियाये आने लगीं फिर–

'बहस–मुबाहिसा बन भिड़ गया
टोला–टोला, गाँव–गाँव
नगर–नगर लगे गर्माने
खून बिखर कर धरती पर
लगा खोलने तीर के भेद
ड्राइवर
पक्षधर लुटेरो का उन्हीं की जमात का
हथियार
जात और मजहब में जकडा
एक गुलाम।'
धरती के वक्ष पर बिखर गई माटी–सी हकीकत
लुटेरे जमींदार ने
सलाह लेकर अपनी जमात से
बुलायी थी अपनी जात–
जो उसी पर थी आश्रित
लुटती, रोज उसी के हाथों!
डसी दिन उठ खडी हुई
जात और मजहब के नाम पर
चल पडी अपनी जमात को जिन्दा जलाने।'[9]

'पहल की प्रक्रिया कहॉ से शुरू होगी?' नामक कविता में आदिवासी जनों के अनुभवों को व्यक्त किया गया है। आदिवासी यह जानते हैं कि हमारे दोस्त जिस मीठी भाषा का प्रयोग करते है वहीं हमारे साथ दुश्मनी भी करते है। जब भी कोई आदिवासी उसके भाव को समझकर बोलने लगता है, वह मारा जाता है। आदिवासियों के ऊपर पूरा सरकारी महकमा, पूरा समाज, कई जमात के लोग टूट पड़ते हैं जिसके कारण हत्या जैसी घटनाओं को अंजाम दिया जातां है। वे सभी ऐसा करके भी कानून की नजर में अपराधी नही होते। मुंसिफ जब सवाल उठाता है कोई आदिवासी एक ही जवाब देता है। वह सच

की गुहार लगाता है उसकी दुहाई देता है लेकिन उसे किसी तरह का न्याय नहीं मिलता। उसकी दशा दयनीय बनकर रह जाती है जैसा कि इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है–

'सच गुहार लगाता है–
पहल जमींदार ने की
जब जमीन लूटी थी उसकी
पहल जमींदार के बाप ने की
जब उसके बाप से ठगी थी जमीन।
पर कानून और समाज दोनों ही
फेरे लेते हैं मुँह–
अप्रासंगिक कह कर
नजर अन्दाज कर देते हैं सच का तर्क
सच चिल्लाता है–पूछता है–
झूठी गवाही की पहल
किसने की?
किसने की थी पहल
आदिवासी के खिलाफ?
सब के सब मुस्कुराने लगते हैं
सच को
मूरख–पागल–सेन्टीमेण्टल ठहराने लगते हैं।'[10]

आदिवासी पहल पर सवाल उठाता है कि कौन इन सब चीजों के लिए पहलकरे। इतिहास भी सही नहीं होता वह अनेक जगहों पर सच को झूठ बताता रहता है ऐसा संदेश देता है कि तुम आगे बढ़ने की जुर्रत मत करना। आदिवासी जिसे सच मानते हैं उसके प्रति वे कहते हैं कि कौनपहली बार पहल करेगा। ये पंक्तियाँ इस भाव को उजागार करती हैं–

'पर आदिवासी के कण्ठ में
बैठा सच
पूछ रहा है बार–बार
कब से शुरू होगी प्रक्रिया
पहल को पकड़ने की
कहाँ से शुरू होगी
अंजाम से या
आगाज से?
परिणाम से
या कारण से
जिस दिन तीर चला
खून बहा
या जिस दिन छीना था खेत जमींदार ने
या जिस दिन कोर्ट ने गलत फैसला सुनाया था?
जिस दिन से
पर
उत्तर नहीं दिया किसी ने अभी तक उस सवाल का

चुप हैं सभी
शायद उत्तर नहीं हैं
या देना नहीं चाहते वे उत्तर।'[11]

इस तरह रमणिका गुप्ता के सर्म्पूण साहित्य में आदिवासी के जिवन बहुविध रूपों मे व्यक्त हुआ जिससे सर्म्पूण आदिवासीयों के जीवन को सहजता से परखा जा सकता है।

संदर्भ–सूची :

1. आदिवासी कविताएं–भूमिका–रमणिका गुप्ता–बोधि प्रकाशन जयपुर–2016–पृष्ट सं0–01
2. आदिवासी कविताएं–भूमिका–रमणिका गुप्ता–बोधि प्रकाशन, जयपुर–2016 पृष्ट सं0–01
3. प्रकृति युद्धरत है–(भाग्य का बंधुआ) रमणिका गुप्ता–नवलेखन प्रकाशन, मेन रोड़ हजारीबाग–1988–पृष्ठ सं0–02
4. प्रकृति युद्धरत है–(बेड़ियो से प्यार करता हूँ) रमणिका गुप्ता–नवलेखन प्रकाशन, मेन रोड़ हजारीबाग–1988–पृष्ठ सं0–03
5. कोयले की चिंगारी–(कोयला) रमणिका गुप्ता–समीक्षा पब्किेशन्स,दिल्ली–2018– पृष्ठ सं0–03
6. कोयले का चिंगारी–(तनी प्यार दो) रमणिका गुप्ता– समीक्षा पब्किेशन्स,दिल्ली–2018–पृष्ठ सं0–04
7. कोयले का चिंगारी–(एक मरा–मरा गुमशुदा बचपन) रमणिका गुप्ता– समिक्षा पब्किेशन्स,दिल्ली–2018–पृष्ठ सं0 –04
8. कोयले का चिंगारी–(पिछड़े) रमणिका गुप्ता– समिक्षा पब्किेशन्स, दिल्ली–2018–पृष्ठ सं0–05
9. कोयले का चिंगारी–(आदिवासी ने तीर क्यों चलाया) रमणिका गुप्ता– समीक्षा पब्किेशन्स, दिल्ली– 2018–पृष्ठ सं0–05
10. कोयले की चिंगारी–(पहल की प्रक्रिया कहाँ से शुरू होगी) रमणिका गुप्ता–समीक्षा पब्किेशन्स, दिल्ली–2018–पृष्ठ सं0–06
11. कोयले की चिंगारी–(पहल की प्रक्रिया कहाँ से शुरू होगी) रमाणिका गुप्ता–समीक्षा पब्किेशन्स, दिल्ली–2018–पृष्ठ सं0–07

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

महावीरचरितम् के नारीपात्र (नायिका) का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ0 सुधा कुमारी
पूर्व शोधच्छात्रा,
संस्कृत विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

'महावीरचरितम्' नाटक में प्रदर्शित कुल 30 पात्र हैं। पात्रों की इस विशाल संख्या में मुख्य पात्र, सहायक पात्र और लघु पात्र सभी सम्मिलित हैं। इन पात्रों में मुख्य पात्र केवल चार–राम, परशुराम, विश्वामित्र और माल्यवान् हें। इन्हीं चारों पात्रों के आस–पास ही सम्पूर्ण नाटक का कथानक संगमित होता है। अन्य पात्र इनके ही क्रियाकलापों और विचारों की पूर्ति के लिए साधक बनकर नाटक के प्रांगण में अवतरित हुए हैं।

यद्यपि महावीरचरितम् में नारी पात्रों की संख्या कम है फिर भी सीता, अरुन्धती, मन्दोदरी, सूर्पणखा, त्रिजटा और श्रमणा पृथक–पृथक वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। न तो सीता और मन्दोदरी को एक साथ रखा जा सकता है, न अरून्धती और श्रमणा को एक पंक्ति में बिठाया जा सकता है। शूर्पणखा और त्रिजटा का अन्तर भी इसी प्रकार से स्पष्ट है। इस प्रकार सम्पूर्ण महावीरचरितम् में 24 पुरुष–पात्र और छः स्त्री–पात्र हैं। पुरुष–पात्रों की तुलना में स्त्री–पात्रों की संख्या बहुत कम 1/4 है। इनका अनुपात पुरुष 4:1 स्त्री है। सम्पूर्ण नाटक में गद्य और पद्य को मिलाकर लगभग 260 पंक्तियाँ मात्र स्त्री–पात्रों द्वारा बोली गई और लगभग 1765 पंक्तियाँ पुरुष–पात्रों द्वारा कथित है। अर्थात् पुरुष–पात्रों द्वारा 1505 पंक्तियाँ अधिक सम्वादित हैं। यह सत्य है कि वीर रस प्रधान नाटक में स्त्री तत्व की आवश्यकता अधिक नहीं होनी चाहिए इसका पूरा ख्याल भवभूति ने रखा है।

सीता :

वीररस प्रधान नाटक में स्त्री–पात्रों की बहुलता नहीं होती और कवि को इतना अवकाश भी नहीं मिल पाता कि वह उनके चरित्र–चित्रण का अधिक विस्तार कर सके। यही कारण है कि नाटक की नायिका सीता के चरित्र का क्रमिक विकास यहाँ परिलक्षित नहीं होता। उन्हीं के द्वारा कहे गये कुछ अंशों या वाक्यों के आधार पर उनके चरित्र की रूपरेखा अंकित की जा सकती है।

'महावीरचरितम्' की नायिका सीता की गणना स्वकीया नायिका की श्रेणी में की जाती है। स्वकीया नायिका के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं। यह नायक राम की विवाहित पत्नी है। केवल नाटक के प्रथम अंक में राम द्वारा धनुष तोड़े जाने से पूर्व तक वह कन्या के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उसके बाद वह सर्वत्र ही स्वकीया नायिका के रूप में विद्यमान है। वह शील, लज्जा आदि गुणों से सम्पन्न है। अर्थात् वह पतिव्रता, सच्चरित्रा, अकुटिता, सलज्जा तथा विनम्रा है। प्रारम्भ से ही उसे राम से प्रेम है। प्रथम अंक में जब वह विश्वामित्र के आश्रम में राम को देखती है, तब वह कहती है ''सौम्यदर्शनोऽयम्''[1] यही कोमलभाव स्नेह का रूप प्राप्त कर लेता है। जब राम को ताड़का–वध के लिए विश्वामित्र आज्ञा देते हैं। तब वह कह उठती है– ''हा धिक् एष एवात्र नियुक्त''[2] सीता का यही स्नेह विवाह के पश्चात्

उद्दीप्त प्रणय का रूप धारण कर लेता है। सीता राम को किसी भी आपत्तिजनक कार्य में जाते देख घबरा उठती हैं। परशुराम की क्रूर–प्रकृति से परिचित सीता राम को उनसे मिलने देना नहीं चाहती है यथाशक्ति वह स्वयं रोकती है, सखियों के समक्ष संकोच को तिलांजलि देकर राम को पकड़[3] लेती है। इस प्रकार सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम दृष्टिगोचर होता है जिससे उनका प्रतिव्रता, अकुटिला तथा विनम्र होना सिद्ध होता है। उसके व्यवहारों में सर्वत्र नम्रता ही दृष्टिगोचर होती है। कुटिलता तो उनके सम्पूर्ण चरित्र में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

सीता पूर्ण सच्चरित्रा है। नाटक के सप्तम अंक में देवगण उनका अभिनन्दन तथा सच्चरित्रा होने के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से अनुमोदन करते हैं।[4] वे घोषणा करते हुए कह रहे हैं कि ''सीता अग्नि में प्रविष्ट होकर शुद्धता का परिचय दे चुकी है। अतः हे रघुनन्दन! संसार की मर्यादामयी सीता का आप आदर करें।'' देवगण स्वयं जिसके आचरण के विषय में साक्षी होकर घोषणा करते हैं, उसको पूर्ण सच्चरित्रा कहना पूर्णरूपेण उपयुक्त ही है।

सखियों के इस कथन से कि ''उद्धर्तितमिदानी प्रियसखा रसान्तरेण लज्जालुत्वम्''6 हमारी प्रिय सखी की लज्जा ही सिद्ध हो रहा है।

वह राजकुमारी होने से कुलीन है। उसमें नायिका के भी प्रायः सभी गुण विद्यमान है। उपर्युक्त विशिष्ट गुणों तथा विशेषताओं से समन्वित होने के कारण उनको स्वकीया नायिका की श्रेणी में रखना उपयुक्त ही है।

विवाह के माङ्गलिक कार्य समाप्त होते ही उनकी कठोर परीक्षा आरम्भ हो जाती है। राम वनगमन की तैयारी करने लगते हैं। सीता को यह जानकर बहुत प्रसन्नता होती है कि उनके पिता ने उन्हें राम के साथ जाने की स्वीकृति दे दी है। उनके जीवन की करुण–कथा का विस्तार कल्पना सीता कर ही नहीं सकती थी। लङ्का से लौटते समय उन स्थानों को देखकर जहाँ उनके विरह में राम ने विलाप किया था, वे कहती हैं– ''अहो कितने दुःख की बात है कि मुझ मन्दयागिनी के कारण इन्हें इतना कष्ट उठाना पड़ा'' सारा दोष अपने ही ऊपर लेने की उदारता सीता ने अन्यत्र भी दिखाई है। जब लक्ष्मण ने उन्हें वह स्थान दिखाया जहाँ जटायु ने अपने शरीर का परित्याग किया था, तबभी वे कहती हैं– ''अरे मेरे ही कारण ऐसे महात्मा की ऐसी दशा हुई।''

इस प्रकार इस नाटक में सीता के स्वभाव की कोमलता और उदारता के अतिरिक्त अन्य गुणों पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सका है। उनका पति–प्रेम प्रारम्भ से ही स्पष्ट होने लगा था और यथोचित स्थानों पर उनकी पति–भक्ति पूर्णतया व्यक्त होती चलती है। वस्तुतः पातिव्रत ही सीता का वह सर्वोच्च गुण है जिसके कारण वे संसार में पूजनीया बनी हैं।

मालतीमाधवम् के नारी–पात्र (नायिका) और उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण–

मालती–

''मालतीमाधव' प्रकरण की नायिका ''मालती'' है जो शास्त्रीय दृष्टिकोण से कन्या परकीया नायिका की श्रेणी में आती है। वह स्त्री पात्रों में सबसे प्रधान है। प्रकरण का सारा इतिवृत्त उसी पर केन्द्रित है। मालती में स्त्रियोचित सभी गुणों का सद्भाव है। वह सौन्दर्य का चरमनिधान, गुणों का आश्रयभूत तथा शील–संकोच की प्रतिमूर्ति है। उसके सौन्दर्य का वर्णन माधव ने बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है–

सा रामणीयकानिधेरधिदेवता वा
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे! नियतमिन्दुकलामृणाल–
ज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः।।[6]

अर्थात् हे मित्र! वह मालती सौन्दर्यराशि की अधिदेवता है अथवा सौन्दर्यसार के समुदाय का निकेतन है। उसके निर्माण में निश्चय ही चन्द्रकला, मृणाल, ज्योत्स्ना आदि कारण थे तथा निर्माता स्वयं कामदेव थे।

मालती की शरीरकान्ति लोध्रपुष्पों की भाँति है, आँखें मृगी की आँखों की भाँति, गति गजगमन की भाँति है तथा लताओं की नम्रता की भाँति उसके शरीर में नम्रता है। वस्तुतः वन में जो गज आदि हैं उन्होंने तत्तत् विषयों को मालती से ही तो ग्रहण किया है–

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्ति
दृशः कुरङ्गेषु, गतं गजेषु।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य
व्यक्तं विभक्ता विविने प्रिया मे।।[7]

मालती में माधव के प्रति यद्यपि प्रगाढ़ प्रेम है और अन्तिम समय में भी वह उसी का स्मरण करना चाहती है, पर गुरुजनों और माता–पिता के प्रति उसके हृदय में महान् सम्मान है। यद्यपि उसे यह पसन्द नहीं है कि उसका पिता मात्र राजा के अनुरञ्जन के लिए उसको बूढ़े नन्दन के हाथ सौंप दे पर इस पर भी वह कभी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती। उसे माधव के प्रति आसक्ति है, पर फिर भी उसे अपने कुल और माता–पिता का ध्यान हैं वे प्रशंस्य है। उसे अपने दुःख का उनकी प्रसन्नता के सामने ध्यान नहीं।

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी
दहतु मदनः किवा मृत्योः परेण विधास्यतः।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न त्वेयायं जनो न च जीवितम्।।[8]

मालती के चरित्र की यह शालीनता कराला मन्दिर के इतिवृत्त तथा कामन्दकी के द्वारा माधव के लिए मालती के समर्पण में भी दृष्टिगत होती है। प्रेम तथा माता–पिता के प्रति श्रद्धा और कर्त्तव्य में सर्वत्र संघर्ष है। हम सर्वत्र देखते हैं कि माता–पिता की इच्छाओं के विरूद्ध कहीं भी वह माधव के हाथ अपने को समर्पित करने के लिए नहीं कहती। इतिवृत्त इस प्रकार उन्मुख होता है कि अन्ततः उसका माधव के साथ परिणय हो जाता है परन्तु इसमें उसकी कहीं भी सक्रियता नहीं। कामन्दकी नन्दन के साथ मालती का विवाह उसका पिता कर रहा है और वह भी मात्र राजा के अनुरञ्जन के लिए, यह सुनकर तथा प्राचीन काल में कन्याओं ने अपने प्रियतमों को अपनी पिता की स्वीकृति के बिना भी समर्पण कर दिया था यह सुनाकर मालती को प्रेरित करती है कि वह माधव के साथ विवाह कर ले।

पर मालती की इस विषय में मौनता उसके चरित्र्य की परिकाष्ठा है। यहाँ पर भवभूति ने मालती के चरित्र के विशेष सावधानी तथा चतुरता के साथ खड़ा किया है।

मालती का अपनी सखियों के प्रति व्यवहार भी उसके चारित्र्य की विशेषता है। लवङ्गिका उसकी अंतरंग सखी है। उससे वह अपने मनोगत भावों को निःसंकोच होकर सुनाती है। माधव के प्रति अपनी अनुरक्ति को वह बिना किसी संकोच के लवङ्गिका को बताती है। लवङ्गिका के कुशल–क्षेम के विषय में भी वह चिन्तित रहती है। जब नन्दन के घर से लवङ्गिका को आने में विलम्ब होता है और उसका कोई समाचार नहीं मिलता तो वह व्याकुल हो जाती है। माधव की प्रणय कहानी भी उस समय उसे अच्छी नहीं लगती।

रूप और यौवन से सम्पन्न मालती का सुकुमार हृदय भवन–वल्लभ के नीचे राजमार्ग पर बार–बार संचरण करते हुए माधव को, जो साक्षात् कामदेव के समान प्रतीत होता था, देखकर उसके प्रति अनुरागवान् हो गया। प्रगाढ़ उत्कण्ठा ने मालती के हृदय को आन्दोलित कर दिया और उसकी अङ्गलतिका 'परिमुदित मृणाली' के समान म्लान हो गई। मदनोद्यान में माधव को समीप से देखने का अवसर उसे प्राप्त हुआ। अपनी स्वाभाविक लज्जाशीलता के कारण वह हृदय के भावों को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती थी, अतः केवल नेत्रों द्वारा ही उसने अपने 'बहुदिवसोपचीयमान' प्रेम को अभिव्यक्त कर दिया। मालती की यह प्रेम–पूर्ण दृष्टि माधव के हृदय पर गहरा प्रभाव करने के लिए पर्याप्त थी।

जहाँ एक ओर मालती का चरित्र भारतीय कन्या का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है, दूसरी ओर वह मुग्धाप्रेमिका के रूप में भी आदर्श है। अनजाने ही वह अपना हृदय माधव को दे चुकी है। प्रेम की तीव्रता के कारण प्रियतम का वियोग उसे असह्य हो गया है। नृत्य, गीत आदि से वह विरक्त हो गई है और रात्रि के सुदीर्घ प्रहरों को जागकर ही व्यतीत करती है। चन्द्र की शीतल किरणों उसे ज्वालाओं के समान प्रतीत होती है। मदन उसे जला रहा है। इस प्रकार वियोग की असह्य वेदनाओं को सहन करते हुए भी वह सदा अपने प्रियतम के सुख की कामना करती है। जब कामन्दकी विरह–व्यथा की तीव्रता के कारण माधव के जीवन के प्रति आशंका व्यक्त करती है तब मालती भयभीत हो उठती है। माधव द्वारा महामांस–विक्रय का कारण बताये जाने पर उसे यह सोचकर खेद होता है कि उसी के कारण उसके प्रियतम को इस प्रकार अपने जीवन से निरपेक्ष होकर श्मशान के भयावह वातावरण में परिभ्रमण करना पड़ रहा है। अघोरघण्ट के क्रोधपूर्ण वचनों को सुनकर तथा उसकी दारूण आकृति को देखकर वह माधव को लौट जाने के लिए अनुरोध करती है। नगर–देवता के मन्दिर में वह लवङ्गिका से आग्रहपूर्वक अभ्यर्थना करती है– ''प्रियसखी! मेरे मरणोपरान्त तुम सदैव ऐसा प्रयत्न करती रहना जिससे मेरे प्रिय मेरा स्मरण कर व्यथित न हों और मेरे कारण अपनी लोकयात्रा को शिथिलन कर दें।'

माधव के प्रति मालती का अतिशय प्रेम किसी भी अवस्था में शालीनता की सीमा का उल्लंघन नहीं करता। नगर–देवता के मन्दिर में वह लवङ्गिका के धोखे से माधव का आलिङ्गन कर लेती है परन्तु जैसे ही उसे वस्तु–स्थिति का ज्ञान होता है वह सहसा पीछे हट जाती है और भय से काँपने लगती है। अष्टम अङ्क के आरम्भ में स्वछन्द एवं कामोद्दीपक वातावरण में माधव द्वारा अनेक प्रकार से अनुनय–विनय किये जाने पर भी नव–विवाहिता मालती ठीक वैसा ही आचरण करती है जैसा कि उच्चकुलात्पन्न, शिष्ट एवं सुसंस्कृत भारतीय नव–वधू को करना चाहिए।[9] लज्जा और विनम्रता मालती के स्वाभाविक गुण हैं जिनके कारण उसका व्यक्तित्व अधिक आकर्षक हो गया है। इन्हीं सब गुणों के कारण

मालती सभी को इतनी अधिक प्रिय हो गई है कि कपालकुण्डला द्वारा उनका अपहरण होने पर भूरिवसु के साथ ही कामन्दकी, लवङ्गिका, मदयन्तिका आदि भी अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए उद्यत हो जाती हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. कन्या– सौन्दर्शनी सल्वेती, महावीरचरितम्, पृ0 18
2. महावीरचरित, पृ0 35– सीता का कथन।
3. महावीरचरित, पृ0 79, 80, 84 पर सीता के कथन।
4. महावीरचरित– 7/3
5. महावीरचरित– पृ0 80 पंक्ति प्रथम।
6. महावीरचरित– 1/22
7. महावीरचरित– 9/27
8. महावीरचरित– 1/2
9. महावीरचरित– पृ0 163/164

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

DEVELOPMENT OF ENTERPRISES WITH WOMEN DEVELOPMENT TO CONTEXT WITH INDIAN ECONOMY PROLIFERATION

MANORMA SHUKLA*; DR. ANJLI SINGH**
*****Research Scholar, Department of Economics, Dr. Shakuntala Mishra National Rehabilitation University, Lucknow
**Assistant Professor, Department of Economics, Dr. Shakuntala Mishra National Rehabilitation University, Lucknow

ABSTRACT
After the World War II, world economy face so many different challenges like reconstruction of Europe and other countries, crisis of balance of payment,cash flow and development economically, politically and socially. Enterprises play game changing tool to development of new world in which men and women participation take place to drive new human society. Now women are engaging new economical era as well as play work participation with men. Different activities are available for women to participate in enterprises like manufacturing, services and trading to growth of their self for economically independent as well as country economy. Enterprises are contributed not only money generation but mass employment in Indian Economy.

KEY WORDS: -Enterprise, Indian economy, Development, WomenParticipation, Employment

INTRODUCTION

Enterprises are new emerging field for Indian economy to development , mass employment generation ,participation of women at different level and social development.1 .The basic definition of Enterprisesto the creation of a new economic entity centred on a novel product or service or, at the very least, one which differs significantly from products or services offered elsewhere in the market.Entrepreneurship is an activity that involves the discovery, evaluation and exploitation of opportunities to introduce new goods and services, ways of organising, markets, processes and raw materials through organising efforts.(The Global Entrepreneurship Monitor institute).The different definition given below by institutionsand scholars.

Serial number	Institution , Author and Scholar	Definition
1	HarvardUniversity, USA.	entrepreneurship is the pursuit of opportunity beyond the resources you currently control
2	A.AGib,Small Business Institute, Europe.	entrepreneurship relates to ways in which people, in all kinds of organisations behave in order to cope with and take advantage of uncertainty and complexity and how in turn this becomes embodied in: ways of doing things; ways of seeing things;

		ways of feeling things; ways of communicating things; and ways of learning things
3	Global Entrepreneurship Monitor USA	entrepreneurship 'any attempt to create a new business enterprise or to expand an existing business by an individual, a team of individuals or an established business
4	The Northern Ireland government	Entrepreneurship isconsidered to be 'the ability of an individual, possessing a range of essential skills and attributes, to make a unique, innovative and creative contribution in the world of work, whether in employment orselfemployment'.
5	Entrepreneurship Development institute of India	entrepreneurship as 'an activity that involves the discovery, evaluation and exploitation of opportunities to introduce new goods and services, ways of organising, markets, processes and raw materials through organising efforts that previously had not existed'.
6	A. Hoffmann, in bock 'The Entrepreneurship'	entrepreneurship specifically as 'the entry and creation of high-growth firm who will increasingly emphasise the acceleration of highpotential existing and start-up companiesto provide the supply line for future exports based on new product and process innovation'
7	UNIDO (United Nations Industrial Development Organization)	Entrepreneurship is the ability and readiness to develop, organize and run a business enterprise, along with any of its uncertainties in order to make a profit to connect with land, labour, natural resources and capital.

These descriptions or definitions of entrepreneurship are presented in a sequence which indicates they have a wide spectrum of meanings from the relatively broad encompassing almost any enterprising activity to the very narrow in which entrepreneurship is used to refer just to the creation of a limited range of businesses.

A. Hoffman, one of the higher level scholar in the field of, Entrepreneurship , enterprises development and learning frame work for institutional development entrepreneurship all over world, generalised classification of enterprises worldwide given below.

It is classified into the following types but regional classifications define by specific law by country to country;

Small Business Entrepreneurship-

These businesses are a hairdresser, grocery store, travel agent, consultant, carpenter, plumber, electrician, etc. These people run or own their own business and hire family members or local employee. For them, the profit would be able to feed their family and not making 100 million business or taking over an industry. They fund their business by taking small business loans or loans from friends and family.

Scalable Startup Entrepreneurship-

This start-up entrepreneur starts a business knowing that their vision can change the world. They attract investors who think and encourage people who think out of the box. Theresearch focuses on a scalable business and experimental models, so, they hire the best and the brightest employees. They require more venture capital to fuel and back their project or business.

Large Company Entrepreneurship-

These huge companies have defined life-cycle. Most of these companies grow and sustain by offering new and innovative products that revolve around their main products. The change in technology, customer preferences, new competition, etc., builds pressure for large companies to create an innovative product and sell it to the new set of customers in the new market. To cope with the rapid technological changes, the existing organisations either buy innovation enterprises or attempt to construct the product internally.

Social Entrepreneurship-

This type of entrepreneurship focuses on producing product and services that resolve social needs and problems. Their only motto and goal is to work for society and not make any profits.

Government of Indiaisdefining enterprises by the act Micro, Small and Medium Enterprises Development (MSMED) Act 2006.This act enforce in 2006 by its definition based on investment, size, type etc. This Act established the legal framework for the first time to recognise concept of "enterprise" which includes manufacturing as well as service entities. The Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) are classified in to two categories

Manufacturing enterprises– Any industry who are involved in the manufacturing or production of goods products are specifically included in the first schedule to the Industries (Development and Regulation) Act, 1951 or those who are engaging plant and machinery for value addition to the end product with a distinct character or name or use. The industries involved in manufacturing / production are defined in terms of investment in plant and machinery.

For MSME -**Manufacturing SectorEnterprises**

SerialNumber	Size Enterprises	Investment in plant and machinery in Rupees
1	Micro	Up to 25 lakh
2	Small	25 lakh to 5 crore
3	Medium	5 crore to 10crore

Service enterprises – in the case of the enterprises engaged in providing or rendering of services, as

Serial Number	Size Enterprise	Investment in equipment in Rupees
1	Micro	Up to 10 lakh
2	Small	10 lakh to 2crore
3	Medium	2 crore to 5 carore

GENERAL CHARACTER OF ENTREPRENEURSHIP BY A. HOFFMANN.

Not all entrepreneurs are successful; there are definite characteristics that make entrepreneurship successful. A few of them are mentioned below-

1. **Ability to take a risk-** Starting any new venture involves a considerable amount of failure risk. Therefore, an entrepreneur needs to be courageous and able to evaluate and take risks, which is an essential part of being an entrepreneur.
2. **Innovation-** It should be highly innovative to generate new ideas, start a company and earn profits out of it. Change can be the launching of a new product that is new to the market or a process that does the same thing but in a more efficient and economical way.
3. **Visionary and Leadership quality-** To be successful, the entrepreneur should have a clear vision of his new venture. However, to turn the idea into reality, a lot of resources and employees are required. Here, leadership quality is paramount because leaders impart and guide their employees towards the right path of success.
4. **Open-Minded-** In a business, every circumstance can be an opportunity and used for the benefit of a company. For example, Paytm recognised the gravity of demonetization and acknowledged the need for online transactions would be more, so it utilised the situation and expanded massively during this time.
5. **Flexible-** An entrepreneur should be flexible and open to change according to the situation. To be on the top, a businessperson should be equipped to embrace change in a product and service, as and when needed.
6. **Know your Product-**A company owner should know the product offerings and also be aware of the latest trend in the market. It is essential to know if the available product or service meets the demands of the current market, or whether it is time to tweak it a little. Being able to be accountable and then alter as needed is a vital part of entrepreneurship.

WOMEN PARTICIPATION

Enterprises are giving large scale employment not only the world but in India also. Women are engaging as employ as well as entrepreneur in this sector.Women entrepreneurs are no different from men in terms of their personality cognition, achievement motivation, dependency and other related attitudes." The gap in women's participation to India's income is due to various social and personal constraints. Women are nearly equal work force in India. They are contributing in national economy not only as labour force,professional, and technical but also innovator to. Government of India policies for women participation enhancement by planning year as below.

Serial number	Year	Planning Scheme
1	1951-1956	The First Five-Year Plan envisaged a huge count welfare measures especially for women. Establishment of the Central Social Welfare Board, organization of Mahila Mandals and the Community Development Programmes were a few steps in this direction.
2	1956-1961	The second Five-Year Plan was mainly for empowering women that are closely linked with the overall approach of intensive agricultural development programmes.
3	1961-1966	The Third Five-Year Plan and Year 1969-74:- The Fourth Five-year plan both these plans focused more and supported more to female education as a head of the welfare measure.
4	1974-1979	The Fifth Five-Year Plan emphasized more on generating women as an employee through training workshops especially for those who are needy for the income and safety. Ministry of Social welfare had some views about the report submitted by International Women's Decade. This report read about 'this' plan is very similar in implementation by and large to the international Women's Decade. The report was submitted by the Committee and was mainly based on the Status of Women in India. This made the ministry to work out for the Women's welfare and Development Bureau and the set up the same in the year 1976.
5	1980-1985	The Sixth Five-Year Plan had its uniqueness in shifting the structural way of welfare to development. It concentrated mainly on women with they being lagging behind due to access to resources and is one of the critical obstacle awaiting the growth of the nation.
6	1985-1990	The Seventh Five-Year Plan focused more about the gender based factors. It needed the equality and liberty both for the masculine and feminine gender. It was its uniqueness because for the first time the overall importance was looked through the qualitative aspects such as in calculation of confidence, generation of awareness with regards to rights and training in skills for better employment.
7	1992-1997	The Eight Five-Year Plan controlled and monitored well through empowering facts for women, it was mainly at the Gross Roots Level, wherein Panchayati Raj played in its role too.
8	1997-2002	The Ninth Five-Year Plan had approved the developed tactics for Women's Component Plan. This plan had about 30% of funds or financial benefits

		covered up in relation to women being on the verge of development.
9	2002-2007	The Tenth Five-Year Plan targeted to empowering women by just transferring the recently been adopted National Policy for Empowerment of Women (2001). Then was its practical implementation that could focus more on to the action and ensuring Survival, Protection and Development of women and children on the basis of the rights available for working out.
10	2007-2012	The Eleventh five-year Plan in parallel application of the empowerment mission played the role of an assistant like reservation for primary education, developing the technical skills, incentives made available for higher education. Incentive and non incentive programmes both carry a special subsidy cell with itself. It had recently taken the tangible stepladder that can absolutely throw in the development of women entrepreneurship.

NEED OF WOMEN ENTREPRENEURSHIP

Considering the strengths and the weakness of at an entrepreneurial level for a person, we find women are at zenith with all the superiority especially with the confidence needed to take control of the hazardous situation with valid solution. They are best even with the unpredictable obligations concerning the job work, are creative enough and innovative too. The needed devotion, dedication, sincerity, skills for time management, attitude to work hard, aggressiveness, ambitious, intelligent but patient, optimistic but cautious, etc. This off-course results outputting with improved entrepreneurship.

SOME OF THE REASONS MAY AS FOLLOWS

1. Half the Indian population is woman and do carry better contribution to the development of nation and hence the main stream for them should be kept open for all freedom.

2. As per the national economy of India, women plays more dedicated, devotional, vital and productive role as labours. Referring to the total force, it is counted to be around one third.

3. Enhancing women's entrepreneurship is an important approach for civilizing the benefit of Indian domestics.

4. It is found that the potential carried by women entrepreneur and the general entrepreneur there is long distance to be covered.

5. As per the earnings, if it is an Indian woman, obviously you will find that the share of the earnings is been operative for the family, its needs and the future aspects but same is not done to a level by a man from the same family. Improving women's income and quality through entrepreneurship implies a multi-dimensional contribution to overall growth and development.

6. If women are to be empowered then it is only through the financial requisites for entrepreneurship.

LITERATURE REVIEW

There are many research papers, reports, studies published in field of enterprises, entrepreneurship, women entrepreneurship, participation of women in MSME, growth of MSME in India.

A,Hoffomann (2005) said that in his work in presented in small business institute of USA that enterprises and entrepreneurship with special reference to women entrepreneurship change world dramatically with all aspects nation life like economically, socially and

politically. Women entrepreneurship is contributed in national income as well as global income significantly. All over the world developed enterprises and entrepreneurship education by course or subject indicates its importance.

Sanjeeb Kumar Dey (2014) is expressed his view on growth of MSME in India and reflected different prospects in the sector. Sectoral growth of MSME represented the development of enterprises and women participation in India. His paper indicated that income generation, employment increases and poverty reduction in all over nation.

Margaret and Kala (2013) studied on women empowerment over all women development. Their work highlighted significant of women economically activities in regional development. The majorimpact on social and economic life of women to create their decision on their child education, social security of themselves changes. They freely spend their money on it.

Nachimuthu and Gunatharan (2012) shown in their working paper on women entrepreneurship to measure women empowerment and results clearly define women entrepreneurs enhance economical activities in which transformed their life compare to others.

Dixit and Pandey (2011) analysed relationship between MSMEs production , employment , participation of women with India's GDP, national income and export in time frame 1973-74 to 2006-07.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. To study the concept of enterprises and its development.
2. To examine the roll of MSMEs economic development and employment.
3. To study women participation in MSMEs.

4. To know the current status women entrepreneurship in MSMEs.

SCOPE OF THE STUDY

This study would be clear picture of concept of enterprises and its development, roll of MSMEs in economic development, employment,and women participation by different level in MSMEs and status of women ownership in MSMEs.

RESEARCH METHODOLOGY

This study is both exploratory and descriptive in nature. To explore the different type enterprises and describe the roll in MSMEs in economy as well as women participation. Sources of the study are based on secondary data published by annual reports of MSMEs by government of India, research paper and articles in different journals.

CONCEPTUAL HIGHLIGHT

In the post-independence era, the Government had to synchronies and harmonies the twin considerations of rapid industrialization and the parameters of a welfare state. The Plan objective of economic growth with social justice was kept in view in the overall strategy of industrial development. All segments of kept in view in the overall strategy of industrial development. All segments of the industry large, medium and small were assigned a mutually, complimentary role with a view to 3 facilitate an integrated and harmonious growth of industrial sector as a whole. In the context of the major problems of poverty and unemployment faced by the Indian economy, the development of Small Scale Sector (SSI) was considered essential because of its being labour intensive having implications for equity,

flexibility, capability to contribute to decentralization, to promote entrepreneurship, optimum use of local resources and talents, etc. Since independence, a series of six Industrial Policy Resolutions aimed at promoting industrial growth and determining a pattern of State intervention and assistance have been announced by the Central Government. While spelling out the framework of the basic and strategic industries, the Industrial Policy Resolution, 1948, realized Cottage and Small Scale Industries to be particularly suited for better utilization of local resources and achievement of "local self-sufficiency" in respect of certain types of industrial goods. The policy of supporting the cottage, village and small industries took shape in 1956 when the Government decided to initiate measures to build the competitive strength of small and village industries. The 1955 Resolution underlined the role that the SSI sector could play in providing employment opportunities, mobilizing local skills and capital resources and in the process integrating with large industrial sector. The Industrial Policy Statement, 1977 stressed upon wider dispersal of cottage and small industries in the rural areas and small towns. The concept of District Industries Centres was also mooted so as 4 to provide services to small industries under one roof. While the Industrial Policy Statement of 19S0 was important from the point of view of ancillarisations and creation of nucleus plants for the growth of the sector, that of 1990 emphasized the steps for enhancing the contribution of the SSI Sector in overall exports, employment generation and dispersal of industries in rural areas. The Industrial Policy measures announced in 1991 laid special thrust on promotion and strengthening of small, tiny and village industries. Besides effecting changes in investment limits, equity participation, etc., a new scheme of Integrated Infrastructure Development for SSIs with the participation of State Governments and Financial Institutions was initiated and a pro-active role for NGO sector was mooted. In order to protect their interest and facilitate their rapid development, the Government in pursuance of its policies, have initiated a number of support measures from time to time which include policy of reservation, revision of investment ceilings, modernization, technology up gradation, marketing assistance, etc. The emerging economic scenario in the changed liberalized and competitive economic environment has necessitated structural and fundamental changes in the policy framework put into place for the development of this vital sector of the economy. Accordingly, there has been a shift in focus from "protection" to "promotion". In the post-reform period, a number of steps including partial preservation, change in investment limits, "facilitating foreign 5 participation, establishment of growth centers, export promotion, marketing assistance and incentives for quality improvement, etc. have been taken by the Government for strengthening of this sector. The SSI Sector has proved its mettle even in the changed liberalized economic environment of the country. The steps required for opening up of the economy have affected the operations of this Sector throwing open new opportunities and challenges at the same time. The need of the hour undoubtedly is to provide sustenance through suitable measures to strengthen it for converting the challenges into opportunities for scaling new heights. In order to enable the Government to place more focused attention on the problems of the SSI Sector, a new Ministry of Small Scale Industries and Agro Rural Industries has been created on 14th October 1999, under the Independent Charge of a Minister of State. To give a direction and perspective to the development strategy, the Minister-in charge of Small Scale Industries and

Agro & Rural Industries announced an "Agenda for the Millenium'7 which places seeds-emphasis upon facilities evolution of a new policy framework, improved supply of credit better infrastructure and impetus for modernization and technology up gradation in small .scale industries. The Agenda takes cognizance of the special -ore to be played by Information Technology, sunrise industries, hi-tech industries, export potent industries, and at the same time stipulates all possible steps to meet me requirements of the tiny and 6 micro-enterprises which constitute over 95 per cent of total small scale industrial units in the country. Aware of the crucial role of small enterprises and the problems being faced by them, the Planning Commission, in 1999, constituted a Study Group under the Chairmanship of Dr. S.P. Gupta, Member; Planning Commission, on Development of Small Enterprises. The Study Group submitted its interim report on 13th July 2000. The important Recommendations of the Study Group were related with Policy issues, Financial and Fiscal measures for SSEs, Technology up gradation and, Modernization, Marketing and Export, etc. The small scale sector has emerged as the most vital and dynamic sector of the Indianeconomy. This sector which produces a wide range of more than 7500 products has grown phenomenally during the past 15 years. It has helped significantly in strengthening the entrepreneurial base of the country giving its economy the diversity and depth. Inspire of several shortcomings, innumerable handicaps and several limitations, the role played by the sector in country's development is too significant to escape notice. The functional vibrancies of the sector is visible from its contribution of 40% in the industrial production, 35% in country's total exports and providing employment to 167 lakh persons in over 30 lakh SSI units which is next only to agriculture. The opening up of the Indian economy and its integration with the world economy has had a significant bearing on trade and industry, 7 particularly with reference to Small and Medium Scale Enterprises (SMEs). The Indian small enterprises have been functioning is an insulated environment devoid of any serious competition. At the time of opening up of the Indian economy, doom was predicted for the Indian small enterprises and it was anticipated that it would not be able to withstand the resultant competition. This myth was completely shaken as the Indian SSI sector performed much better than the industrial sector as a whole. In the previous year, the SSI sector achieved a growth rate of 9.6 percent in production as compared to about 6 per cent of that of the industry sector as a whole. This has been possible largely due to the spirit of entrepreneurship in entrepreneurial base of the country as also the resilient strength of the small enterprises.

SMALL SCALE INDUSTRIAL UNIT (SSIU) Any business unit where fixed investment, assets in plant and machinery or equipment and overall value including assets, purchase or yearly turn over not more than Rs. 100 lakh is called SSIU till dated 31-03-2001.

MICRO, SMALL AND MEDIUM ENTERPRISES (MSME) According the MSME act 2006, MSMEs divided in two categories (1) Manufacturing (2) Services .In manufacturing microenterprises (Upto Rs.25lakh), smallenterprises (25 lakh to 5 crore), and mediumenterprises (5 crore to10crore) and service sector microenterprises (Upto Rs.10lakh), smallenterprises (10 lakh to 2crore), and mediumenterprises (2crore to5 crore).

TABLE-1 STATUS OF WORKING MSMES, EMPLOYMENT, INVESTMENTS AND GROSS OUTPUT IN INDIA (AS ANNUAL REPORT OF MSMES)

Serial Number	YEAR	No. of working MSME(in Lakh)	Employment (in Lakh)	Market Value of FAs(in crore)	Gross Output (in crore)
1	2001-02	105.21	249.33	154349.00	282270.00
2	2002-03	109.49	260.21	162317.00	314850.00
3	2003-04	113.95	271.42	1780219.00	364547.00
4	2004-05	118.59	282.57	178699.00	427996.00
5	2005-06	123.42	294.91	188113.00	497842.00
6	2006-07	361.76*	805.23*	888543.79*	1351383.45
7	2007-08	377.37	842.23	917437.46	1435179.26
8	2008-09	393.70	881.14	971407.49	1524234.83
9	2009-10	410.77	992.19	1029331.42	1619355.53
10	2010-11	428.77	965.69	1094893.42	1721553.42
11	2011-12	447.73	1012.59	1176939.36	1834332.05

Note: From 2001-02 to 2005-06, the data for this period is small scale industries (SSI)

TABLE -2 GROWTH OF MSMEs INDUSTRIES

Serial Number	**Year**	**Growth MSME %**	**Growth % of Over Industry**
1	2002-03	8.23	7.9
2	2003-04	9.62	8.2
3	2004-05	10.1	9.4
4	2005-06	11.4	12.1
5	2006-07	11.3	7.1
6	2007-08	9.7	5.8
7	2008-09	8.43	8.34
8	2009-10	12.67	9.27
9	2010-11	12.57	9.38
10	2011-12	7.49	6.55

By table 1 and table 2 we get growth of MSMEs year by year incontinuation.

TABLE -3 SUMMERY RESULTS: FOURTH CENSUS OF MSME

Serial Number	Characteristics	Registered Sector	Unregistered Sector	EC-2005*	Total
I	II	III	IV	V	VI
1	Size of Sector (in Lakh)	15.64	198.74	147.38	361.76
2	No. of rural units (in Lakh)	7.07 (45.20%)	119.68(60.22%)	73.43(49.82%)	200.18(55.34%)

3	No. of Women Enterprises (in Lakh)	2.15 (13.72%)	18.06 (9.09%)	6.40 (4.34%)	26.61 (7.36%)
4	Total Employment (in Lakh)	93.09	408.84	303.31	805.24
5	Per Unit Employment	5.95	2.06	2.06	2.23
6	Total original value of Plant & Machinery (Rs in Lakh)	10502461	9463960	-	19966421
7	Per unit original value of Plant & Machinery (Rs. in Lakh)	6.72	0.48	-	-
8	Total fixed investment (Rs. in Lakh)	44913840	24081646	-	68995486
9	Per Unit fixed investment (Rs in Lakh)	28.72 1.21 -	1.21	-	-
10	Total Gross Output (Rs in Lakh)	70751027	36970259	-	107721286

Table 3 shows that women participation increased. Women entrepreneurship is indicating empowerment of women in society.

CONCLUSIONS

Micro, Small and Medium Enterprises are growing year by year not only with number but also by value .MSMEs are contributing in national economy but also regional development. GDP and Industrial development are increased by MSMEs rapidly. It is easily said that employment generation by MSMEs big account. Hence MSMEs are adding GDP, national income, regional growth, employment and export. MSMEs are proliferating India's economy.

REFERENCE

1. R. S. Edwards and H. Townsend, Business Enterprise: Its Growth and Organisation (London: Macmillan, reprinted 1967).
2. J. A. Timmons, The Entrepreneurial Mind (Andover, MA: Brick House Publishing, 1989), p. 1.
3. W. J. Baumol, 'Entrepreneurship: Productive, Unproductive, and Destructive', Journal of Political Economy , Vol.98 No.5, pt.1, 1990, p. 897.
4. A. A. Gibb, 'The Enterprise Culture and Education: Understanding Enterprise Education and its Links with Small Business, Entrepreneurship and Wider Educational Goals', International Small Business Journal , Vol.11 No.3, 1993, pp. 11–34.
5. A. Hoffmann, The Entrepreneurship,(Oxford: Butterworth-Heinmann), 2000.
6. A. A. Gibb, 'SME Policy, Academic Research and the Growth of Ignorance, Mythical Concepts, Myths, Assumptions, Rituals and Confusions', International Small Business Journal , Vol.18 No.3, 2000, pp. 2–12.
7. P. Hannon, 'Philosophies of Enterprise and Entrepreneurship Education and the Challenges for Higher Education in the UK', International Journal of Entrepreneurship and Innovation , Vol.6 No.2, 2005, pp. 105–114.
8. H.M. Gabr and A. Hoffmann, A General Policy Framework for Entrepreneurship , FORA (Copenhagen, Denmark: Ministry of Economic and Business Affairs' Division for Research and Analysis, April 2006).
9. A.Dixit and A.K. Pandey,'SMEs and Economic Growth in India : Cointegration Analysis' The IUP Journal of Financial Economics ,Vol. IX,No.2, 2011,PP.41-59.
10. G.S. Nachimuthu and B.Gunathara,'Empowering Women through Entrepreneurship:A study in Tamilnadu,India.' International Journal of Trade, Economics and Finanace,Vol.3,No.2,2012,PP.143-147.
11. S.Margaret and N.Kala, 'Study on Impact of Ngo interventions on Empowerment of Women' , Journal of Business Management & Social Science Research (JBM&SSR),Vol.2(3),2013,PP.1-6.
12. Sanjeeb Kumar Dey , ' Analysis of MSMEs and Economic Growth in India'IOSR Journal of Business and Management,Vol.9(6),2014,PP.126-129.
13. Annual Report on MSME Government Of India,2007-08,2012-2013 and 2015-16.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

सरोगेसी

डॉ. सुमित कुमार शुक्ला
यू.जी.सी.–नेट / जे.आर.एफ., पीएच.डी.
दर्शनशास्त्र विभाग, पटना वि.वि., पटना

कहते हैं मातृत्व, एक स्त्री के जीवन का सबसे खूबसूरत अहसास होता है, बच्चे की पहली किलकारी, नन्हें पैरों से लिए पहले कदम और उसकी तोतली जुबान से मां सुनना, एक स्त्री के लिए कभी न भूलने वाले पल होते हैं। जिन्हें वह हमेशा अपने दिल में संजो कर रखती है। पर गर्भाशय में संक्रमण के कारण कुछ स्त्रियां इस अहसास के लिए तरसती रह जाती हैं। ऐसे में सरोगेसी एक बेहतरीन चिकित्सा विकल्प है जिसमें बंध्य जोड़े किसी अज्ञात महिला की सहायता से संतान सुख की प्राप्ति कर सकते हैं।[1]

'सरोगसी' या स्थानापन्न मातृत्व एक ऐसी कार्यवाही है जिसमें नारी अपनी गर्भावस्था किसी और अनुर्वर दम्पति के लिए लेती है।[2] सरोगेसी शब्द लैटिन भाषा के 'सबरोगेट' से आया है, जिसका अर्थ होता है किसी और को अपने काम के लिए नियुक्त करना।[3] इस प्रक्रिया में वास्तविक माँ की जगह एक दूसरी महिला बच्चे को जन्म देने के लिए अपने कोख देती है। सरोगेसी को वह महिलाएं अपनाती हैं जो बच्चे को जन्म देने में असमर्थ होती हैं। शुक्राणु और अंडाणु को निषेचित करा कर भ्रूण को उस महिला की कोख में डाल दिया जाता है।इसमें एक प्रतिशत अंश भी सरोगेट मदर का नहीं होता है। इस प्रक्रिया से बच्चों के साथ उनका जेनेटिक संबंध बरकरार नहीं रहता है। रंग, लंबाई, बालों का रंग और प्रकृति, आनुवांशिक गुण आदि सभी जेनरिक माँ बाप के होते हैं।

वर्तमान युग में इस प्रक्रिया के प्रयोग ने काफी प्रसिद्धि पायी है। सम्भावित सरोगेट माताओं, अन्तरराष्ट्रीय मांग और चिकित्सा की सुलभ उपलब्धियों ने ही इस क्षेत्र को स्वीकार्य और प्रसिद्ध बनाया है। सरोगेसी प्रक्रिया ने मीडिया में भी काफी चर्चा प्राप्त किया है। अनगिनत एजेन्सियों तथा क्लिनिकों ने इस प्रक्रिया को प्रजनन करने के लिए खोला है।

सरोगेसी के प्रकार :

ट्रेडिशनल सरोगेसी[4]: इस प्रक्रिया में दंपत्तिमें से पिताके शुक्राणुओं को एक स्वस्थ्य महिला के अंडाणु के साथ प्राकृतिक रूप से निषेचित किया जाता है तथा शुक्राणुओं को सरोगेट मदर के नेचुरल ओव्युलेशन के समय डाला जाता है। इसमें जेनेटिक संबंध सिर्फ पिता से होता है।

गेस्टेशनल सरोगेसी[5] : इस पद्धति में मातापिता के अंडाणु व शुक्राणुओं का मेल परखनली विधि से करवा कर भ्रूण को सरोगेट मदर की बच्चेदानी में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। इसमें बच्चे का जेनेटिक संबंध माँ और पिता दोनों से होता है। इस पद्धति में सरोगेट मदर को ओरल पिल्स खिलाकर अंडाणु विहीन चक्र में रखना पड़ता है जिससे बच्चा होने तक उसके अपने अंडाणु न बन सकें।

सरोगेसी का एक लम्बा इतिहास रहा है और इसे कई संस्कृतियों में स्वीकार किया गया है। "ओल्ड टेस्टामेंट" में इब्राहिम, सारा और हागर के बीच की कहानी तथा रेछल और नौकर की कहानी

यह स्थापित करती है कि स्थानापन्न मातृत्व यहूदी समाज में स्वीकृत था।[6] हालांकि, यूरोपीय संस्कृतियों में सरोगसी निःसंदेह अभ्यास में था। परन्तु अतीत में इसे सामाजिक और कानूनी नियमों के तहत औपचारिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया था। ईसाई धर्म सरोगेट माँ के बारे में एकमत नहीं है। कैथोलिक धर्म मेंबच्चे को हक नहीं बल्कि उपहार माना जाता है और 'एक मांस' सिद्धान्त के अनुसार सरोगसी अस्वीकार्य है।[7] प्रोटेस्टेंट चर्च मेंइसे उदार दृष्टि से देखा जाता है। रूढ़ीवादी रब्बियों में सरोगसी प्रक्रिया, मातृत्व का अनादर तथा अपमानजनक माना गया है। हिन्दू धर्म विशेष परिस्थितियों जैसे बांझपन में कृत्रिम गर्भदान को अनुमति देता है और इसमें पिता के शुक्राणओं का उपयोग करता है ताकि बच्चे को अपने वंश का पता हो। बौद्ध धर्म ने इस प्रक्रिया को पूरी तरह स्वीकार किया है क्योंकि बौद्ध धर्म में प्रसव को नैतिक कर्तव्यों में से नहीं माना गया है।

आस्ट्रेलिया में सरोगसी प्रक्रिया द्वारा पैदा होने वाली पहली आईवीएफ बच्ची एलिस किर्कमान का जन्म मेलबोर्न में 23 मई 1988 को हुआ था। एक नारी ने अपने भाई तथा भाभी के आनुवंशिक भ्रूण को अपने गर्भ में पलनेदिया। इस बच्चे के पैदा होने के साथ मीडिया की दिलचस्पी और सरोगसी से संबंधित प्रश्नों का तूफान आ गया था। अमेरिका में 1978 में आइवीएफ़ पद्धति से पहले टेस्ट ट्यूब बेबी लुई ब्राउन का जन्म हुआ और कुछ ही महीनों बाद 3 अक्टूबर 1978 को कलकत्ता में भारत की पहली टेस्ट द्यूब बेबी का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया 'दुर्गा',पर जिस घटना ने अंतर्राष्ट्रीय समाचार पत्रों में स्थान बनाया वह थी 2004 में, गुजरात के'आनंद' नामक एक छोटे से शहर की एक महिला का लन्दन में रहने वाली अपनी बेटी के बच्चे को जन्म देना।

भारत सरोगसी या स्थानापन्न मातृत्व का एक गंतव्य है। भारतीय सरोगेट नारियों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है क्योंकि यह प्रक्रिया भारत में कम लागत की है और साथही कानून भी लचीला है। भारत सरकार ने 2008 में एक विधान प्रारूप किया था जो धीरे–धीरे वर्तमान का ए0 आर0 टी0 रेगुलेशन ड्राफ्ट बिल के रूप में है, फिलहाल यह बिल अब तक पास नहीं हुआ है। इस बिल द्वारा सरोगेसी के सारे प्रमाण पत्रों को कानूनी नियमों के अनुसार स्वीकृत किया गया है। इंडियन कांट्रैक्ट एक्ट द्वारा सरोगसी प्रक्रिया के संविदाओं को दूसरे संविदाओं के बराबर माना जा सकता है। अकेले जनक या माता–पिता और सरोगेट माँ के बीच सारे निर्गमनों तथा समस्याओं पर एक अनुबंध बनाते हुए इस प्रक्रिया को कानून के माध्यम से प्रवर्तनीय बनाया गया है।

सरोगेसी से जुड़े मुद्दों की गंभीरता को देखते हुए सरकार के द्वारा 'सहायताकारी पुनरूत्पादन तकनीक विधेयंक (एआरटी) 2013' को तैयार किया गया जिसके विविध प्रावधान भारत में सरोगेसी के समुचित विनियमन को स्पष्ट करते हैं –

1. सरोगेसी से बच्चा हासिल करने की अनुमति केवल निःसंतान भारतीय द्ंपति, प्रवासी भारतीय, भारतीय मूल के लोग और समुद्रपारीय भारतीय नागरिकों को ही दी गई है तथा विदेशियों को इससे वंचित कर दिया गया है।
2. प्रस्तावित एआरटीबिल में केवल इनविट्रो फर्टिलाइजेशन और भ्रूण ट्रांसफर की ही अनुमति प्रदान की गई।
3. एआरटीबिल के माध्यम से सुनिश्चित किया गया कि सरोगेट महिला को 5 किश्तों में अनुबंधित राशि का भुगतान हो।
4. सरोगेसी से संतान हासिल करने को एकल व्यक्ति, किन्नरों व समलैंगिकों को वंचित कर दिया गया है।
5. बिल के प्रावधानों के अनुसार महिला अपने बच्चों सहित पांच संतानों के सफल जन्म के बाद सरोगेट माँ नहीं बन सकेगी।

6. बिल के अनुसार सरोगेट माँ की न्यूनतम आयु 21 वर्ष व अधिकतम आयु 35 वर्ष होगी।
7. बिल के अनुसार सरोगेट महिला व दंपति के मध्य विस्तृत सहमति पत्र हस्ताक्षरित किया जाएगा जिसमें सरोगेसी व प्रजनन से संबंधित सभी गंभीरताओं व चुनौतियों का विस्तृत उल्लेख हो।
8. बिल के प्रावधानों के अनुसार एक स्थानीय संरक्षक का प्रावधान भी किया गया है जो जोड़े के मना करने पर पैदा होने वाले बच्चे को संरक्षण देगा।
9. एआरटीबिल के प्रावधानों के अनुसार एक स्थानीय संरक्षक का प्रावधान भी किया गया है जो जोड़े के मना करने पर पैदा होने वाले बच्चे को संरक्षण देगा।

स्पष्ट है कि ए0 आर0 टी0 बिल के लागू होने पर सरोगेसी से जुड़े तकनीकी, वैधानिक मुद्दा व जटिलताओं को हल किया जा सकेगा और इस संबंध में अभी जो विरोधाभास रह गए हैं, उन्हें सुलझाया जा सकेगा। विदेशियों को अनुमति न देना अर्थव्यवस्था के लिए नकारात्मक प्रतीत होता है क्योंकि इससे विदेश मुद्रा की आवक में कमी होगी तथा यह 'मेडिकल पर्यटन' के बढ़ रहे भारतीय उद्योग क्षेत्र को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।[8] सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जो एकल व्यक्ति को बच्चा गोद लेने व धारण करने का अधिकार देतें हैं तथा हाल में किन्नरों के पक्ष में दिया गया निर्णय कि उन्हें भी परिवार कायम करने, संतान रखने व बच्च धारण करने का अधिकार है, से प्रस्तावित ए0 आर0 टी0बिल 2013 के प्रावधान विरोधाभाासी हैं।

अतः इस संबंध में समुचित बदलाव व बिल के प्रावधानों में परिवर्तन किए जाने की जरूरत है। जहां तक विदेशियों को अनुमति न देने का प्रश्न है, उसे वर्तमान परिदृश्य में बदलने की जरूरत है क्योंकि यह भारतीय अर्थव्यवस्था व चिकित्सा के क्षेत्र में भारत की वैश्विक पहचान व स्वीकृति को प्रमाणित करता है। इस संबंध में जो भी आशंकाएं हैं, उनका समाधान सरोगेसी को विदेशियों को लिए प्रतिबंधित करना नहीं है बल्कि इस संबंध में समुचित विनियमन व निर्देशन एक उचित व व्यावहारिक कदम होगा।

सरोगेट मां को बच्चों पर अभिभाविक अधिकार नहीं होना चाहिए और बच्चे के जन्म प्रमाण पत्र पर सरोगेट माँ का नाम नहीं होना चाहिए ताकि भविष्य में जन्म अधिकार में कोई कानूनी कलह न हो। माता–पिता कानून के अनुसार बच्चे (सामान्य हो या नहीं) की कस्टडी को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। गोपनियता हमेशा बनाए रखी जानी चाहिए और दाता के निजता के अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए।

सरोगेसी बदलती मानसिकता के परिणामस्वरूप वर्तमान भारतीय चिकित्सा जगत में प्रचलित धारणा के रूप में उभरी है। सरोगेसी के माध्यम से संतान प्राप्ति ने न केवल युवापीढ़ी की बदलती मानसिकता को साकार रूप दिया है, बल्कि निःसंतान द्ंपतियों, एकल व्यक्तियों, किन्नरों और समलैंगिकों आदि के लिए भी अपने परिवार कायम करने के रास्ते खोल दिए हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में सरोगेसी का विशिष्ट महत्व, विदेशियों द्वारा भारतीय महिलाओं को अपनाने से है जिसने सरोगेसी के साथ अनेक नैतिक, मानवीय, आर्थिक, चिकित्सकीय एवं राजनीतिक मुद्दे पैदा किए हैं। जहां तक सरोगेसी के वैज्ञानिक तकनीकि पक्ष की बात है– सरोगेसी वह व्यवस्था है जिसमें कोई महिला 'सहायताकारी पुनरूत्पादक तकनीक'के जरिए एक ऐसा गर्भ धारण करने को तैयार होती है जिसमें उसका अंडाणु नहीं होता है। इस गर्भ को धारण करने का उद्देश्यहोने वाले बच्चे को उस दंपति को सौंपना होता है जिसके लिए वह गर्भ धारण करती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'सरोगेसी' से जुड़े जो विविध मुद्दे, प्रश्न, आलोचनाएं और आकांक्षाएं हैं, उन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–सरोगेसी से जुड़ा सबसे जटिल प्रश्न जो

है वह पैदा हुए बच्चे की नागरिकता का मुद्दा।[9] अनेक अवसर पर संबंधित देश के कानून बच्चे को नागरिकता हासिल करने में बाधा बनते हैं तो दूसरी ओर उसे भारतीय नागरिक न मानकर उसके वापस अपने देश लौटन का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। जर्मन दंपति के कानून के पचड़े में पड़ने वाली खबर अभी तक हमारे जेहन में ताजा है। जर्मन दंपत्ति को सरोगेसी की मदद से जुड़वा बच्चे हुए थे। इन बच्चों को अहमदाबाद पासपोर्ट ऑफिस ने भारतीय मानने से इंकार कर दिया था। इस कारण जुड़वा बच्चे के नाम से पासपोर्ट जारी नहीं हो सका था। मामला इतना उलझ गया था कि इन नवजात बच्चों को न तो भारत अपना नागरिक मान रहा था और न ही जर्मनी। दरअसल जर्मनी अपने नागरिकों के लिए सरोगेसी को संतान के विकल्प के रूप में नहीं स्वीकार करता है।

जर्मन दंपत्ति के जुड़वा बच्चों को अहमदाबाद पासपोर्ट ऑफिस के द्वारा पासपोर्ट नहीं देने के मामले में गुजरात हाईकोर्ट ने जुड़वा बच्चों के पक्ष में निर्णय दिया था, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात हाईकोर्ट के निर्णय को उलटते हुए कहा कि सरोगेसी पद्धति से उत्पन्न बच्चे को सिर्फ वस्तु माना जा सकता है। अतः इस संबंध में एक स्पष्ट कानूनी प्रावधान की आवश्यकता है। हाल ही में जापानी डॉक्टर इफुकूम यामादा ने सरोगेसी तकनीक की सहायता से भारत आकर एक बच्चे के बाप बनने का सुख तो प्राप्त कर लिया था, लेकिन उसकी पत्नी ने उस बच्चे को स्वीकार करने से मना कर दिया था। इतना ही नहीं भारतीय पासपोर्ट ऑफिस ने भी बच्चे को पासपोर्ट देने से मना कर दिया था। नियमानुसार पासपोर्ट पर बच्चे के माँ का नाम भी होना चाहिए। किंतु डॉक्टर इफुकूम यामादा की पत्नी द्वारा बच्चे को अपनाने से इंकार करने के बाद मामला पेचीदा हो गयां। अंततः महीनों के संघर्ष के बाद बच्चे को जापानी सरकार ने अपनी नागरिकता प्रदान की। तब जाकर कहीं बच्चा जापान जा पाया।

सरोगेसी ने यह प्रश्न भी पैदा किया है कि ऐसी परिस्थितियां पैदा हो जाएं जब संतान चाहने वाला दंपति महिला के साथ अनुबंध तोड़ दे और पैदा होने वाले बच्चे को अपनाने से इनकार कर दे। ऐसी परिस्थिति में बच्चे के पालन से संबंधित पोषण व परवरिश की पूर्ण जिम्मेदार सरोगेट माँ के लिए चुनौती बन जाती है। ऐसे मामले तो सबसे ज्यादा गंभीर हैं जबकि बच्चा विकलांग पैदा हो जाए या फिर करार एक बच्चे का हो और जुड़वा बच्चे हो जाएं तो जेनेटिक माता–पिता बच्चे को अपनाने से इंकार करने लगते हैं। अब सवाल यह है कि नौ महीने तक पेट में रखने और जन्म देने वाली सरोगेट माँ का बच्चे के प्रति भावनात्मक प्रेम क्या कानूनी कागजों में दस्तखत कराने के बाद खत्म किया जा सकता है? और क्या जन्म से पहले पता होता है कि बच्चा विकलांग होगा या जुड़वा? सरोगेट माँ तो सिर्फ अपने कोख में दूसरे के भ्रूण को पालती है।यह कुछ ऐसा होता है जैसे आपने सब्जी दूसरे के घर से ली और पकाया अपने ॲवन में। एक गरीब माँ गरीबी में नौ महीने तक अपनी, समाज और परिवार की नजरों के तीखे तीर झेल कर एक बच्चे को जन्म देती है ओर अगर बच्चे में कुछ दोष होने पर लेने वाला मना कर दे तो ऐसे में उस गरीब माँ पर क्या बीतेगी। आखिर कैसे कोई अपनी ही औलाद को लेने से मना कर सकता है। दंपति भी अगर जुड़वा बच्चे या विकलांग बच्चा होने पर उसे लेने से मना करें तो क्या हो? एक तो पहले वह उसका देखभाल कर नहीं सकते और अगर छोड़ देते हैं तो यह सरोगेट माँ पर जुल्म होगा।

सरोगेसी से जुड़ा मुद्दा संबंधित महिला के शोषण के रूप में भी उत्पन्न हो सकता है। अनेक परिस्थितियों में गर्भधारण के बाद संबंधित दंपति सरोगेट महिला को भुगतान करने से इनकार कर सकते हैं और ऐसी स्थिति में महिला न तो गर्भपातकरा सकती है, न ही दंपति से किसी प्रकार की नवीन मांग कर सकती है।जब विदेशी दंपति भारतीय महिला को सरोगेट माँ के रूप में स्वीकारते हैं तो अनेक बार परस्पर कानूनी विवादों का मुद्या जटिल बन जाता है। चूंकि इस संबंध में अभी तक कोई स्पष्ट कानून नहीं है तो परस्पर विवादों के समाधान में कठिनाई पैदा होती है, साथ ही साथ विदेशी

नागरिकों को भारतीय कानून के दायरे में लाना कठिन हो जाता है।अनेक बार ऐसी स्थितियां भी पैदा हो सकती हैं जब दंपति आर्थिक स्थिति से कमजोर हो जाएं अथवा दंपति में अलगाव हो जाए तो ऐसी स्थिति में बच्चे के भविष्य व समुचित परवरिश की समस्या पैदा हो सकती है।

सरोगेसी को अपनाने के पीछे मूलतः मानवीयता की भावना निहित थी और इसे स्वस्थ रूप में अपनाया गया था।किंतु हाल के दिनों में सरोगेसी का निकृष्टतम रूप 'व्यावसायिक सरोगेसी' के रूप में सामने आया है जिसे किसी भी रूप में स्वीकार्य व उचित नहीं माना जा सकता। पेशेवर महिलाएं केवल अधिकाधिक पैसा कमाने के उद्देश्य से सरोगेसी को धारण करने को तैयार हो जाती हैं जो समाज में बढ़ रहे नैतिक मूल्यों के पतन को प्रकट करता है।[10]'व्यावसायिक सरोगेसी' के प्रचलन ने एक प्रकार की संवेदनहीनता को पैदा किया है जिसमें सरोगेट माँ केवल मशीनी व्यवहार करती हैं। 'किराए की कोख' शब्दावली से ही इस संवेदनहीनता का बोध होता है वहीं अनेक बार इस प्रक्रिया से उत्पन्न बच्चे व उसके जैविक माता–पिता में भी कोई समुचित पारिवारिक संबंध का विकास नहीं हो पाता जो बच्चे के व्यक्तित्व पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है।[11]

सरोगेसी की संपूर्ण प्रक्रिया ने परंपरागत भारतीय मूल्यों को चुनौती प्रस्तुत की है जो नैतिकता से जुड़ा एक गंभीर मुद्दा है। सरोगेसी की अवधारणा के बढ़े चलन ने 'विवाह' जैसी भारतीय संस्था पर ही प्रश्नचिन्ह उत्पन्न कर दिए हैं और इससे 'परिवार' संस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़े हो गए हैं क्योंकि एकल जनक भी सरोगेसी के माध्यम से संतान पा सकते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में सरोगेसी व्यापार की शक्ल आख्तियार करती जा रही है। सरोगेट इंडस्ट्री फलफूल रही है। इसका कारण यह है कि पश्चिमी देशों में जहां यह काफी खर्चीला है वहीं भारत जैसे गरीब देशों में ब्रिटेन या अमेरिका की अपेक्षा एक तिहाई खर्चा करने पर कोख आसानी से खरीदी जा सकती है।इंदौर और भोपाल जैसे शहरों में तो बड़ी तादाद में निसंतान दंपती विभिन्न एआरटी सेंटरों में पहुंच रहे हैं। कई सेंटर्स में अमेरिका, एशिया और इंग्लैड की महिलाओं ने बाकायदा रजिस्ट्रेशन करवा रखा है। हालांकि इस प्रक्रिया से बच्चा हासिल करना महंगा है, लेकिन संतान की चाह रखने वालों के लिए यह बेहतर विकल्प साबित हो रहा है। अगर सरोगेसी को व्यापार में बदलने से रोकना है तो पश्चिमी देशों के जरिए होने वाले इस अवैध व्यापार पर भारत में कानूनी रोक लगानी चाहिए।

इस क्षेत्र में दान की वृहतर भावना को भी बढ़ावा मिलना चाहिए न कि इसे आर्थिक रूप से देखा जाना चाहिए। साथ ही अनाथ बच्चों को गोद लेने पर बल दिया जाना चाहिए। अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे देशों में सरोगेट मदर ही बच्चे की कानूनी माँ होती है, पर भारत में ऐसा नहीं है। विशेषज्ञों या डॉक्टरों का मानना है कि सरोगेट मदर का न तो अपना ओवेरी होता है न स्पर्म। माँ अगर भावनात्मक तौर पर बच्चे से जुड़ जाती है तो भी उस बच्चे को उसे अपने पास रखने का अधिकर नहीं है। बच्चा बड़ा होकर जन्म देनी वाली माँ को ही अपनी माँ माने तो ऐसी परिस्थिति में बच्चा दिमागी तौर पर तनावग्रस्त होगा।

एक 'सरोगेट' माँ कैसे चयनित होती है और इसका चयन करते समय उसका स्वास्थ्य, उम्र, सामाजिक जांच–बिन्दु क्या हैं? प्राथमिक रूप से दो तरीके हैंः एक जहां डाक्टर की सहायता से 'सरोगेट' माँ चयनित की जाती हैऔर दूसरा, जब भावी माँ–बाप अखबार में विज्ञापन देते हैं। 'सरोगेट' माँ का निर्णय हो जाने के बाद वह 18 साल से अधिक उम्र की हो– चिकित्सक उसका पूर्ण चिकित्सकीय जांच करते हैं कि कहीं उसको कोई पुरानी बीमारी न हो। उसकी एच.आई.वी.,ए.आई.डी. एस. की जांच भी की जाती है।

इस उभरती प्रवृति से बहुत से सामाजिक मुद्देउठते हैंः क्या महिलाएं बच्चे पैदा करने की चुनौती से बच रही हैं? क्या यह घर व काम का सन्तुलन बनाये रखने के दबाव के कारण है? क्या कामकाजी महिलाओं पर आदमियों की भांति व्यवहार करने के लिए आदमियों के संसार में दबाव डाला जाता है? क्या लोग यह सोचते हैं कि उपभोक्तावाद के युग में किसी भी चीज को खरीदा जा सकता है?यहां वृतिक–जागरूक महिलाओं व वास्तव में, निःसंतान युगलों के 'सरोगेसी' का आश्रय लेने के अपने कारण हैं, वे महिलाएं, जो अपने गर्भाशय को आई.वी.एफ. चिकित्सा से दूसरे का बच्चा धारण करने के लिए किराए पर देती हैं, आम तौर पर धन के लोभ में देती हैं।

अब माँ का गर्भाशय एक थैली बनकर रह गया है। इस थैली को हम मशीन की संज्ञा दे सकते हैं। एक गरीब औरत बार–बार बच्चे को जन्म दे रही है। उसके मन में बच्चे के प्रति न तो कोई भावना है और न ही कोई संवेदना।[12]प्रारम्भ में, महिलाओं को 'सरोगेट' माँ बनने के लिए विश्वास दिलाने में बड़ी कठिनाई आती थी लेकिन अबयह विचार स्वीकार्य होता जा रहा है, तथापि, रिश्तेदार अच्छी 'सरोगेट' माँसिद्ध होती हैं लेकिन उनको इस विचार से पूर्ण सहमति होनी चाहिए।अपने व्यावसायिक जीवन को सफल बनाने के लिएमहिलाओं की बढ़ती संख्या बच्चा–धारण के लिए गर्भाशय किराए पर लेने को प्राथमिकता दे रही हैं।

इस तरह के मामलों में अभी तक डॉक्टर किसी तरह की जिम्मेदारी लेने से बचते रहे हैं। वे इस तरह की सुविधा मोटी फीस लेकर विदेशियों को मुहैया तो करवा रहे हैं पर इसे वे व्यापार की बजाए सेवा भाव और पुण्य का कार्य मानते हैं।उनका कहना है कि उनका सरोकार सिर्फ गरीब माँ जो अपना कोख किराये पर देती है से होता है। इसलिए वे यहां तक खयाल रखते हैं कि कोख के किराये का पैसा सरोगेट माँ के परिवार की बेहतरी में खर्च हो। वे अपने कार्य को गैरकानूनी या अवैधानिक मानने को तैयार नहीं हैं, पर इसके बरक्स आज विवाद का बाजार गर्म है। समाज का एक वर्ग उन्हें इस मामले में क्लीन चिट देने के लिए कतई तैयार नहीं है।

तस्वीर का दूसरा पहलू कानून से हटकर उन दंपत्तियों की बात करता है जो बरसों से निःसंतान हैं। अगर उनका पक्ष देखा जाये तो किराये के कोख का व्यापार आपको पूर्ण रूप से प्रासंगिक लग सकता है। किराये पर अपना कोख उपलब्ध करवाने वाली माँओं की आर्थिक हालत इतनी खराब है कि वे अपने परिवार का लालन–पालन करने में सक्षम नहीं हैं। आज की तारीख में कोख का किराया उनके लिए संजीवनी का काम कर रहा है।

कानून की उलझन अभी बरकरार है। क्योंकि इस संबंध में कोई भी स्पष्ट कानून हमारे कानूनी विशेषज्ञों के पास नहीं है। बच्चे की राष्ट्रीयता, किराये पर कोख उपलब्ध करवाने वाली माँ का बच्चे पर हक इत्यादि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनपर व्यापक चर्चा और उसकी विशद व्याख्या करने की जरूरत है।

किराये की कोख से पैदा हुए बच्चों के बाबत तैयार होने वाले ड्राफ्ट बिल का स्वरूप कैसा होगा इस संबंध में अभी शंकाओं का बाजार चर्चा में है। बहुत तरह की विचारधाराएँ एक साथ अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रही है। बावजूद इसके अधिकांश लोग इस बात पर सहमत हैं कि निःसंतान एन.आर.आई. और विदेशी दंपत्ति संतान सुख से वंचित न रहें। क्योंकि इससे दोनों पक्ष लाभान्वित हो रहे हैं। कानूनी उलझन और जन्म देने वाली माँ के मन में भावनात्मक जद्दोजहद जो भी हो, पर इस बात से कोई असहमत नहीं होगा कि किराये की कोख से गरीब का भला हो रहा है। अगर ऐसा नहीं होता तो किराये पर अपना कोख उपलब्ध करवाने के लिए गुजरात सें गरीब महिलाओं के बीच होड़ नहीं लगी रहती।जाहिर है, भारत की गरीबी और इसी सहारे अपना जीवन सुधारने की आकांक्षा लोगों को इसके लिए प्रेरित करती है।

हरआई0 वी0 एफ0क्लिनिक एक सरोगेसी एजेंसी से जुड़ी होती है। इसकें एजेंट, झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाली गरीब महिलाओं से संपर्क करते हैं और अपना जीवन स्तर सुधारने, अपने बच्चों का भविष्य बनाने का एक अवसर मिलता देख ये लोग एक अच्छी रकम ले बच्चे को जन्म देने को तैयार हो जाती हैं। क्लिनिक वाले इन महिलाओं का पूरा ख्याल रखते हैं पर पति की रजामंदी जरूरी होती है। उन्हें भी बुलाकर काउंसिलिंग की जाती है। फिर भी उन्हें परिवार के अन्य सदस्यों की नाराजगी और पड़ोसियों की तानाकशी तो सुननी ही पड़ती है। लेकिन जब वे उन्हें एक साल के बाद अपनी झोपड़ी छोड़, अपने फ्लैट में शिफ्ट होते और जीवन स्तर में सुधार देखते हैं तो कई अन्य महिलाएँ भी यह राह अपना लेती हैं।

भारत की तरफ आकृष्ट होने की कुछ वजहें और हैं। इस प्रक्रिया का कम खचींला होना। यहां एक बच्चे के जन्म में 10 लाख से 15 लाख तक का खर्च आता है जबकि अमेरिका में यही खर्च बढ़कर 55 लाख का हो जाता है। वैसे जन्म देने वाली माँ के हिस्से 2–3 लाख रूपये ही आते हैं। 50,000 एजेंट ले लेते हैं और बाकी पैसे प्रतिरोपण, दवाइयां और माँ की देखभाल में खर्च होते हैं। भारत में कानून भी उनके पक्ष में है।वह जन्म देने वाली माँ को बच्चे का कानूनी संरक्षक नहीं मानता है। इंगलैंड और ऑस्ट्रेलिया में जन्म देने वाली माँ को ही यह अधिकार प्राप्त है। फिर भारत में लोग बच्चे को सौंपने से इनकार नहीं करते। जबकि कई बार विदेशों में माँ ने बाद में इनकार कर दिया है, बच्चे को सौंपने से।[13]

एक विचार यह भी उठता है कि अपने बच्चे के इच्छुक माता–पिता के लिए इस से बड़े पुण्य का काम और क्या हो सकता है कि आप उनका ही अंश उनके गोद में सौंप सकें। चाहे हम एडॉप्शन की कितनी भी वकालत करें पर इस से इनकार नहीं कर सकते कि हर स्त्री–पुरूष में अपने बच्चे को गोद में खिलाने की आकांक्षा होती है। कितने ही निःसंतान द्ंपत्ति की जद्योजहद देखी हैऔर अगर विज्ञान उन्हें यह सुविधा मुहैया करवा रहा है और इसी बहाने वह किसी के जीवन में सुधार लाने में भी सक्षम होते हैं तो क्या गलत है इसमें ? पर भविष्य की एक भयावह तस्वीर भी खींच जाती है कि यह चलन आम ना हो जाए और कहीं इसका दुरूपयोग ना शुरू हो जाए। आज मजबूरी में वे यह प्रक्रिया अपना रहें हैं, भविष्य में यह शौक ना बन जाए। अधिकतर सरोगेट मदर्स को अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए पैसे चाहिए होते हैं। कुछ को घर बनाना होता है या कुछ को कर्ज उतारना होता है। सरोगेट मदर्स बहुत मजबूत महिलाएं होती हैं जो अपने लिए खुद फैसला करती हैं और एक ऐसे परिवार की मदद करती हैं जिनके पास बच्चा नहीं है या पत्नी किसी कारण गर्भ धारण नहीं कर पा रहीं।

सभी फैसले कॉन्ट्रैक्ट देने वाले यानि बच्चा चाहने वाले द्ंपत्ति करते हैं। वही सरोगेट मदर चुनते भी हैं। वही तय करते हैं कि क्या ये महिला बच्चे को बाद में देख सकती है या नहीं या फिर फोटो भेजे जाएंगे।अगर कुछ मुश्किल हो जाती है तो गर्भपात करवा दिया जाता है।गैमी बेबी जैसा मामला भारत में होगा ही नहीं क्योंकि यहां सरोगेट मदर्स को कुछ कहने का अधिकार ही नहीं है।अधिकतर भारतीय महिलाएं पूरा कॉन्ट्रैक्ट पढ़ती भी नहीं हैं या कहें कि उन्हें पढ़ना लिखना आता ही नहीं है। अधिकतर मामलों में गर्भ के तीसरे महीने महिला समझौते पर साइन करती है। बच्चे में कुछ गड़बड़ी होने पर बिना पूछे गर्भपात करवा दिया जाता है।कुल मिला कर इस बारे में आजाद फैसले की दलील एक भ्रम सी लगती है।सरोगेसी से पैदा हुए बच्चे पर जेनेटिक माता–पिता का हक होगा। गोद लेने वाले मामलों की तरह इसमें किसी घोषणा की जरूरत नहीं होती।गरीब महिलाओं की पैसों की चाहत उन्हें इस काम के लिए राजी करवा देती है। जब पुरूष गरीबी की वजह से किडनी बेचने को तैयार हो जाता है ताकि उनके घर में चूल्हा जल सके तो ठीक वैसे ही महिलाएं भी गरीबी के कारण अपनी कोख में दूसरे के बच्चे को पाल लेती हैं।

बांझपन भी सरोगेसी कीएक बड़ी वजह मानी जाती है। बांझपन के कारण महिलाएं भी अपने पति का इस कृत्य में साथ देने को तैयार हो जाती हैं। विश्व की तो बात ही नहीं सिर्फ भारत में ही हर वर्ष जितनी शादियां होती हैं उसमें से 10 प्रतिशत महिलाएं बांझपन से ग्रस्त होती हैं।

सेरोगेसी भारत के कुछ खास स्थानों में सबसे ज्यादा फैला है जैसे उड़ीसा, भोपाल, केरल, तमिलनाडु, मुंबई, गुजरात आदि। एक चीज जो ध्यान योग्य है वह है सेरोगेसी ऐसे राज्यों में ज्यादा देखने को मिली जहाँ पर्यटक ज्यादा आते हैं यानि भारत विदेशियों के लिए एक ऐसी जगह बन चुका है जहां सेरोगेट मदर्स आसानी से मिल जाती हैं और अब तो सरोगेसी ने पर्यटन का रूप ले लिया है। इच्छुक पैरेंट्स को टूर ऑपरेटर पूरा पैकेज ऑफर करते हैं। भारत के नर्सिग होम्स से उनका संपर्क रहता है।

अगर समय रहते इस विषय पर कानून नहीं बना तो भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है।ब्रिटेन के मशहूर अखबार 'द डेली मेल' की वेबसाइट पर 'सरोगेसी' (किराए की कोख) के मुद्दे पर प्रकाशित एक रिपोर्ट में भारत को 'बेबी फार्म' और 'बेबी फैक्ट्री' जैसे बेहद आपत्तिजनक नामों से पुकारा गया है। यही नहीं, अपनी कोख किराए पर दे रही भारतीय महिलाओं को बेहद गरीब भी बताया गया है।[14] आंकड़ों के मुताबिक पिछले साल ही भारत में करीब 200 बच्चों ने किराए की कोख से जन्म लिया। एक अनुमान के मुताबिक इनमें से आधे बच्चे ब्रिटिश नागरिकों के थे। हालांकि किराए की कोख से बच्चे पैदा करने वालों में अधिकतर 'समलैंगिक' होते हैं और वे अपने बच्चे के लिए स्पर्म या फीमेल एग डोनर का इस्तेमाल करते हैं।ऐसे में सवाल उठता है कि क्या भारतीय महिलाओं के प्रति अपमानजनक बातों और आपत्तिजनक टिप्पणियों के लिए हमारे देश का कानून नहीं जिम्मेदार है? भारत में साल 2002 में सरोगेसी को मान्यता दे दी गई थी लेकिन अभी तक इसे लेकर कोई पुख्ता कानून नहीं है।

एक महिला की कोख को बेबी फॉर्म या बेबी फैक्ट्री या कोख का व्यापार जैसे शब्द दिए जा रहे हैं। सवाल यह है कि महिला किसी मजबूरी के कारण कोख को बेचने जैसा कदम उठाती है तो समाज उसे कोख का व्यापार जैसे शब्द दे देता है। सच तो यह है कि यदि यह मान लिया जाएकि उसने अपनी कोख को कुछ पैसे के लिए बेचा है तो खरीदने वाला यह क्यों भूल जाता है। आखिरकार जिम्मेदार दोनों ही हैं। फिर सिर्फ महिला के लिए कोख का व्यापार करने जैसे शब्द क्यों?किराये पर कोख लेना सिर्फ एक व्यापारिक रिश्ता है जिसमें जन्म देने वाली माँ अपने बच्चे को अपना बच्चा नहीं कह सकती है, न जन्म लेने वाला बच्चा अपनी जन्म देने वाली माँ को माँ कह सकता है। समाज पर भी हैरानी होती है कि वह हर चीज की कीमत लगा देता है और अब तो माँ की कोख की भी कीमत लगा दी गई है।

संदर्भ–सूची :

1. Merino, Faith, Adoption and Surrogate Pregnancy, Infobase Publishing, 2010, P.P. 14
2. Ragone, Helena, Surrogate Motherhood: Conception in The Heart, Westview Books, 1994, P.P. 9
3. वही पृ० 17
4. वही पृ० 67-69
5. वही पृ० 71 & 75
6. वही पृ० 16
7. वही पृ० 30

8. Kannan, Shilpa, Regulators Eye India's Surrogacy Sector, India Business Report, BBC World, Retrieved March 23,2009.
9. Merino, Faith, Adoption and surrogate Pregnancy, Infobase Publishing, 2010,P.P.-162
10. Robertson, John A., Surrogate Mothers: Not so Novel after All, The Hastings Centre Report, Vol. 13, No. 5, October 1983, P.P. 28-34.
11. Robertson, John A., Assisted Reproductive Technology and the Family, Hastings Law Journal, Vol. 47, No. 4, April 1996, P.P. 911-933
12. Teman Elly, Birthing a Mother: The surrogate Body and the Pregnant self, University of California Press, 2010, P.P. 134-139
13. The Associated Press, India's surrogate mother business raises questions of global ethics, Dec. 30, 2007
14. वही Dec. 31, 2007.

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

SCIENTIFIC SENSIBILITY IN JAWAHARLAL NEHRU'S LETTERS

RANDHIR KUMAR

Science is a systematic study of an object on an idea. Sometimes we use a synecdoche to call a scientific invention. In the extended sense, science also implies a rational approach to ideas. Nehru in his writing uses the word, 'science' in all these senses. Like J.B.S. Haldane, Nehru had a deep fascination for the marvels of science. He partly inherited his interest in science from his father who was keenly interested in the practical science. Motilal Nehru's library contained books on subjects such as "Practical Bell-fitting" and "A Practical Treatise upon the fitting of hot water apparatus". Nehru himself described in the Autobiography how his boyhood tutor Ferdinand T. Brooks initiated him to the mysteries of science. *We rigged up a little laboratory and there, I used to spend long and interesting hours working out experiments in elementary physics and chemistry.*[1] At Cambridge he took the natural science Tripod. During his stay at Cambridge he came in contact with the ideas of Darwin, Marx, Bernard Shaw and the Fabian socialists. He was greatly impressed by the Russian Revolution and Lenin's determination to build a society on egalitarian and scientific principles. All these had a lasting influence on Nehru's thinking and his approach towards the role of science in solving social problems. Good scientific convention fascinated him. Krishna Hutheesing narrates how in 1948, when Nehru received his first electric razor, he was so excited that, at dinner, he gave a demonstration to his guests by shaving himself at the table. In the Autobiography Nehru reiterates his faith in science again and again. He calls science a great gift of the West and is convinced that it was a good thing for India to come in contact with the scientific and industrial West. He expressed his thanks to the British for one splendid gift of which they were the bearers, the gift of science and its rich offspring. It is his faith that makes him criticize Gandhi's blindness to it severely. Thus he is shocked at Gandhi's statement that Bihar earthquake of 1934 was a punishment for the sin of untouchability, and remarks: *Anything more opposed to the scientific outlook it would be difficult to imagine.*[2] And his complaint against Gandhi's creed of non-violence is that he has never considered in public all its implications philosophically or scientifically. Nehru admires Marx because *he dealt with the development of history and economics dispassionately and scientifically, avoiding all vagueness and idealism.*[3] In spite of his dislike of dogmatism and the excessive use of violence in normal times by the Russian Communists, he is convinced that *while all other systems and theories were groping about in the dark, Marxism alone …offered a real solution…to the great world crisis.*[4] At the same time he is a severe critic of contemporary Indian communists and shrewdly notes their weaknesses that *instead of spreading a scientific knowledge of communism and trying to convert people's minds to it they have largely concentrated on …the abuse of others* and that *they have not realized that*

in India today the middle-class intellectual is the most revolutionary forece.[5] His own vision of an ideal socio-economic order for India includes complete collective and cooperative enterprises and the growth of industry.

Nehru believes in Drawin's theory evolution which is based on science. For Darwin each species of animals had changed and developed by natural selection. This comes into conflict with the orthodox version of the history of the world. Nehru takes science to find out truth. Science takes nothing for granted and does not stick to dogmas. It seeks to encourage an open mind and tries to reach truth by repeating experiments. Nehru says:

> This was really dabbling in some kind of magic in the hope of gaining wealth and power and long life. It had nothing to do with the spirit of science. Science has no concern with magic and sorcery and the like.[6]

Science gives us new ideas and corrects our wrong notions of the past. In the past the supernatural bodies of the solar system were viewed with surprise and awe. Nehru points out that:

> Long ago the earth and all the planets were part of the sun. The sun was then as it is now a mass of flaming matter, terribly hot. Somehow little bits of the sun got lose and they shot out into the air. But they could not wholly get rid of their father, the sun. It was as if a rope was tied to them and they kept whirling round the sun.[7]

Nehru's approach to Nature and its phenomena is scientific and rational whereas that of the early people was narrow, credulous, superstitions, emotional, irrational and imaginary which tend to close and limit the mind of man and to produce a temper of a dependent, unfreeze person. They imagined that early misfortune was caused by angry and jealous gods whom *they tried to worship and offer peace offerings, as if nature were a wild beast which had to be appeased and cajoled. Thus thunder and lightning and epidemic diseases frightened them and they thought that these could be prevented only by offerings.*[8]

The methods and approach of science have revolutionized human life more than anything else in the long course of history and opened doors and avenues of further and even more radical change leading up to the very portals of what has been considered the unknown. The technical achievements of science are obvious enough to transform an economy of scarcity into one of abundance. Its invasion of many problems which have so far been the monopoly of philosophy is becoming more pronounced. It has changed the entire cosmos and tried human destiny to the rhythmic energy of nature, as is evident from the following citation.

> Space, time and quantum theory utterly changed the picture of the physical world. More recent researches

> into the nature of matter, the structure of the atom, the transmutation of the elements, and the transformation of electricity and light, either into other, have carried human knowledge much further. Man no longer sees nature as something apart and distinct from himself. Human destiny appears to become a part of nature's rhythmic energy.[9]

Nehru wants us to develop scientific approach, the adventurous and yet critical temper of science, the search for truth and new knowledge, the refusal to accept anything without testing and trial. He wants us to adopt the principles of logic and reason, the two instruments of philosophy as our guides and to develop the inquisitive spirit for seeing the transcendental reality. He, therefore, feels that with reverence for all that lies beyond we must face life. Thus we may develop the integral vision of life which embraces in its wide scope the past and the present, with all their heights and depths and look with serenity towards the future. He wants man to develop an integral vision consisting of the essentials of science, philosophy and religious temper for the present. And this synthetic outlook, Nehru believes, will deliver the goods and guide our present and future life as well.

Conscious artists like Nehru fear that science can lose its objective and become destructive in the hands of a self-centered and power-hungry man. He can use its gifts not for the welfare of mankind but for evil ends, as is evident here:

> The very progress of science, unconnected with and isolated form discipline and ethical consideration, will lead to the concentration of power and the terrible instruments of destruction which it has made, in the hands of evil and selfish men, seeking the domination of others – and thus to the destruction of its own great achievements.[10]

REFERENCES

1. ***An Autobiography***, Allied Publishers, Bombay, 1962, p.14
2. *Ibid., p. 490.*
3. ***Glimpses of World History,*** O.U.Press, New Delhi, 1996, p.539
4. *Op.cit.: An Autobiography,* p. 363.
5. *Ibid., p. 366.*
6. *Op. cit.: Glimpses of World History, p. 522.*
7. *Nehru's Letters from a father to his daughter,* O.U.Press, Calcutta, 1994, p.8.
8. *Op. cit.: Glimpses of World History, p. 34.*
9. ***The Discovery of India***, Jawaharlal Nehru Memorial Fund, O.U.Press, New Delhi, 1991, p. 32.
10. *Ibid., p.33*

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

आधुनिक भोजपुरी साहित्य आ "पं0 अक्षयबर दीक्षित" जी के रचना

रवीन्द्र यादव (शोध अध्येता)
भोजपुरी विभाग
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आर (बिहार)

डॉ0 मृत्युंजय सिंह (शोध निर्देशक)
प्रो0 स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम (रोहतास)

भोजपुरी साहित्य के विकास हिन्दी साहित्य के समानान्तर धीरे–धीरे भईल बा। भोजपुरी के शुरुआत 8वीं सदी में भईल। भोजपुरी या भोजपुरिया शब्द के सन् 1789 ई0 में पहिला बार लिखित प्रयोग भईल। आज भोजपुरी भाषा या साहित्य के बदलत महत्व आ ओकर विस्तृत परिदृश्य अपना भाषा साहित्य के सीधे सँउसे साहित्य जगत में अलग पहचान बनावे के साथे आधुनिक भोजपुरी साहित्य जगत के अगिला कतार में खड़ा बा। सदीयन बीत गईल। आज ई भाषा कवनों भारतीय भाषा से तनिको कम नईखे। आज भोजपुरी एगो अन्तराष्ट्रीय भाषा बन चुकल बा। भारत के अलावा नेपाल, मारीशस, सुरीनाम, द्रिनीडाड, गुवान आदि देशन में भोजपुरी बोलेवालन के संख्या 20 करोड़ बा। अपना देश में बिहार के पश्चिमी भाग आ उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के भाषा भोजपुरी बा। छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्यप्रदेश के बहुत जगहन पर भोजपुरी बोलल जाला। भारत में हिन्दी या अंग्रेजी के बाद सबसे बेसी आबादी भोजपुरी के बा।

आधुनिक भोजपुरी साहित्य आज काफी समृद्ध हो चुकल बा। भोजपुरी के विकास में अनेक विद्वान शुरू से लागल बाड़न। जेकरा साधना से भोजपुरी साहित्य के विकास हो रहल बा।

आधुनिक भोजपुरी मनीषी साहित्यकार लोगन में एगो प्रमुख नाम में 'पं0 अक्षयबर दीक्षित' जी बानी जेकरा साहित्य साधना के फलस्वरूप भोजपुरी साहित्य के भण्डार खूब भरल बा। इहाँ के भोजपुरी में साहित्य के हर विद्या में काम कइले बानी बहुआमी व्यक्तित्व के महान धनी 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' भोजपुरी साहित्य के सेवा कईले बानी। 'दीक्षित' जी सेवा निवृत्त होखला के बाद अउर समाजिक कार्यन से जुड़ गइनी। उहाँ के सगरो जिन्दगी साहित्य के काम में बितवले बानी। प्रति वर्ष ईहाँ के महान भोजपुरी साहित्यकार 'स्व0 भिखारी ठाकुर जी' के साथे–साथे अउर विद्वान लोगन के जनम दिन मनावेनी जवना में भोजपुरी के सगरो साहित्यकार लोगन के बुलावेनी अउर सब लोगन के सम्मानित करेनी। आधुनिक भोजपुरी साहित्य रचना में 'दीक्षित' जी बढ़–चढ़ के हिस्सा लेले बानी। 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के रचना 'भोजपुरी सुभाव' बाटे जवना के मुख्य उद्देश्य सर जार्ज अब्राह्य ग्रियर्सन, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, भिखारी ठाकुर, जयप्रकाश नारायण, महेन्द्र मिश्र, डॉ0 कृष्णादेव उपाध्याय आ धरीक्षन मिश्र आदि के भोजपुरी साहित्य आधुनिक भोजपुरी के उन्नत शिखर साहित्य जगत के परिचित करावल बा। सब महानुभाव सबके याद में 'दीक्षित' जी पुस्तक के लिखले बानी। कुछ अंश भोजपुरिया स्वभाव के प्रस्तुत करत बानी। भोजपुरिया लोग बड़ा सीधा स्वभाव के होला ये लोग के केहु धोखा दे दी तबो इ लोग बुझ ना पाई। धोखा खा जाई लेकिन धोखा दी ना। भले ही अइसन सुभाव वाला के मूर्ख कहल जाला बाकी संस्कृति के दृष्टि से अईसने होखे के चाहीं। अइसने लोग प्रभु तक आसानी से पहुँचेला।

''साँचे राँचे राम''[1],

यह से सोचल जा सकेला कि 'पंडित अक्षयबर दीक्षित' जी सरल सहज, मधुर विचार के साहित्य के रचनाकार बानी इहां के साहित्य रचना से एगो मनीषी के प्रतिभा झलकत बाटे।

पं0 'अक्षयबर दीक्षित' जी कुशल निबन्धकार बानी। इहाँ के निबंध के माध्यम से आधुनिक भोजपुरी साहित्य के विकास में काफी सहयोग कईले बानी। आधुनिक युग तक 'गद्य' के युग ह एही से निबंध के महत्व आउर बढ़ जाला चूँकि निबंध गद्य के सर्वाधिक कठिन विद्या हऽ। एह से भाषा साहित्य के विकास क्रम में ओकर उद्‌गम बाद में देखल जाला। भोजपुरी साहित्य में इहे हाल बा। एह भाषा में अभी ले निबंध के क्षेत्र में श्रद्धेय 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के कृतित्व मील के पत्थर बा। उहो के अभी तक तीन गो निबंध– संग्रह प्रकाशित हो चूकल बा।

''श्रद्धांजलि''

''भोजपुरी के सपूत'' आ ''भोजपुरी निबंध'' भोजपुरी के सपूत में भोजपुरी क्षेत्रन के विशिष्ठ लोगन के आपन दृष्टिकोण से पहचान कईल बा, इ संग्रह जीवन, संस्मरण, रेखाचित्र के मानल जा सकेला। श्रद्धेय नर्वदेवर चतुर्वेदी के शब्दन में कहल जात ''एह में अनुभव से अधिका अनुभव आ अध्ययन के योगा–योग बा''।[2]

'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' भोजपुरी साहित्य सम्मेलन में आ उत्साह एह दिशा में इहाँ के कवनो तरह के कमी नईखे आइल, बलुक ओह में निखारे आवत जा रहल बा। आज त साहित्यकार के रूप में बिहारे में ना पूरबी उत्तर प्रदेशों में धाक जमावत रहल बानी। जवना से आज भोजपुरी साहित्य में एगो आपन पहिचान बा। जवना के श्रेय 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के मिलत बा। 'दीक्षित' जी सिवान जिला के साहित्यिक चाहे सामाजिक कवनो उत्सव अईसन नइखे जवना में ईहाँ के योगदान कवनों ना कवनो पदाधिकारी के रूप में ना होखत होखे। 'दीक्षित' जी अपना गाँव में एगो पुस्तकालय सन् 1952 ई0 में खोलनी जवना के संस्थापक अध्यक्ष बानी। एहि तरे गोपालगंज जिला पुस्तकालय संघ के 'दीक्षित' जी सन् 1955 ई0 से सन् 1966 ई0 तक अध्यक्ष अउर सिवान जिला पुस्तकालय संघ के कई दशक तक उपाध्यक्ष रह चुकल बानी। पुस्तकालय संघ के अलावे जिला साहित्य सम्मेलन में 'दीक्षित जी' के कम योगदान नईखे। सारन जिला साहित्य सम्मेलन के कटया अधिवेशन के सन् 1968 ई0 में प्रधानमंत्री आ एकरे मढ़ौरा अधिवेशनों में प्रधानमंत्री पद पर रहनी। सन् 1966 ई0 में सिवान अधिवेशन में 'दीक्षित' जी स्वागत मंत्री रहनी। आ सारन जिला भोजपुरी साहित्य सम्मेलन में बढ़–चढ़ के सहयोग करी इहाँ के मेहनत से भोजपुरी साहित्य बहुत विकास पर बा। इहाँ पर संत कुमार वर्मा जी एगो लेख लिखनी जवना के शीर्षक– ''जन्मजात भोजपुरी सेवी श्री अक्षयबर दीक्षित''।[3], सिवान जिला के साहित्यिक जागरण में जे चन्द लोगन के योगदान पावल जा रहल बा। ओह में 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के नाम आदर के साथ लिहल जाला। निकट सम्पर्क में रहला के कारण हम इ अधिकार के साथे समर्थ बानी कि जवना लगन से महराजगंज अधिवेशन के प्रधानमंत्री निर्वाचित भइनी। 'दीक्षित' जी के सिवान जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पचरूखी अधिवेशन सन् 1973 ई0 में प्रधानमंत्री बनावल गइनी। एही तरे सिवान जिला साहित्य सम्मेलन के सन् 1981 ई0 में गोपालगंज जिला हिन्दी सम्मेलन के सन् 1982 ई0 में आ गोपालगंज जिला भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के सन् 1987 ई0 में अध्यक्ष रह चुकल बानी। एही तरे 'दीक्षित' जी भोजपुरी साहित्य सम्मेलन में कम ख्याति अर्जित नईखी कइले ईहाँ के भोजपुरी साहित्य के विकास में बड़ा सराहनीय सोच बा।

''पं0 अक्षयबर दीक्षित'' जी आधुनिक भोजपुरी साहित्य के एगो मजबूत अउर सफल साहित्यकार बानी। ईहाँ के आपन सगरो रचना से भोजपुरी साहित्य के सजवला–सवरला में भरपूर

सहयोग बा। 'दीक्षित' जी अखिल भारतीय सम्मेलनों में कम नईखे। जब अखिल भोजपुरी सम्मेलन के तीसरका अधिवेशन सन् 1977 ई0 में सिवान में भईल त स्वागत समिति के स्वागत मंत्री रहनी। एह समिति के कार्यसमिति आ प्रवर समिति के सदस्य रहला के बाद एकर उपाध्यक्ष रह चुकल बानी। एकरा साथे ईहाँ के भोजपुरी विकास मण्डल के प्रधानमंत्री बानी। कई एक साहित्य संस्था सब अपने के समय–समय पर सम्मानितो कर चुकल बानी। अखिल भारतीय भोजपुरी परिषद् त ईहाँ के ''भोजपुरी शिरोमणि'' के अलंकरण से 12 फरवरी सन् 1993 ई0 के लखनऊ अधिवेशन में अलंकृत कईल हवे।[4]

'पं0 अक्षयबर दीक्षित' जी के हिन्दी या भोजपुरी के प्रकाशित पुस्तकन में प्रमुख बा–

1. अड़ऊ (गद्य, पद्य संग्रह)
2. सतहवाँ (कहानी संग्रह)
3. नवज्योति (हिन्दी भोजपुरी के कविलोगन के परिचय ग्रन्थ) 4. गोस्वामी सदानन्द स्मृति ग्रन्थ (सम्पादन)
5. श्रद्धांजलि
6. भोजपुरी निबंध
7. भोजपुरी के सपूत

महान साहित्यकार भगवान सिंह भास्कर जी 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के विषय में कहत बानी.

''निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।[5],
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को शूल।''

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु जी के एह विचार के प्रबल समर्थक बानी 'पं0 अक्षयबर दीक्षित' जी संस्कृत अउर हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान भईला के बावजूद उहाँ के अपना मातृभाषा भोजपुरी के विकास में हमेशा प्रयत्नशील रहनी। 'श्रद्धांजलि' के छोड़ के बाकी सब मौलिक ग्रन्थ उहाँ के भोजपुरी में लिखले बानी। शुरू में ई जान बड़ा अचरज भईल कि जे आदमी संस्कृत चाहे हिन्दी में आपन विचार खूब परिस्कृत भाषा में लिख सकत बा। भोजपुरी भाषा में काहे लिखाता बाद में जब ईहाँ के मातृभाषा के प्रति प्रेमभाव जननी त हमार मन गद–गद हो गईल। इहे ना ईहाँ के अपना घरवो के नाम ''भोजपुरी भवन'' रखले बानी।

'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के आधुनिक भोजपुरी साहित्य में बहतु बड़हन योगदान बा। जवना के चलते आज भोजपुरी साहित्य के परचम जानल–सुनल– समझल ना रहे। ओकरा अपना भाषा के शक्तिए से इ बतावे के पड़ेला कि जवना पद्य के अपनावल गइल बा ऊ अनजान ना होके सर्वथा परिचित आउर आपन बा। आधुनिक युग तक गद्य के युग ह एही से निबंध के महत्व आउर बढ़ जाता। चूँकि निबंध गद्य के सर्वाधिक कठिन विद्या ह एह से भाषा साहित्य के विकास क्रम में ओकर उद्गम बाद में ले देखल जाला। भोजपुरियों में इहे हाल बा। एह भाषा में अभी ले निबंध के क्षेत्र में बहुत कम काम भइल बा। लेकिन जवने कुछ काम लउकत बा। ओह में हमरा 'पं0 अक्षयबर दीक्षित जी' के कृतित्व एगो मील के पत्थर बा।ख6, उहाँ के अभी ले तीन गो निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुकल बाड़ी सँ–'श्रद्धांजलि' 'भोजपुरी के सपूत' आ 'भोजपुरी निबंध' बा।

'श्रद्धांजलि' त हिन्दी में लिखल संस्मरणात्मक निबंधन के संग्रह ह जेइमें उहाँ के विभिन्न क्षेत्र के अमर पूर्व पुरूषन के हार्दिक श्रद्धा सुमन समर्पित कइले बानी एह संकलन के बारे में हम अपना ओर से कुछ ना कहे के खाली आचार्य 'जानकीबल्भ शस्त्री' के दूगो पंक्ति उद्घृत कर देत बानी। 'दीक्षित' जी के ये भावोकुल लेख उनके ह्रदय के स्वच्छता अउर गहराई परिचायक बा इन में ताजगी अउर सुगन्ध भी। महमह करत मानसिक वातावरण में स्पृहणीयता भर रहल बा।[7], 'दीक्षित' जी के इ 'श्रद्धांजलि' उनकरा अध्ययन, मनन, चारित्रिक उठान अउर ह्रदय कऽ गहराई पर एगो छवि बा। उनकरा बहरा–भीतर जो कुछ देय–प्रदेय उनका चरित नायकन लोगऽन के अर्पित कइला में कवनो कोर कसर नइखी छोड़ले।

आधुनिक भोजपुरी साहित्य में भोजपुरी लोक कला–[6],

भोजपुरी बहुआयामी शब्द हवे। एकरा साथे अनेक उपयोगी आ महत्वपूर्ण आयाम जुटल बाड़े सन। भोजपुरी लोक कला, भोजपुरी भाषा, भोजपुरी साहित्य, भोजपुरी संस्कृति, भोजपुरी सभ्यता, भोजपुरी आचार–व्यवहार, भोजपुरी पर्व–त्यौहार, भोजपुरी रहन–सहन, भोजपुरी खान–पान, भोजपुरी रीति–रिवाज, भोजपुरी सोच–विचार आदि विषय वस्तु एकरा साथे रसल–बसल बाड़े सन। एह सब विषयन पर लमहर पोथा लिखल जा सकता। भोजपुरी भाषा, साहित्य आ संस्कृति खाली बिहारे, उत्तर प्रदेश चाहे भारते तक सीमित नइखे, ई त विश्व कऽ प्रायः दस देशन में फइलल बा। जबले सब देशन में फइलल भाषा साहित्य आ संस्कृति के इतिहास के अध्ययन चाहे तुलनात्मक, अध्ययन उपस्थित ना कईल जाई तबले कवनो ऐतिहासिक चाहे सांस्कृतिक ग्रन्थ अधूरा मानल जाई। भोजपुरी भाषा, साहित्य आ संस्कृति आदि ओह सब देशन में विकासोन्मुख बा। हँ त मानही के परी जे बिहार आ उत्तर प्रदेश एकर मूल क्षेत्र बाटे। ऊपर बतावल पुस्तकन के महत्व एह से बढ़ि जाता जे अबहीं भोजपुरी लेखन के शुरूआती दौर बा।

हमरा एह आलेख में भोजपुरी लोककला से सम्बन्धित कुछ बात करे के बाटे लोक कला का संदर्भ में स्वनामधन्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जवन कहले बानी ओकर आशय ई बा जे जवन चीज लोक से सीधे उत्पन्न होके जन–मानस के आन्दोलित, प्रभावित आ संचालित करे इहे लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य आ लोक कला नाँव से पुकारल जाला। लोक शब्द से अनेक अर्थ निकलेला समूचा मानव समूह ओकर क्रिया–कलाप आ ओकरा परम्परा में लोक के भाव स्थित बाटे। लोक शब्द से जवना समाज के बोध होला ओकर आपन संस्कृति आ संस्कार होला जब केहू अपना खास के मेटा के समिष्टि में विलीन कऽ देला आ ओइसे जवना समाज के निर्माण होला ओही संस्कार से लोक के निर्माण होला। हमनी का जवना के संस्कृति कहीले ओकर मूल लोके में बाटे एही से लोककला संस्कृत चाहे धर्म से विशेष प्रभावित बाटे। समूचा मानव समाज का एकता के जवन दृश्य लोककला में मिलेला तवन दोसरा जगह सम्भव नइखे। लोककला संगठित आ शांत समाज के परिचायक हवें। लोक कला में स्थानीय आ जातीय विशेषता पावल जाला। ओइमें संगठित जन समाज के संस्कृति आ लगाव पावल जाला। एही से लोक कला सामान्य जन कऽ भावना के प्रतिनिधित्व करेला।

कला के दू गो पक्ष बा–शिष्ट (शास्त्रीय) कला आ लोक कला।[7] शिष्ट कलाकार अपना कला के जटिल आ अनबूझ पहेली बना देले बाकी लोक कलाकार अपना कला में लोक परम्परा के देखावे के प्रयास करेले। एही से लोक कला सरल, ह्रदयग्राही आ बोधगम्य होला। लोक कला के आनन्द लेवे खातिर खाली आँखिए के जरूरत नइखे ओह कला पारखी कऽ संवेदनशील भईल जरूरी बा। संवेदनाील का अभाव में कला का गइराई तक पहुँचल कठिन होई। लोक कला के क्षेत्र बड़ा व्यापक बा काहे कि ई जीवन से सम्बन्धित बाटे। एइ में मानव जीवन के साड़ोपाड़ चित्रित कइल जाला।

मानव के सुख, दुःख, मंगल, उत्सव, बालक्रीड़ा आदि में जवन चित्रकारी, अल्पना, चौक रंगोली, थापा पीड़िया, कोहबर, बनावल जाला ऊ सब जीवन के अंग हवे। एकरा अभाव में जीवन के कवनो सुखमय अवसर के उल्लास उमंग फीका बुझाए लागेला। तबे नू कहल जाला जे लोक कला अपना अन्तर में युग–युग के मानवीय इतिहास संजो के मानव के सहगामी बनल बा। परम्परागत ज्ञान स्मृति मानवीय कल्पना, उल्लास, उमंग, संघर्षमय जीवन का ताना बाना से लोक कला के सृष्टि होला आज दुनिया में जीवन का अन्यान्य क्षेत्र में खूब विकास हो रहल बा बाकी लोक कला, लोक गीत, लोक नाट्य आदि के तेजी से ह्रास होता जवना के सँजो के राखल बड़ा कठिन बुझाता। कुछ समय पहिले लोक कला आदि के क्षेत्र में स्वायतता रहे, ओह घरी परम्परा के जोर रहला से हमनी का ओकरा से आत्मीयता रहे त ऊ विकासोन्मुख रहे अब तक पिछला प्रायः पचास बरिस में बहुत कुछ बदलि गइल। प्रकृति के नैसर्गिक गुण के विनास हो रहल बा। हमनी का कृत्रिम, प्रकृति का ओर आपन डेग बढ़ा देले बानी। कलाकार का सर्वाधिक सहारा ओकरा कल्पना से मिलेला। जब सब बदलि जाई त ओकरा कल्पना के स्रोत सूखि जाई। तब कलाकार कहाँ रहिजाई? जीवन में सम्वेदना कइसे विकसित होई?

सच सावित कइले के तरफ बढ़ रहल बाटे। उनके सुभाव के देखि के हम इहे कहि सकेनी कि

''सरल सुभाव छुवा छल नाहीं''।[8],

''पं0 अक्षयबर दीक्षित'' जी के व्यक्तित्व पक्ष पर कुछ लिखत कहल इ कठिन मालूम पड़त बा कि उनके व्यक्तित्व बड़ बा कि उनके रचनाकार के रूप में 'दीक्षित' जी हिन्दी, सस्कृत आ भोजपुरी के पंडित भी हई साथे–साथे पारिवारिक भी हई, समाज सेवी भी हई, एकरे अलावा उनके साहित्यकार के पक्ष, आलोचक चिंतक के पक्ष, कवित्व के पक्ष, संपादक आ संगठनकर्ता के पक्ष उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देत बा। एक ओर ऊ महिमामण्डित भोजपुरी सेवी विद्वान हवें साथे जिज्ञासु विद्यार्थी भी हवें। गोपालगंज जिला में दीक्षितौली पत्रालय हुसेपुर, बिहार का माटी में पैदा भइल तुलसी के ई बिरवा अपने मंजरी के खुशबू से विगत लगभग पचास बरिस से भोजपुरी जगत के अँगनइया के सुवासित क रहल बा।

संदर्भ :–

भोजपुरी सुभाव :–भोजपुरी वांगमय अक्षर वटः 'अक्षयवर दीक्षित जी', डॉ0 आद्या प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ सं0–155 से 159

अजब :–निबंध भोजपुरी लोक कला, पृष्ठ सं0–51 से 55

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

चित्रा मुद्गल के साहित्य में स्त्री जीवन का यथार्थ

सुमन कुमारी
एम0ए0, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय,
बोधगया, बिहार, शिक्षिका

आधुनिक हिन्दी साहित्यिक रचना प्रायः यथार्थ पर ही निर्भर है। सामाजिकता का यथार्थ मानव जीवन का यथार्थ होता है। स्त्री समाज से अलग नहीं, बल्कि मूल और अभिन्न भाग है जिसे हमेशा समाज और साहित्य से जोड़कर रखना बेहद जरूरी है। पूरा समाज आधुनिक युग के यथार्थ से प्रभावित है। स्त्री और पुरुष दोनों में स्त्री अधिक प्रभावित है, क्योंकि वह दोहरे दायित्व का निर्वाह करती है। जहां एक ओर घर–गृहस्थी, परिवार, बच्चे, घर के अन्य सदस्यों के साथ अच्छा तालमेल रखती है, वहीं घर से बाहर की जिंदगी, कामकाज, कार्यक्षेत्र के दायित्व को भी बड़े सहजता से निभाती है।

चित्रा जी का कथा साहित्य निम्नस्तरीय स्त्रियों के जीवन संघर्ष का वृतांत है। स्त्री शोषण, स्त्री संघर्ष, परंपरा मुक्ति, पितृसत्तात्मक टकराहट एवं संघर्ष, अस्मिता और अस्तित्व की लड़ाई तथा सशक्तिकरण आदि स्त्री की वास्तविक परिस्थिति और उससे जुड़े अनेक मुद्दों का समग्र एवं सूक्ष्म चिंतन इनकी लेखनी में मिलता है। इनकी कथा साहित्य की स्त्रियाँ स्वत्वहीनता और खामोशी को तोड़ अपनी चुप्पी को गहरे मानवीय अर्थ प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने साहित्य लेखन के माध्यम से स्त्री को पितृसत्तात्मक मूल्यों के दोहरे नैतिक मापदंडों व अंतर्विरोधों को समझने एवं पहचानने की अंतर्दृष्टि प्रदान किया है, जिससे वह अपने वास्तविक अस्तित्व के प्रति सजग होकर अहमवादी पुरुष सत्ता और उसके वर्चस्व को चुनौती देकर संघर्षपूर्ण छवि सामने ला सके। स्त्री की वास्तविक स्थिति एवं उसके जीवन से जुड़ी समस्याओं और घटनाओं तथा अधिकार प्राप्ति के लिए उसके संघर्ष की गाथा को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। उन्होंने परंपरा से हटकर जिस दृढ़निश्चर्या, आत्मविश्वासी, स्वाभिमानी और अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए समाज से संघर्ष करने वाले स्त्री पात्रों को अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है, वह निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। उन्होंने स्त्री की विविध स्थितियों एवं दशाओं पर अपनी पैनी नजर रखते हुए साहित्य लेखन किया है।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में मानव जीवन के शाश्वत और रूढ़िगत मूल्यों का बहिष्कार हुआ है। स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को सहज रूप में प्रस्तुत हीं नहीं किया है, बल्कि रूढ़िगत मूल्यों का बहिष्कार कर उन पर विचार करने और उस दिशा में ठोस कदम उठाने पर जोर दिया गया है। डॉ0 महेन्द्र भटनागर लिखते हैं– ''जीवन की नाना समस्याओं का उद्घाटन तथा उनका हल आज के उपन्यासों का प्रधान काम है।'' चित्रा जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से परंपरागत रूढ़िगत जीवन मूल्यों को अस्वीकार करते हुए उसकी यथार्थता को प्रस्तुत किया है। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन शैली के साथ निम्न वर्गीय सामाजिक जीवन को अधिक महत्व दिया है। उनकी रचनाओं में प्राचीन मूल्यों के प्रति आक्रोश का भव प्रकट होता है। पुराने मूल्यों का खंडन उनकी कथा साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है।

चित्रा जी शोषितों, पीड़ितों तथा स्त्री के अधिकारों के प्रति संघर्ष करते हुए उन्हें न्याय दिलाने के लिए हमेशा तत्पर रही हैं। स्वयं अपने जीवन में कभी हार न मानने वाली लेखिका चित्रा जी का साहित्य भी पाठकों को संघर्ष और साहसी बनाने की प्रेरणा देता रहा है। एक जमींदार घराने की होने के बावजूद भी उन्होंने हमेशा गरीबों, शोषितों, पीड़ितों के बीच जाकर अपने सामाजिक कार्यों को पूरे दायित्व के साथ निभाया है। चित्रा जी कहती हैं कि जिस तरह साहित्यकार कभी समझौता नहीं करता, एक पत्नी और माँ अपनी दायित्व नहीं भूलतीं उसी तरह एक समाजसेवी भी समाज के प्रति अपना कर्तव्य नहीं भूलता। सबकी अपनी–अपनी सीमाएं हैं, प्रतिबद्धताएं हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से गृहस्थ जीवन के दोहरे दायित्व का निर्वहन करते हुए नारी के शोषण, शिक्षा, अज्ञानता, विवशता, सामाजिक न्याय, सामाजिक रीतियाँ आदि के प्रति अपनी आवाज को बुलंद किया है। उन्होंने स्त्री दमन एवं शोषण, स्त्री स्वातंत्र्य की छटपटाहट, सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता, गरीबी, भूख आदि विषयों पर लेखनी कर अपनी रचना–धर्म बखूबी निभाया है। उनकी रचनाएँ अपने समय की गहरी संवेदना एवं सर्जनात्मकता की सबसे बड़ी मिशाल हैं। उनकी साहित्यिक रचनाएँ समष्टिगत हित और लोकमंगल की भावना से भरी हुई हैं। उन्होंने अपने साहित्यिक रचनाओं के द्वारा जीवन के अनुभव, यथार्थ और वर्तमान सत्य को प्रस्तुत किया है।

चित्रा जी की रचना पर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि उन्होंने पारिवारिक जीवन अथवा स्त्री–पुरुष संबंधों से हटकर अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संदर्भों की रचनाएँ की हैं। उनकी साहित्यिक रचनाएँ हैं कि महिलाएँ अपने बारे में स्वाभाविक रूप से लिखती हैं, जबकि पुरुष साहित्यकारों के कवियों एवं लेखकों ने अन्य विषयों के अतिरिक्त अपने लेखन के द्वारा सशक्त नारी पात्रों के माध्यम से प्रखर नारी चेतना की अभिव्यक्ति की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है, तब भी स्त्रियों के बारे में ही लिखती हैं और पुरुष जब साहित्य लिखता है तब भी स्त्रियों के संबंध में लिखता है। दोनों का अंतर यह होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य है अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय में और भी भ्रम पैदा करना।

चित्रा जी अपनी रचनाओं में स्त्री के अधिकार तथा उसके जिम्मेदार व्यक्तित्व को चिन्हित किया है। उनकी मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ तथा कामकाजी स्त्रियाँ अपने ऊपर होने वाले अन्याय का डटकर सामना करने में निपुण हैं। उनके द्वारा रचित रचनाओं की निम्नस्तरीय स्त्रियाँ हिम्मती और साहसी प्रवृत्ति की हैं। विशेषतः रचनाकार झोपड़पट्टी जीवन को जीने के कारण श्रमिक वर्ग, मजदूर वर्ग की जिंदगी को देखने, छूने तथा प्रस्तुत करने की लगातार कोशिश करती हैं। उनकी अधिकांश रचनाएँ मुंबई महानगर तथा वहाँ के झोपड़पट्टी में बसे जन जीवन की तकलीफों, परेशानियों, संघर्षों तथा उसके सुख–दुख को आधार बनाती हैं। उनके उपन्यासों एवं कहानियों की स्त्री पात्रा पूर्ण रूप से आस–पास के जीवन में विद्यमान हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य की कई महिला रचनाकारों ने स्त्री जीवन से जुड़े स्थूल एवं सूक्ष्म समस्याओं को मनोवैज्ञानिक तरीके से देखने का प्रयास किया है।

चित्रा जी ने स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से स्त्री के अंतरमन में उतर कर अनछुए जीवन प्रसंगों, स्थितियों एवं समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए अनेक पहलुओं को रचना का विषय बनाया है, जिससे हिन्दी साहित्य जगत में उनका नया पहचान बना है। स्त्री जीवन की कहानी और उसकी वास्तविक जीवन स्थिति के साथ आत्मचेतन तथा आत्मसजग स्त्री के अनेक रूप उनके कथा साहित्य में मिलता है, जिससे स्त्री जीवन की व्यापकता का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। नासिरा शर्मा ने स्त्री विमर्श पर अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है– ''स्त्री विमर्श द्वारा शताब्दियों से चले आ रहे अंकुश की जंजीरों को तोड़ा जाता है जो औरत की जुबान और जज्बात को बांधे हुए है।''

चित्रा जी की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री विमर्श मुख्य रूप से देखने को मिलती है। स्त्री–विमर्श के संदर्भ में यहाँ स्त्री स्वातंत्र्य के नाम पर उसे नग्न करने के 'बोल्ड' उद्घोष नहीं हैं। उनकी स्त्री केवल देह नहीं है। वह स्वयं को मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील है– अपनी रूढ़िवादी मानसिकता से, प्रताड़ना से और उत्पीड़न से, क्रूर एवं निर्मम दुर्व्यवहार से, 'निरीह' या 'बेचारी' समझे जाने की सामाजिक अवधारणा से और बनावटी सहानुभूति के दिग्भ्रमित होने से। चित्रा जी की नारी पात्रा सम्मानित जीवन जीने के लिए लालायित हैं, फिर चाहे वह निम्न वर्ग की स्त्री हो या मध्य वर्ग की अथवा उच्च वर्ग की, वह आधुनिक है, आत्मविश्वास से भरी हुई है। अपने स्वाभिमान को कुचल कर वह कोई समझौता नहीं कर सकती। उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में अंकिता का कथन देखिए– ''वह सुअर का बच्चा सक्सेना....आठ–नौ पेग्स उसके गले उतर चुके थे और उसके हाथ पाँव उसके वश में नहीं थे। उसने कंधे पर ही हाथ नहीं रखा था, पार्टी की बात थी, वरना वहीं चप्पल उतार लेती, वह भी सीख जाता कि पार्टियों में लड़कियाँ बिकने नहीं आतीं, आती हैं तो उनके साथ कैसा सुलूक करना चाहिए, मगर जहर का घूंट पीकर रह गई, क्योंकि ऐसी जगह पर भर्त्सना करना उसे नंगा करना नहीं होता, अलबता अपने कपड़े जरूर उतर जाते हैं....''।[1] स्त्री में प्रतिकूल यथास्थिति के विरूद्ध पहला कदम उठाने का साहस और पहला प्रहार सहने का आंतरिक शक्ति का संयोजक चित्रा जी की स्त्री, स्त्री विमर्श में अलग पहचान प्रस्तुत करती है। उपन्यास 'एक जमीन अपनी' स्त्री विमर्शवादी के रूप में हिन्दी कथा साहित्य जगत् में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। विज्ञापन जगत की दिखावटी भ्रष्ट दुनिया में अपनी स्वाधीनता और आधुनिकता खोजती मध्यवर्गीय स्त्री के अंतर्विरोधी संघर्षों को चित्रा जी ने संतुलित तरीके से इस उपन्यास में उठाया है। इस उपन्यास में एक विशिष्ट प्रकार के कथ्य और परिवेश का चयन कर स्त्री के माध्यम से स्त्री की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

समकालीन साहित्य के कई लेखिकाओं ने नारी जीवन से जुड़ी स्थूल एवं सूक्ष्म समस्याओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने–परखने का प्रयास किया है। एक स्त्री होने के नाते उन्होंने स्त्री सुलभ उदात्त चरित्र और मूल्यों की स्थापना की है। उन्होंने अपनी साहित्य में पारंपरिक नारीत्व के भावों जैसे सतीत्व, पत्नीत्व, मातृत्व का ख्याल कराते हुए आत्मबोध भर दिया है। आधुनिक युग में शिक्षा, नौकरी और जीवन मूल्यों में आए बदलाव मानव जीवन में भी परिवर्तन लाए। समकालीन महिला लेखन स्त्री में अस्तित्व बोध जगाकर उसमें आत्मविश्वास और व्यक्तित्व को उजागर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस योगदान में चित्रा जी का प्रयास महत्वपूर्ण रहा है।

चित्रा जी स्त्री विकास से संबंधित प्रत्येक पहलू पर दृष्टि रखती हैं। वे कामकाजी स्त्रियों की समस्या सुलझाने का भी प्रयास करती हैं। नमिता को जब अन्ना साहब के यहाँ नौकरी करने का प्रस्ताव मिलता है, तब वह उनसे एक दिन की मोहलत मांगती है क्योंकि जाने से पहले, ''घर से पूरा दिन अनुपस्थित रहने के लिए उसे घर की वर्तमान व्यवस्था को नई रूपरेखा देनी होगी''[2] ताकि उसके अपाहिज पिता की देखभाल हो सके।

चित्रा जी के कथा साहित्य में स्त्री जीवन जीवंत एवं यथार्थ रूप में पूर्णतः उल्लेखनीय है। उनकी कथा साहित्य में प्रताड़ित, उपेक्षित, शोषित और रूढ़ियों के पेंच में जकड़ी रहने वाली स्त्री के यथार्थ व अनुभूतिपरक चित्रण चित्रा जी की रचना में विद्यमान है जिसका यथार्थ मानव समाज को स्त्री जीवन के वास्तविक स्थितियों, संघर्षों एवं समस्याओं से परिचित करवाकर उनके विचार और नजरिये को साकारात्मक ढंग से प्रस्तुत करना है। स्त्री पात्रों की छोटी–छोटी अनुभूतियों को रचकर जनमानस में व्याप्त स्त्री को साकार रूप देने का काम चित्रा जी ने किया है।

एक स्त्री को उसकी जरूरतें या घर की आर्थिक स्थिति या भूख उसको धनार्जन करने के लिए विवश करती है। कामकाजी स्त्रियों को अपने कार्यक्षेत्र में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

आज भी अपने कार्य क्षेत्र में उनको गुलाम या उपभोग की वस्तु समझा जाता है, फर्क बस यह है कि आज के समय में शोषण का तरीका बदल गया है। चित्रा जी ने स्त्री के प्रति होने वाले शोषण एवं स्त्री जीवन से संबंधित संघर्षों को अपनी लेखनी द्वारा सामने लाने का प्रयास किया है। स्त्री शोषण का प्रतिरोध भी इनकी रचनाओं में शामिल है।

चित्रा जी ने अपनी रचनाओं में माँ, पत्नी, पुत्री के साथ ही साथ स्त्री के अन्य रूपों का चित्रण भी बहुत ही सफलतापूर्वक किया है। उन्होंने माँ के कठोर और सहृदय दोनों रूपों का चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यास 'आवां' की स्त्री पात्रा सुनंदा और 'एक जमीन अपनी' की नीता के माध्यम से अविवाहिता माँ के रूप का भी चित्रण किया है। लेखिका ने इन स्त्री पात्रों के चरित्र को प्रकट कर वर्तमान समय की स्थिति को दर्शाया है। उन्होंने स्त्री के पत्नी रूप का परंपरागत एवं नवीन दोनों रूपों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की नायिका अंकिता में भारतीय संस्कारों से युक्त, संतुलित व्यक्तित्व संपन्न आधुनिक पत्नी रूप के दर्शन होते हैं। 'गिलिगडु' की सुनगुनिया में भारतीय पतिव्रता नारी रूप का चित्रण किया गया है। 'आवां' की उर्मिला के रूप में स्वार्थी पत्नी का रूप देखने को मिलता है, जिसे अपने बीमार पति की देखभाल की कोई परवाह नहीं।

चित्रा जी ने अपनी साहित्यिक रचना के माध्यम से स्त्री मुक्ति, आत्म पहचान और उसकी दशा–दिशा पर विचार–विमर्श करते हुएअनेक प्रश्न उठाये हैं वर्तमान समय की स्त्रियाँ चहारदीवारी से मुक्त होकर आत्मनिर्भरता हेतु विभिन्न क्षेत्रों में अपने कदम आगे बढ़ाये हैं। आज वह उद्योग, व्यवसाय, नौकरी, पर्यटन, साहित्य, धर्म, विज्ञान आदि प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ मिलकर कार्य करने में सक्षम साबित हो रही हैं। आर्थिक निर्भरता से उनके अंतःकरण में दृढ़ आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ है। आज की स्त्री शिक्षित होकर पुरानी रूढ़िवादी परंपराओं से बाहर निकल कर इन दकियानूसी परंपराओं और विचारधाराओं का कड़ा विरोध करती है।

चित्रा जी अपनी रचनाओं में स्त्री और पुरुष दोनों में मनोविज्ञान को उद्घाटित कर अपने लेखकीय सरोवर के लिए जगह का निर्माण किया है। उनकी कथा साहित्य में ग्राम्य परिवेश से लेकर बिछुए, सिंदूर उतारती आधुनिक स्त्री नीता तक के स्त्री पात्रों का वैशिष्टय समाहित है। सामान्य गृहिणी की स्थिति से लेकर नौकरीपेशा स्त्रियों की भूमिका और चेतना तक, फिल्मी विज्ञापन से लेकर पत्रकारिता के अन्याय के प्रतिकार में कड़ी स्त्री भंगिमा के साथ नारी के राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक प्रस्थान उसके अधिकार, कर्तव्य बदलती स्थितियों में नारी की भूमिका और योगदान आदि पर बड़ी ही समग्रता और संतुलित दृष्टिकोण से विचार किया है। उनके साहित्य का केन्द्रीय स्वर यही हैं स्त्री, स्त्री की शत्रु या स्त्री देह मात्र नहीं है। उनकी स्त्री चरित्र अन्याय और शोषण के विरूद्ध नारी जागरण और मुक्ति के संदेशवाहक है।

चित्रा जी ने अपनी रचना के माध्यम से प्रत्यक्ष जीवनानुभवों की भित्ति पर ही समस्याओं को रचनात्मक आयाम प्रदान किया है। प्रत्यक्ष जीवनानुभूति पर निर्मित चित्रा जी का लेखन–जगत क्रांति चेष्टा के भीतर लोक–मंगल का पथ प्रशस्त करती है। लेखिका सामाजिक पुनर्निर्माण और संरचना के लिए साहित्य को एक कारगर विकल्प के रूप में मान्यता प्रदान करती है।

चित्रा जी ने अपनी कथा साहित्य में समाज के विविध धरातल पर जी रहे लोगों की समस्याओं को स्वर दिया है। समकालीन जीवन एवं युग यथार्थ का खुरदरापन उनकी रचनाओं में मौजूद है। मौजूदा परिस्थितियों में स्त्री की स्थिति, नियति, व्यवस्था के खिलाफ रचनाओं में उठती चेतावनी, स्त्री जागृति, स्त्री चेतना तथा उसके लिए संघर्ष एवं प्रतिरोध उनकी रचनाओं की विशेषता है। जागरण जैसी संस्थाओं के साथ जुड़ने सेउनकी अनेक सामाजिक समस्याओं से सामना हुआ। उससे निर्मित अनुभव

एवं संवेदना उनकी कथा साहित्य का पृष्ठभूमि तैयार करती है और लिखने के लिए ऊर्जा प्रदान करती है।

समाज में आज भी स्त्रियों के लिए वहीं मान्यता है जो शताब्दियों से चली आ रही हैं पुरुष वर्ग स्त्री को इंसान के रूप में स्वीकार करने को तैयार ही नहीं हैं। आज भी लड़के–लड़की में भेद–भाव देखने को मिलता है। स्त्री के चेतना संपन्न होने पर पुरुष वर्ग उसे स्वीकारना नहीं चाहता। इस संदर्भ में चित्रा जी ने अपने उपन्यास 'आवां' की सुनंदा को प्रस्तुत किया है। वह उपन्यास की दबंग पात्रा है। वह सुहेल से प्रेम करती है और उससे गर्भवती हो जाती है। वह सुहेल से विवाह करना चाहती है, किन्तु धर्म और नाम परिवर्तन के शर्त पर नहीं। उसका कथन है– ''मैं औरों की सुख–संतुष्टि के लिए अपने सच को छोड़ दूँ या अपने स्व के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरनू दूँ, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ, सुहेल ने प्रेम करने के समय तो काई शर्त नहीं रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं, इस्लाम से करना होगा या उसे हिन्दुत्व से?''[3] इसीलिए उसका सुहेल से विवाह नहीं हो पाता बावजूद इसके वह बिना ब्याह के बच्चे को जन्म देती है जिसे हमारा समाज उचित नहीं मानता।

चित्रा जी की विस्तृत फलक वाला उपन्यास ''आवां' यद्यपि कई महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाता है तथापि इसका केन्द्रीय मुद्दा स्त्री विमर्श पर आधारित है। अर्थात् स्त्री जीवन के अनछुए पीड़ा स्थलों की खोज करना, उनका कारण जानना, स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष करना, उनका कारण जानना, स्त्री के प्रति सोचने और निर्णय करने की क्षमता प्रदान करना, स्त्री का व्यक्ति के रूप में प्रकाशित हो सकना, और संपूर्णता में जी सकने का रास्ता ही स्त्रियों के जीवन के यथार्थ को दर्शाता है। स्त्री जीवन का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री से मुक्ति का तात्पर्य पुरुष हो जाना या पुरुषोचित गुणों का स्वीकार्य नहीं है बल्कि दोहरे मानदंडों ने जो शर्मनाक स्थिति पैदा की उससे मुक्ति की इच्छा ही स्त्री जीवन का मुख्य यथार्थ है। चित्रा जी भी इस बात से स्वीकृति रखती हैं और चाहती हैं कि समाज स्त्री को मात्र देह भर न मानें क्योंकि वह मात्र देह भर नहीं है– ''उसके पास अपना समूचा व्यक्तित्व है जिसमें उसकी बुद्धि, उसकी संवेदना, उसकी तर्कशक्ति, उसकी निर्णय क्षमता, उसका विवेक, उसका मूल्यबोध सब कुछ उसका निजी हो सकता है। बिना किसी दबाव या अतिक्रमण के स्त्री इस सबका विकास करे और स्वयं को सत्ता के रूप में गिनवा सके, यही स्त्री विमर्श का अभीष्ट हो सकता है।''[4] (मेरे साक्षात्कार)

चित्रा जी नारी मुक्ति को स्त्री की मस्तिष्क से जुड़ा मानती हैं। उनका मानना है कि जिस दिन उसके मस्तिष्क को मान्यता मिल जाएगी, उसी दिन से यह मान लिया जाएगा कि वह स्वतंत्र है, मुक्त है। स्त्री को कई कोणों से देखते हुए उसकी स्थिति पर विचार करते हुए चित्रा जी कथा लेखन करती हैं।

चित्रा जी के कथा–साहित्य में वादों, नारों एवं आंदोलन से अधिक अपने समय और समाज के सच तथा अंतर्विरोधों में सिसकती स्त्री का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनकी रचनाओं में यथार्थबोध, सामाजिक जीवन और उसके विविध स्तरों तथा उसकी नानाविध समस्याओं का अंकन हार्दिक संवेदनीयता के साथ हुआ है। उनकी रचना क्रम में बयालीस वर्षों का भारतीय समाज, उसका व्यक्तित्व और दोनों के अंतर्संबंधों की संपूर्ण गतिशीलता अभिव्यक्त है।

हिन्दी कथा साहित्य लेखन में यद्यपि स्त्री की स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों की मांग अधिक मुखर है तो भी उनमें अल्पस्तर पर ही सही, नारी जाति को दायित्व–बोध का एहसास करने का प्रयास भी दृष्टिगत होता है। उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में परंपरागत रूढ़ियों के प्रति तीक्ष्ण आक्रोश व्यक्त है। साथ–ही–साथ वर्तमान की आयातित चुनौतियों को अपनी मान्यताओं, आवश्यकताओं की कसौटी पर

परखने का प्रयास भी है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति और उसका पोषक मीडिया तंत्र स्त्री को स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता का आकर्षक आईना दिखाकर नई तरह की दासता में कैद कर रहा है, जिसमें वह व्यक्तित्वहीन वस्तु बन रही है।

महादेव वर्मा ने 'पथ के साथी' में लिखा है, ''शैशव की चित्रशाला में जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध होता है, उसकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं।''[5] इसके प्रमाण में चित्रा जी की वे सभी रचनाएँ रखी जा सकती है, जिनकी पटकथा में उनके बाल्यावस्था की मीठी–मीठी यादें प्रतिबिम्बित हैं। इस बात को उन्होंने 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', की 'अपनी बात' में स्वीकार किया है– 'ठियां–ठियां मंजर हिंयां अंजर, हुआ बंजर' गाँव की चप्पे–चप्पे धरती के अपने तेवर हैं, जिसमें मेरी रचना विस्तार पाती है।'' 'जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं' में उनके बचपन के 'वैभव–विलासिता पूर्ण ऐश्वर्यशाली जीवन, अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न और आतंक का रूपांकर देखा जा सकता है।

चित्रा जी ने अपने स्वयं के जीवन में उन परंपराओं का विरोध किया जो स्त्री के विकास में बाधक थी, उसी बात को वे अपने पात्रों के चरित्र में उतार देती हैं। उपन्यास 'आवां' में नमिता के पिता की मृत्यु पर जब उनके क्रियाकर्म करने की बातआती है, तो वह स्वयं दायित्व उठाने का निर्णय लेती है। लेकिन उसके इस निर्णय के विरोध में उसकी माँ, मौसी और समाज के अन्य प्रतिष्ठित लोग खड़े हो जाते हैं। उस समय ताई एक ही बात कह कर उसका साथ देती है, ''जो कभी हुआ नहीं, वह हो ही नहीं सकता जरूरी नहीं। रूढ़ि टूटनी ही चाहिए।''[6] ऐसे ही स्मिता भी पितृसत्तात्मक मूल्यों का जब–तब विरोध करती है।

चित्रा जी की रचनात्मक दृष्टि जिंदगी के अंधेरों का अन्वेषण कर उसमें प्रवेश करती है। उपेक्षित वर्गों, जातियों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और समस्याओं का चित्रण वे गहरी संवेदनीयता से करती हैं। झुग्गी–झोपड़ी में रहने वालों की जिंदगी विपन्नता और भूख से बेहाल है, उसका एहसास कितना मार्मिक है और दिल दहला देने वाला यह उनके द्वारा रचित कहानी 'भूख' से पता चलता है। ऐसी कहानी का जन्म तब होता है, जब समाज में अर्थ का महत्व अमानवीयता की हद पार कर जाता हैं यह कहानी अति निम्न स्तरपर जी रही लक्ष्मा के जीवन की है, जिसके पति की मृत्यु हो चुकी है और वह अपने तीन बच्चों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान जैसी प्राथमिकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। तीन छोटे बच्चों को पेट भरने के लिए विवशता में विधवा लक्ष्मा मात्र दो रुपये प्रतिदिन पर गोद के अबोध बच्चे को भीख मांगने वाली औरत को किराये पर देती है। तीन महीने अपने भूख की योतना सहते–सहते बच्चा मर जाता हैं इस कहानी के माध्यम से चित्रा जी ने स्त्री के उस मातृत्व रूप के यथार्थ को प्रस्तुत यिका है जो अपने दो बच्चों को भोजन देने की विवशता में अपने छोटे अबोध बच्चे को खो देती है वह भी भूख के कारण।

चित्रा जी की रचना दृष्टि नितांत अनछुए जीवन–प्रसंगों एवं स्थितियों को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ रचती है। छोटे–छोटे प्रसंगों, मनःस्थितियों, व्यवहार, चिंताएँ, जरूरतें, सामाजिक भय आदि की अभिव्यक्ति में उनकी मानवीय चिंता उनकी अपनी अभिरुचियों और संस्कारों द्वारा नियंत्रित है। इन क्षणों में जीवन का अर्थ खोजती वह अपने समय और समाज से संवाद स्थापित करती है। ऊर्जा, जिजीविषा, समझ, चयन, उत्साह अनेक नाम दिये जा सकते हैं, पर मूल अर्थ में वह विवेक दृष्टि है, जो मानवीय नियति, विडम्बना और त्रासदी को अनुभव करने की क्षमता पैदा करती है। 'पाठ' कहानी का अंतिम वाक्य– ''माई कहत रही....बट्टी अऊर अंगोछा के दामसे रोज पिसान आएगा....तू नहाएगा कि रोटी खाएगा?''[7] इस कहानी में एक गरीब अनपढ़ माँ अनुभवजनित ज्ञान से जाती है कि पेट की आग बुझाना साबुन लगाकर नहाने से ज्यादा जरूरी है।

चित्रा जी द्वारा रचित 'दुलहिन' कहानी में बेटी की शादी के बाद भी अपने को दुलहिन समझने वाली माँ का मनोविज्ञान और माँ के इस व्यवहार से रुष्ट और शरमाने वाले बेटे के मनोविज्ञान को बहुत ही बारीकी से चित्रित किया है। अपनी सास के सामने हमेशा माँ अपने को दुलहिन समझती है। मनुष्य का सहज स्वभाव है कि यदि अपने से बड़े लोग हमारा ख्याल रखते हैं तो हम अपने को सदा छोटा समझते हैं। इसी मनोवैज्ञानिकता के कारण माँ सास की उपस्थिति में प्रत्येक साल गर्भ धारण करती है, लेकिन बड़े बेटे का माँ का यह व्यवहार विचित्र लगता है। अंत में सास के मृत्युपरांत माँ अपने बच्चों के सामने फूले पेट लादकर चलने में असहज महसूस करती है और वह गर्भ गिरा देती है। ''जब तक किसी बड़े का साया सिर पर होता है, आदमी छोटा बना रहता है। जिस दिन वह साया नहीं रहता, उसकी उम्र प्रौढ़ हो उठती है। बयालीस साल कीदुलहिन, आज अम्मा रह गई हैं– की, दादी, नानी, जेठानी, सास मात्र! वह कभी उनके इस एहसास को लेशमात्र भी महसूस ही नहीं कर पाया.....।''[8] यहाँ लेखिका ने इंगित किया है कि घर के प्रत्येक रिश्ते का जो स्थान है, उसके प्रति जो आदर–सम्मान है, उसे निभाने के लिए प्रत्येक सदस्य जिम्मेदार हैं अपने बच्चों की उम्र और उसकी मानसिकता का परवाह न करने पर घर के सदस्यों को मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि चित्रा जी की रचनाएँ अधिकांश रूप में नारी जीवन की चेतना से अलंकृत है। अपनी लेखनी के माध्यम से उन्होंने नारीत्व की श्रेष्ठता एवं कर्मण्यता दिखाने का प्रयास किया है। उनके कथा साहित्य के नारी पात्र चाहे वे मध्यवर्गीय हो, निम्नवर्गीय हो ज्यादातर वैचारिक, धरातल पर चेतना से पूर्ण है। इस दृष्टि से उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की अंकिता, 'आवां' की नमिता, नीलम्मा तथा 'गिलिगडु' उपन्यास की सुनगुनियां आदि पात्र महत्वपूर्ण हैं। उनकी कहानियों में पारिवारिक, घरेलू हिंसा, नौकरी पेशा नारी, अविश्वास एवं शक से निर्माण समस्या, बलात्कार आदि समस्याएँ तथा चित्रा जी ने वेश्याओं की समस्याओं को भी कहानियों के माध्यम से सामने लाया है। वेश्याओं की अनेक समस्या तथा उनके शोषण की समस्याओं का चित्रण चित्रा जी ने अपने अनुभव की कसौटी पर परा कर अपने कहानियों में उतारा है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. चित्रा मुद्गल, 'एक जमीन अपनी', उपन्यास, पृ0 34
2. चित्रा मुद्गल, 'आवां', उपन्यास, पृ0 84
3. चित्रा मुद्गल, 'आवां', उपन्यास, पृ0 112
4. चित्रा मुद्गल, मेरे साक्षात्कार
5. महादेवी वर्मा, 'पथ के साथी' (जनपथ पत्रिका, अक्टूबर, 2013)
6. चित्रा मुद्गल, 'आवां', उपन्यास, पृ0 400
7. चित्रा मुद्गल, 'पाठ' कहानी (आदि–अनादि–3), पृ0 231
8. चित्रा मुद्गल, 'दुलहिन' कहानी (आदि–अनादि–1), पृ0 40

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

मीनाक्षी स्वामी के उपन्यासों 'भूभल' में स्त्री चेतना

विजय कुमार

शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर, मध्यप्रदेश

मीनाक्षी स्वामी हिंदी की महत्त्वपूर्ण कथाकार के रुप में जानी जाती हैं। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में समाज–शास्त्री प्रविधि प्रयोग कर उनकी बारीकियों पर प्रकाश डाला है। 'भूभल' उपन्यास की विषम वस्तु स्त्री उत्पीड़न के साथ ही साथ पुरूषों द्वारा स्त्रियों का शोषण, झूठें आरोपों का वर्णन बहुत सहज सरल ढंग से हुआ है।

मीनाक्षी स्वामी जी का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास "सौ कोस मूमल" है। इस उपन्यास का विषय वस्तु हैं प्रेम की कसौटी में हमेशा स्त्री को ही साक्ष्य देना पड़ता है।

चेतना से हमारा तात्पर्य है, चेतन्य रहना यह अंगरेजी शब्द कांससेस (Consensus) शब्द से भी जाना जाता है। जो मस्तिष्क की जागृतिवस्था किसी वस्तु के विषय में जानकारी अथवा ज्ञान व विचारों को देना अर्थात् मनुष्य चेतना युक्त प्राणी है। अतः कोई भी क्रिया करने से पूर्व उसके परिणाम के बारे में भली प्रकार सोच लेता है।

डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार '' चेतना वह तत्व है जिसमें ज्ञान का भाव और व्यक्ति क्रियाशीलता की अनुभूति है जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं तो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।

डां. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार '' चेतना का अर्थ हम मानव मन की समझाने बुझाने की शक्ति से बौद्धिक प्रवणता, प्रवीणता प्रेरणा अथवा भावना के रूप में प्रमुख करते है। चेतना का सीधा संबंध मानव की बुद्धि से होता है और यह मानव प्राणी में ही संभव हैं।''[1]

मुख्य रूप से चेतना मानव में होती है। अर्थात् चेतना स्वंय को अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। स्त्री–विमर्श स्त्रियों पर समय–समय पर सामाजिक राजनैतिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से मान्यताओं और रूढियों के विरोध में उभरा वैचारिक आन्दोलन है। नारी समाज की अभिन्न अंग है जब से सृष्टि में नर और नारी का सृजन हुआ है। तब से वर्तमान आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के परिवेश में नारी विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है। समय के साथ–साथ नारी विमर्श के संदर्भ में भी भिन्नता पायी जाती है और समय के साथ उनमें परिवर्तन भी आता है।

नमिता सिंह के अनुसार जब हम स्त्री–विमर्श की बात करते हैं तो उसका अर्थ सामाजिक विकास की प्रक्रिया से जुडा होता है। नई सहसान्द्री का स्त्री–विमर्श साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ संपादक वीरेन्द्र सिंह यादव राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली किसी भी समाज के विकास का पता इस बात से चलता है कि वहां की नारी की स्थिति कैसी है जिससे मुख्य पैमाना स्त्री की शिक्षा आर्थिक स्वावलंबन और उसकी निर्णय क्षमता है। कहना न होगा ये सभी तत्व आपस में एक दुसरे से जुड़े हुए

हैं। इसी के साथ सामाजिकता भी एक आवश्यक आयाम है। इन पायदानों पर चढने के बाद ही स्त्री अपनी देह या अपने अधिकार की बात कर सकती है। इसी के बाद वह स्वनिर्णय की स्थिति में होती है।''स्त्री विमर्श के बारे में गिरीश रस्तोगी एक जाग्रत आन्दोलन की मुहिम के रूप में स्वीकारते हैं। उनका कहना है। कि ''स्त्री विमर्श बहस का उतना विषय नही है। जितना जागृति का इसमें स्त्री अपने विकास के अवसरों की तलाश करते नजर आती है–''[2] स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य महान रचना करने या श्रेष्ठ स्त्री चरित्रों को गढ़ने की कसौटी पर नही कसा जा सकता इसका मूल उद्देश्य स्त्री मुक्ति के संदर्भ में अधिकाधिक अवसर तलाश करने की साहित्यिक प्रक्रिया से है। यह मुक्ति उसकी वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी ।

आज हमारे सामाज में स्त्री–दृष्टि या महिलाओं को देखने का नजरिया अर्थात् स्त्री के लिए क्या सही है क्या गलत है? इसका निर्णय स्त्री की दृष्टि से किया जाय, क्योंकि अब तक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था यहॉ तक कि स्त्री से जुडी हुई प्रत्येक समस्याएं और उसे देखने का पक्ष पुरूषोचित रहा है। स्त्री की उस दृष्टि को महिलाओं की दृष्टि से देखा जाए। स्त्रियों की धारणा स्त्री साहित्य की धारणा से भिन्न है। स्त्री साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहित्य है यह ऐसी अनुभूतियॉ है जो अभी तक दबी हूई थी दमित थी, उत्पीडित थी।''[3]

भारतीय समाज में समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन से स्त्रियॉ अछूती नहीं हैं। यही समाज कभी नारी की प्रशंसा की है तो कभी निंदा। इस पुरूष प्रधान समाज में शिक्षा के अभाव के कारण महिलाओं पर तरह–तरह की मान्यता है जो समाज में वर्ग के माध्यम से उस समाज की महिलाओं पर लागू किया जाता है।

इसी प्रधान पुरूष समाज का वर्णन मीनाक्षी जी ने अपने उपन्यास 'भूमल' के माध्यम से स्त्री चेतना की बात करती हैं।

डॉ. मीनाक्षी स्वामी 'भूमल' उपन्यास के भूमिका में लिखती हैं–

''अनादिकाल से ही स्त्री पुरूष में आकर्षण और विकर्षण एक साथ बड़े वैचित्र्य के साथ मौजूद रहा है। स्त्री विशेष रूप से पुरूष के आकर्षण का केंद्र रही है। उसके प्रति आकर्षण, उसे पाने की लालसा और भोग की कामना इस कामना की अभिव्यक्ति के अनेक सूक्ष्म और जटिल आयाम हैं। येन–केन–प्रकारेण दैहिक भोग की पूर्ति की चाह उसे कुंठित और विकृत बना देती है, जो बलात्कार जैसे दुष्कृत्य के रूप में पहले स्त्री पर थोपा जाता है और फिर उसी पर लांछन लगाकर उसे प्रताड़ित किया जाता है।[4]

हमारे इस आधुनिक दौर में आज की नारी अत्यंत संघर्षशील है। वह सामाजिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास करती हैं। इस पुरूष प्रधान समाज में उच्चवर्ग के पुरूषों ने हमेशा गरीब–अशिक्षित महिलाओं का अपने हवश का शिकार बनाया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में 'महात्मा ज्योतिबाफुले' ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में स्त्री और पुरूष दोनों समानाधिकार के धनी हैं।

आज 20वीं शताब्दी की प्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं ''स्त्री–पुरूष जन्मतः स्वतंत्र हैं, अतः दोनों को भी नैसर्गिकतः समान अधिकार उपयोग की सुविधा होनी चाहिए।''[5]

वैसे तो पुरूष और महिला दोनों एक दूसरे के पूरक हैं परंतु इस पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष हमेशा ही स्त्री को अपनी दासी समझा है। पुरूषों ने जब नारी पर शोषण और अत्याचार करना प्रारंभ

किया, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों और शोषण का सक्रिय विरोध करती तो आज की तरह पहले ही कुछ अधिक स्वतंत्रता मिल गई होती।

नारी को स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बनना पड़ेगा शिक्षा के लिए आगे आना होगा अपने शर्म और डर का त्याग करना पड़ेगा और पुरूषों के खिलाफ उनके अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाना होगा। डॉ. मीनाक्षी स्वामी ने अपने उपन्यास की नायिका कंचन उपाध्याय के माध्यम से नारी परिवार अपने अधिकार के लिए आवाज उठायी और धीरे–धीरे आत्मनिर्भर हो गई। अपनी समस्या के साथ–साथ समाज में पुरूषों द्वारा नारी को शोषण के विरूद्ध उनसे संघर्ष करते दिखायी देती हैं।

मीनाक्षी स्वामी जी कहती हैं ''निः संदेह यह उपन्यास उन बातों को लेकर नहीं लिखा गया है, जो आगे बढ़ते समय के साथ पीछे छूटती जा रही हैं, बल्कि समय के साथ नहीं छूटने वाली उन बातों को लेकर है जिन्हे अब तक छूट जाना चाहिए था। पुरूष के लिए बलात्कार एक आवेग है, जिसमें दैहिक सुख से ज्यादा क्रूरता, कुंठा को निकालने का मानसिक आनंद है और स्त्री अपने यौन जीवन की सार्वजनिक और भौड़ी चर्चा बर्दाशत नहीं कर सकती। यह उसके लिए अपमान जनक और मानसिक रूप से हमेशा कष्ट दायक है।''[6]

डॉ. मीनाक्षी स्वामी जी का नवीनतम चर्चित उपन्यास "भूभल" स्त्री विमर्श का सर्वथा नवीनतम आयाम है। इस उपन्यास का कथानक शिल्प संवाद प्रस्तुति अन्य उपन्यासों से अलग है। 'भूभल' का शाब्दिक अर्थ है 'चिनगारियां से युक्त गर्म राख' इस उपन्यास की नायिका 'कंचन' है, जो एक सामान्य मध्य वर्ग से संबंध रखती है, जो अपने मेहनत और लगन से न्यायधीश (जज) बनती है। इसमें बलात्कार की शिकार पीड़ित स्त्री के चरित्र की व्याखा की गई चाहे वह किसी छोटे से गांव की लड़की हो चाहे स्वंय न्यायधीश(जज) कंचन ही हो, यह मामला समाज में बड़ी तेजी से फैलता है। इसमें केवल स्त्री ही लाचार एवं बेवश नजर आती है। इस उपन्यास में एक कड़वा सत्य यह भी सामने आता हैं, कि स्त्री ही हर प्रकार के दोषारोपण को सहती है, इस उपन्यास में मीनाक्षी स्वामी जी ने दो–तीन घटनाओं का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया हैं। इसी उपन्यास में बलात्कार से पीड़िता स्त्री चाहे वह स्वंय प्रेम से अपना कौमार्य भंग किया हो चाहे जबरजस्ती उसका बलात्कार किया गया हो तो भी वह अक्षम्य अपराधिनी है, दुश्चरित्रा है और इसी आधार पर बलात्कार करने वाला अपराधी कानून के सामने अपने को निर्दोष साबित कर बाइज्जत बरी होकर स्वंय के सच्चरित्र होने का प्रमाण लेता हैं। ''बलात्कार कुंठित पुरूष का ऐसा अस्त्र है, जिसके प्रयोग से वह स्त्री के बढ़ते कदमों को रोक देता है साथ ही साथ समूचे स्त्री जगत् में दशहत पैदा कर देता है।''

कानून और न्याय व्यवस्था के ऐसे अनेक विरोधाभासों का मार्मिक और तार्किक शब्दांकन मीनाक्षी जी ने बड़े ही कौशल से उकेरा हैं। जैसे– ममता, रिया और उर्मिला का प्रकरण इनके ही माध्यम से डॉ. मीनक्षी स्वामी समाज के कड़वे पहलू को परिचित कराती है, और स्त्री के पक्ष में दिखने वाले कानून का असली छद्म रुप खुलकर सामने आ जाता हैं। विशेषतः उन महिलाओं को जो प्रगति शीलता और आधुनिकता का वीभत्स चेहरा दिखाकर भ्रमित और पथ भ्रष्ट हो गई उन्हें रोकने का प्रयास लेखिका ने किया है।

हमारे समाज में छिट–पुट होने वाली घटनायें जो किसी भी महिला के साथ जबरजस्ती यौन संबंध वैश्विक परिदृश्य का दिल दहला देने वाली सच्चाई हैं। पुरूषों के झूठें अहंकार और कुठिंत भावना का शिकार नारी समाज में पुलिस, अदालत, मीड़िया अपवने पास–पड़ोस सब की तरफ से जीवन भर प्रताड़ना/उलाहना पाती है इसलिए बलात्कार स्त्री का नहीं बल्कि समाज का कलंक है ।

मीनाक्षी स्वामी के उपन्यास 'भूभल' स्त्री के प्रति नाम मात्र का दैहिक स्वतंत्रता से जुड़ा अहम प्रश्न हैं, कि क्या.....स्त्री अपने चाहने पर किसी पुरूष से संबंध बना पाती है या नहीं या अपनें न चाहने पर किसी स्त्री किसी पुरूष को संबंध बनाने से रोक पाती हैं या नहीं।

यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है– यह स्त्री की गरिमा, मर्यादा और अस्मिता से जुड़ा अहम् वैश्विक प्रश्न हैं। उपन्यास इस केंद्र के ईद–गिर्द घूमता है और स्त्रियों के शिकार में जाने–अनजाने शामिल हर पक्ष को कठघरे में खड़ा करता हैं।

जब कोई पुरूष किसी भी महिला से जबरजस्ती यौन शोषण करता है, या किसी महिला के साथ जबरजस्ती संबंध बनाकर उसके विरोध करने पर उसकी हत्या कर देता हैं। क्या कानून अपराधियों को कड़ी सजा से पाता है या नही, वे अक्सर नेताओं की पैरवी पर बरी हो जाते हैं। ये सभी घटनायें हमारे आस–पास अक्सर दिखाई या सुनाई पड़ती हैं। ऐसी घटनायें हमें ही नहीं अपितु वैश्विक परिदृश्य का भी दिल दहला देने वाली होती हैं।

इसका सामाजिक पहलू कड़वा सच है, कानूनी पहलू स्त्री के पक्ष में खड़ा होने के बावजूद उसे शिकार बनाने के इस खेल में अनजाने रुप में ही शामिल हो जाता है। मीनाक्षी स्वामी अपने उपन्यास 'भूभल' में इस प्रश्न को उन्होंने बहुत ही सहज ढंग से रखा हैं, कि स्त्री किस प्रकार व्यवस्था और अव्याचार को सहती हैं, और नाम मात्र कानूनी व्यवस्था का भी शिकार होती हैं।

इस कड़वे निर्वसन सत्य को मीनाक्षी जी ने सामने रखा है । इस हृदय विदारक हादसे की अनगूंज और पीड़ित स्त्रियों की कराहे पूरे उपन्यास में ध्वनित होती है, जो पाठक के मन मस्तिष्क को इस तरह झकझोर कर रख देती है कि उसका मन समाज के अंतः विरोधों से उद्वेलित हो जाता है हिंदी में स्त्री–विमर्श में तेजी आई हैं और अनेक स्तरों पर स्त्री अधिकार का संधर्ष चल रहा है मीनाक्षी स्वामी के उपन्यास 'भूभल' में भी इस प्रकार की कथा चलती है–

इस उपन्यास की नायिका कंचन है जिसे घर परिवार वाले प्यार से 'कंचू' नाम से भी पुकारते है। कंचन उपाध्याय जो बहुत ही स्वाभिमानी, मेहनती और संघर्षी महिला है। ये बचपन से ही अपने अधिकारों के प्रति सजग रहती है, चाहे वह अपने भाई राजशेखर के विद्यालय में पढ़ने की जिद्द हो या माँ द्वारा कभी–कभी उसकी अपेक्षा भाई की तरफ ज्यादा लगाव, वे हमेशा विरोध करती है।

कंचन में बचपन से ही प्रतिरोध की प्रवृत्ति बलवती है और वह लगातार अपने कर्त्तव्यो एवं विकास के प्रति सचेत रहती थी। इस उपन्यास में मुख्य स्वर 'स्त्री सशक्तिकरण के साथ–साथ स्त्रियों के प्रति यौन हिंसा का भी पक्ष प्रबल है।'

कंचन के बचपन की घटना जो उपन्यास के आरम्भ मे ही देखते है कि 'काका' यानी (नारायण प्रसाद मिश्र) की नर्सरी में कंचू, राज, इंदु, सरला, दिनेश सभी खेलते हैं और एक दिन अचनाक खेलते समय सरला एकाएक गायब हो जाती है, कुछ अज्ञात लोगों ने उसका बलत्कार कर उसकी हत्या कर देते हैं। काका भी घायल हो जाते है सिर में गहरी चोट लगने की वजह से वे कोमा में चले जाते है, और कुछ दिन बाद में उनकी भी मृत्यु हो जाती है, वही काका जो बच्चों को बहुत प्यार करते थे, जिन्होने 'कंचू' के जन्मदिन पर कंचू को 'गुलमोर का पौधा' उपहार में दिया था। कंचू को गुलमोहर बहुत ही प्रिय था वह उससे हमेशा बाते करती अपना सुख–दुःख बांटा करती थी। कंचू की बुआ इंदौर में रहती थी जिनका नाम गीता था। उन्होंने कंचू को रक्षाबंधन पर एक फ्रांक दी थी जो बहुत ही सुंदर थी उसका बेल्ट टूट जाने पर वह कैसे संजू से लड़ती है इसका बाल मन चित्रण बहुत ही सुंदर हैं।

कंचू बचपन में अपने भाई के विद्यालय में साथ पढ़ने की जिद्द करती है। माँ द्वारा कई बार डांट–खाने के बाद भी पिता जी उसका नाम उसके भाई के विद्यालय में लिखवाते हैं या प्रवेश दिलवाते हैं। उसी विद्यालय में नल पर पानी पीने को लेकर झगड़े मे वह राज अपने भाई का बचाव करती है, और प्रिसिंपल से 'नितिन' की शिकायत कर उसे सलीके से रहने की सीख देती है। फिर उसी विद्यालय में कुछ और घटनाएं घटती है, जैसे उसका रुझान भाषण प्रतियोगिता में भागीदारी के प्रति होता है और वह इंटर कालेज प्रतियोगिता में मिस चतुर्वेदी के लिखित पर्चे को पढ़ी और खुद के प्रदर्शन से प्रथम स्थान प्राप्त करती है। उसी बीच द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले 'दीपक तिवारी' की चालबाजियों का भी करारा जवाब देती है। इसी दौरान नितिन कंचन को बदनाम करने की साजिश करता है। लेकिन वह असफल रहता है। बी.ए. अंतिम वर्षो में मणिकांत चौधरी का प्रवेश होता है, जो 'अपर कलेक्टर' का पुत्र है वह 'बैडमिंटन' भी खेलता है, फिर धीरे–धीरे उसका कंचन और मणि का नामांकन होता हैं।

एल.एल.बी. के अंतिम वर्ष में मिस जोशी के साथ 'उमेश यादव' नामक बदमाश छात्र बदसलूकी करता है, मणि के प्रतिरोध करने पर 'उमेश' निष्कासित किया जाता हैं। लेकिन उमेश की हरकतों से 'मिस जोशी' मैम नौकरी छोड़कर अपने शहर चली जाती है। उमेश दोबारा प्रवेश लेकर मणि और कंचन को बदनाम करने का असफल प्रयास करता है।

एल.एल.बी. पूरा करने के पश्चात् कंचन 'सिविल जज' बन जाती है। कालेज के दिनों से ही मणि और कंचन एक दुसरे के नजदीक आ गये थे। दोने के परिवार वाले ने बाद में अपनी सहमति जताई लेकिन कंचन के पिता का आकास्मिक देहावसान होने के कारण सगाई टल जाती है, पर दोनों परिवार में परस्पर लगाव व संवाद बना रहता है।

"इधर अदालत में कंचन को स्त्री मामलों की सुनवाई दी जाती है। पहला मामला घर में काम करने वाली 'ममता' का आता है। जो मालिक के ड्राईवर से प्रेम करती है, पर शादी नही हो पाती घरवालों के विरोध करने पर वे दोनों भाग जाते है, फिर पुलिस रिर्पोट होती है, और पूछताछ करने के बहाने कांस्टेबल 'राधेश्याम' और 'गणेश' उसका बलात्कार करते है। मामला अदालत में आता है और 'कंचन' के प्रयास से दो वर्ष की सजा पाये दोनो सिपाही फिर उच्च न्यायालय से बरी हो जाते हैं 'ममता' चरित्रहीन करार दी जाती है।

तर्क है– कौमार्य भंग का, लेकिन यह देखने की जरूरत नहीं समझी जाती कि उसके कौमार्य भंग का कारण उसका प्रेम है न कि चरित्रहीनता उसके बाद 'जरीना' का मामला आता है, जिसके साथ 'असलम' ने बलात्कार किया है, गवाह में मोटी रकम खाकर अदालत में पलट जाते हैं जिसके चलते पीड़ित 'जरीना' को न्याय नहीं मिल पाता इस प्रकार से अनेक केश आते रहते है.....।[8]

कंचन को भी परिस्थितियों ने स्वंय शिकार हो जाने को विवश किया जिसकी उसको भारी कीमत चुकानी पड़ी । उस केस में उसके साथ पढ़ने वाले उमेश का भी हाथ होता है फिर बाद में मणि और कंचन दोनों का भ्रम भी दूर हो जाता है। फिर दोनों मिलकर 'राष्ट्रीय महिला आयोग' की ओर से मंसौदा तैयार किया बाद में बलात्कार पीड़िता के पूर्व चरित्र पर ध्यान देने संबंधी धारा हटा दिया गया इस धारा को हटाने के लिए कंचन और मणिकांत ने राष्ट्र व्यापी आंदोलन किया। गांव–गांव कस्बों, नगर के लोगों को जोड़कर उन दोनों ने इस समस्या की गंभीरता को बताया और 'राष्ट्रीय महिला आयोग' को ज्ञापन दिया जिसके बाद उक्त धारा को हटाया गया जो बहुत संगत था, ज्ञापन में कंचन ने लिखा था– "यह अपील हर नागरिक के लिए है बलात्कार संबंधी कानूनों में सुधार के लिए हमे एक जन आंदोलन की आवश्यकता महसूस करते हैं, ताकि सबको न्याय मिल सके। इन संसाधनों में पीड़िता स्त्री के पूर्व चरित्र पर ध्यान न देना उसका बयान उसके घर पर रिकार्ड करने की सुविधा बलात्कार के

मामले में आरोपी की सुनवाई पूरी न होने की जमानत न मिलना अदालत के निर्णय से पहले ऐसे संवेदन शील मामले में मीड़िया को दूर रखना खासकर मीड़िया ट्रायल पर प्रतिबंध बलात्कार की परिभाषा का दायरा व्यापक समानंतर जांच एजेंसी को मान्यता देना, मामले का प्रतिदिन सुनवाई होना मुख्य है।"

इस प्रकार स्त्रियों के प्रति बलात्कार (यौन पीड़न) की घृणित घटनायें हमारें समाज को शर्मसार करती है और समाज की संवेदन हीनता को भी सूचित करती है। हमारे समाज में शुरू से ही लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की कितनी उपेक्षा होती है। यह आश्चर्य की बात है, इसका उदाहरण मीनक्षी जी ने अपने 'भूभल' उपन्यास में नायिका 'कंचन' के रूप में थोड़ी से झलक प्रस्तुत की है। जो इसबात की पुष्टि करता है।

इस उपन्यास में स्त्री की उपेक्षा उसके प्रति सामाजिक एवं न्याय व्यवस्था की भी संवेदन हीनता तथा बालिकाओं और महिलाओं के साथ यौन पीड़न या यौनाचार इत्यादि के विरूद्ध प्रश्न इस उपन्यास के माध्यम से मीनाक्षी जी ने उठाया है।

जाहिर है कि उपन्यास का स्वर इसके प्रति प्रतिरोध का है जो कानूनी प्रक्रियाओं के साथ स्त्री को सशक्त बनाने में दिखता है।

इस प्रकार अनेक चरित्रों और कथा स्तरों को इस उपन्यास मे कंचन उपाध्याय केंद्रीय चरित्र है, जिसका वर्णन हो चुका है।

मीनाक्षी स्वामी समाजशास्त्री भी हैं इसलिए उन्होंने अपने अनेक रचनाओं में ऐसी कथाओं को अपने ताने–बाने में बुनकर अनेक पात्रों के माध्यम से क्रमिक विकास को दिखाया हैं, जिससे ऐसी सामाजिक समस्या की बुनियाद को समझना सहज हो सके।

संदर्भ गंथ सूची :

1. नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्शः साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ संपादक– वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. हिंदी साहित्य में नारी विमर्श– डॉ. संजय सिंह, डॉ. अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन इलाहाबाद
3. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) प्रथम संस्करण, 2004
4. भूभल– उपन्यास डॉ. मीनाक्षी स्वामी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. गुड़िया भीतर गुड़िया– डॉ. मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल चौधरी प्रकाशन, दिल्ली
6. भूभल – उपन्यास डॉ. मीनाक्षी स्वामी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
7. भूभल – उपन्यास डॉ. मीनाक्षी स्वामी, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

शरद जोशी का व्यक्तित्व एवं एकांकी रचनाएँ

डॉ0 विकास कुमार
सम्पादक– International Literary Quest एवं World Translation

शरद जोशी का जन्म 21 मई, सन् 1930 ई0 को मध्यप्रदेश के उज्जैन में हुआ था। पिता श्री निवास जोशी, माता श्रीमती शान्ती जोशी की छः सन्तानों[1] में शरद जोशी दूसरे स्थान पर थे। पिता के सरकारी नौकरी में होने के कारण शरद जोशी की पढ़ाई कभी उज्जैन कभी नीमच, कभी देवास तथा कभी महू में हुई लेकिन अन्त में, इन्दौर के होल्कर कॉलेज से कला–स्नातक की शिक्षाप्राप्त की। शरद जोशी बचपन से ही दृढ़–निश्चयी, स्वाभिमानी किन्तु स्वभाव से हँसमुख थे। शरद जोशी ने लेखिका अभिनेत्री इरफाना सिद्दिकी से विजातीय विवाह सन् 1958 ई0 में किया। शरद जोशी ने तीन बेटियाँ[2] होने के बावजूद सरकारी नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन का मार्ग चुना था तथा जीवन की अंतिम साँस तक3 एक श्रमजीवी के लेखक रूप में लेखन जारी रखा था।

शरद जोशी के उपर्युक्त संक्षिप्त जीवन परिचय के बाद यह सवाल उठता है कि शरद जोशी की जीवन यात्रा में ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिनका सामना करके उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ।

शरद जोशी ने एक जगह कहा है कि ''लेखन मेरे लिए जिन्दगी जी लेने की तरकीब है... लेखन मेरा एक निजी उद्देश्य है। कोई अब मुझे नहीं बचा सकता... अब जीवन के आगे किसी प्रकार का विशेषण लगाना मुझे अजीब लगता है।...जीवन होता ही संघर्षमय है। किसका नहीं होता? लिखने वाले का होता है तो क्या अजब होता है।''[4] शरद जोशी के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि लिखना, और सिर्फ लिखना उनका ध्येय था। शरद जोशी लिखने के लिए बचपन से जीवन की अंतिम साँसों तक संघर्ष करते रहे। लेखन–यात्रा में जो भी अवरोध आयें, शरद जोशी ने उसे हटाने के लिए संघर्ष किया चाहे उनका भौतिक रूप से चाहे जितना नुकसान हुआ हो। दूसरे शब्दों में कहें तो, संघर्ष से उत्कर्ष की उपलब्धि का नाम शरद जोशी है।

सतत संघर्ष के बीच शरद जोशी के व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा था। बचपन में पारिवारिक अनुशासनों के कारण शरद जोशी को लेखन हेतु संघर्ष करना पड़ा। चोरी छिपे वह दूसरे नाम से लेखन के कार्य को करते रहे। समाज से संघर्ष करके विजातीय विवाह करने तथा सरकारी नौकरी करने तक शरद जोशी संघर्ष करते रहे। जहाँ भी लगा कि उनके लेखन में कोई संस्था या व्यक्ति बाधा बन रहा है तो उसका परित्याग शरद जोशी ने तुरन्त किया। सरकारी सेवा में सत्ता के शिखरों से टकराये, फाइलों, कागजों और दफ्तरी टुच्चेपनों के बीच उनकी आत्मा चीखने लगी, उनके अन्दर का स्वाभिमान छटपटाने लगा और अंत में 1985 से सब झंझटों को छोड़कर बम्बई में आ बसे तथा स्वतंत्र लेखन को अपना

मुख्य हथियार बनाया। अपने लेखन के माध्यम से शरद जोशी ने सत्ता, संस्था तथा समाज के त्रिकोण के कुटिल–बन्धन को खण्डित किया। इस खण्डन प्रक्रिया के दौरान शरद जोशी का व्यक्तित्व दृढ़ से दृढ़तर होता गया। बचपन से लिखने के लिए जो संघर्ष शुरू हुआ वह जिन्दगी के हर मोड़ पर जारी रहा। शरद जोशी सभी तरह के प्रतिष्ठानों से लड़ते रहे चाहे वह अशोक बाजपेयी का 'भारत–भवन' हो या प्रतिष्ठित लेखकों, समालोचकों का साहित्यिक समाज हो, फिल्मी दुनिया या छोटे परदे के प्रपंच हो या सत्ता प्रतिष्ठान हो। शरद जोशी संघर्ष के दौरान किसी खास विचारधारा के जमावड़े में शामिल नहीं हुए। लगभग चार दशक बिना किसी पद या वैभव से जुड़े आदर्श श्रमजीवी शरद जोशी के व्यक्तित्व का निर्माण संघर्षशील जीवन से प्राप्त कटु अनुभवों से बना, यह शरद जोशी का व्यक्तित्व था कभी समझौता नहीं, टूट जायेंगे पर झुकेंगे नहीं। मध्यवर्गीय ब्राह्मण होकर भी ठेठ राजपूती ठसक शरद जोशी में थी। इसी ठसक के कारण शरद जोशी को जिन्दगी भर कीमत चुकानी पड़ी और तनाव भी झेलना पड़ा।

इन तमाम संघर्षों के बीच शरद जोशी की इच्छा मात्र यही थी कि ''लेखन के लिए कुछ नहीं चाहिए। थोड़ी सी धूप, ठण्डी हवा, बढ़िया कागज ओर एक ऐसी कलम जो बीच में न रूके सकाध चाय, मैं आपको एक सुन्दर रचना देने का वादा करता हूँ।''[5] आगे 10 वर्षों तक लिखने की इच्छा लिए हुए डायबिटीज की शर्तों से भी संघर्ष किया लेकिन डायबिटीज तो डायबिटीज थी, अर्थात् डायबिटीज के खिलाफ शरद जोशी की शर्तें न चल सकीं। ऐसा नहीं है कि शरद जोशी डायबिटीज के खतरों से अपरिचित थे पर उसकी शर्तों पर वे उससे समझौता नहीं कर पाये।

सामाजिक सरोकार

शरद जोशी का लेखन सामाजिक सरोकारों से ओत–प्रोत उनके संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचायक है। शरद जोशी सीधे–सादे, भोले–भाले, आडम्बरहीन, सहज–सौम्य मनुष्य थे, जिन्होंने आम आदमी की तरह अभावग्रस्त एवं संघर्षपूर्ण जिन्दगी जी तथा आम आदमी के प्रतिनिधि के रूप में समाज की विसंगतियों पर आम आदमी की भाषा में प्रहार किया। शरद जोशी अपने रचनाधर्मी दायित्वों के कारण ''आम की बात को खास बनाकर''[6] लेखन के माध्यम से व्यक्त किया।

जीवन के आरम्भ से ही शरद जोशी पर संकटपूर्ण संघर्ष की स्थितियाँ छाई रही। उम्र के हर पड़ाव पर साधना के हर मोड़ पर शरद जोशी को समूचा लील लेने की कोशिश होती रही लेकिन फाका–मस्ती में जीता शरद जोशी सभी प्रतिक्रियावादी शक्तियों से जीवनपर्यन्त जूझता रहा। अपने लेखन के माध्यम से कमजोर तथा असहाय से दिखने वाले सामान्य मनुष्य के पौरुष की गाथा कह गये। उम्र के 20 तथा 27 वर्ष में क्रमशः माँ तथा पिता के विद्रोह को सह कर शरद जोशी पारिवारिक जिम्मेदारियों को उठाते हुए जीवन भर संघर्षमय रहे। लेखन को जीविका का साधन बनाकर शरद जोशी ने अपने लेखन को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। 10 वर्ष की उम्र में प्रारम्भ हुआ लेखन जीवन को सामाजिक सरोकारों से युक्त लेखन किया। उनकी समस्त रचनाएँ इस बात का प्रमाण है। सन् 1953 ई0 से 'नई दुनिया' से प्रारम्भ हुई 'परिक्रमा' आकाशवाणी इन्दौर के स्क्रिप्टराइटर तथा मध्य प्रदेश सरकार के सूचना विभाग से होती हुई अन्त में 'नवभारत टाइम्स' के 'प्रतिदिन' स्तम्भ पर पाँच सितम्बर 1991 को समाप्त

हुई। देखने वालीबात यह है कि इन 40 वर्षों के लेखन में शरद जोशी कभी अपने सामाजिक सरोकारों से अलग नहीं हुए। शरद जोशी की लेखन–यात्रा इसी बात का प्रमाण है कि उन्होंने तमाम अन्यायों का डटकर सामना किया। उन शक्तियों का निडर होकर सामना किया जो समाज को गर्त्त में ले जाने की कोशिश कर रही थी। नौकरी के दौरान शरद जोशी को अधिकारियों, मंत्रियों के विरोध का सामना करना पड़ा। इस संदर्भ में शरद जोशी स्वयं कहते हैं– ''मुझे भोपाल के वे दिन याद हैं, जब मैं एक सरकारी अफसर से असहमत होने के कारण रातोंरात प्रतिक्रियावादी घोषित हो गया। फासिस्ट घोषित हो गया। दोपहर को हल्की सी बहस हुई और कोई पाँच–साढ़े पाँच बजे से नारे उछलने लगे कि मैं प्रतिक्रियावादी हूँ जिसका पता मुझे सात बजे चला। अगली सुबह पता लगा कि मैं अच्छा व्यंग्य लेखक भी नहीं हूँ क्योंकि मेरे व्यंग्य में हास्य ज्यादा होता है।''[7]

सन् 1996 में नावक के तीर' नामक व्यंग्य संग्रह दो भागों में प्रकाशित हुआ। पहले भाग में जहाँ सामाजिक व्यंग्य संकलित है तो दूसरे भाग में व्यंग्य राजनीति और प्रशासन पर ज्यादा केन्द्रित है। 'महँगाई', 'अनुशासन', 'डोसे से भटूरे तक', 'भिखारी', 'बुद्धिजीवी का हृदय', 'लोकायुक्त', 'नेता', 'अखबार और संस्कृति' जैसे शीर्षक व्यंग्यों को यदि प्रश्न वाक्यों में बदल दिया जाये तो वे देश, समाज, व्यक्ति और जीवन को हर समस्या का प्रश्न रच देंगे। या यूँ कहिए कि 'नावक के तीर' के व्यंग्य जीवन की हर समस्या का प्रश्न रच देंगे।''[8] सन् 2000 ई0 में 100 व्यंग्य रचनाओं से युक्त 'यत्र–तत्र–सर्वत्र' व्यंग्य–संग्रह का प्रकाशन इरफाना जी द्वारा पति को दी गयी मार्मिक श्रद्धांजलि है। इसमें सन् 1964 ई0 से बीसवीं सदी के आने तक और उनकी अन्तिम साँस तक के सारे श्रेष्ठ व्यंग्य संकलित हैं।

शासन–विरोधी तथा व्यवस्था–विरोधी हो चुके शरद जोशी ने पत्रकारिता को अपनाया 'नई दुनिया', 'नवभारत टाइम्स', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'हिन्दी एक्सप्रेस' से शरद जोशी पारी–पारी से जुड़े लेकिन सभी सरकारी कोपभाजन का शिकार बनी। फिर भी शरद जोशी अन्त तक टूटे नहीं, अपने सामाजिक सरोकारों से हमेशा जुड़े रहे। शरद जोशी ऐसे लेखक थे जो साहित्य को शब्दों का खेल या कोरी–किस्सागोई मात्र न मान करके, सामाजिक सरोकारों से जोड़कर देखने के हिमायती थे। शरद जोशी ने अच्छे साहित्य की शर्त सामाजिक सरोकारों से जुड़ना बताया। इसी शर्त पर शरद जोशी अपने लेखन को कसते थे। वस्तुतः जीवन पर्यन्त विसंगतियों के शिकार बने शरद जोशी ने अपने लेखन के अनुभवों के माध्यम से विसंगतियों के मूल की तलाश की तथा समाज को कुरूप बनाने वालों के विरूद्ध लड़े। शरद जोशी लिखते हैं– ''मैं अब महज लेखक हूँ। शेष जीवन भी रहूँगा। मैं कर्त्तव्यवश, जीवन जीने के लिए, एक आदमी की तरह जो अपने समाज और देश के सुख–दुख में बतौर नागरिक हिस्सेदारी करता है, रोटी कमाता है, बीमारी सहता है, मिलता है, मजे लेता है, यात्राएँ करता है, बातें करता है यह जानते हुए भी कि ऐसा ही करते हुए उसे जल्दी या देर से कभी मर जाना है, वह रोज अखबार पढ़े बिना नहीं रहता और अपने गुण–दोष के साथ जीता है। इस तरह मैं हिन्दी–साहित्य की दुनिया का नागरिक कतई नहीं हूँ।''[9]

शरद जोशी ने चार एकांकियों की भी रचना की है जो आज तक संकलित नहीं हो पायी है। जिनमें 'अन्धा युग का क्रिकेट', 'प्रेयसी होना', 'बैंगन की नाव' और 'हम कहाँ थे'। 'अन्धायुग का क्रिकेट'

एक गीति एकांकी है। यह एकांकी अन्धायुग की तर्ज पर लिखी गई है। इस एकांकी में शरद जोशी ने क्रिकेट से जुड़ी तमाम समस्याओं को उठाया है। चाहे वह फास्ट बॉलरों की कमी हो या चयन प्रक्रिया का पक्षपात होना हो या क्रिकेट प्रशासकों की अनीति हो, सब पर शरद जोशी ने रोचक शैली में व्यंग्य किया है। शरद जोशी ने 'अन्धायुग' के आधार पर ज्यों–त्यों पात्रों के नाम और छन्द के द्वारा भारतीय क्रिकेट का माखौल किया है। शरद जोशी धृतराष्ट्र के माध्यम से कहते हैं–

''जब कभी हारता है भारत क्रिकेट में।
गान्धारी को यह अपनी हार लगती।
जानते हो उसके सारे पुत्र।
क्रिकेट के खिलाड़ी रहे जन्म से।
इसी कारण फेल होते रहे इम्तहानों में।''[10]

शरद जोशी स्कूली समय से ही नाट्य–मंचन से जुड़े थे। यही ललक उन्हें व्यंग्य–नाटक तथा व्यंग्य–एकांकी के सृजन तथा फिल्मों एवं धारावाहिक लेखन की तरफ ले गयी। कई फिल्मों की पटकथा और संवाद शरद जोशी ने लिखे। पत्रकारिता में तो शरद जोशी सफल रहे ही, साथ इलेक्ट्रानिक संचार माध्यम दूरदर्शन पर भी सफल रहे। कई लोकप्रिय धारावाहिकों को शरद जोशी ने लिखा।

संदर्भ :

1. 4 बहनों तथा 2 भाइयों में दूसरे स्थान पर
2. बानी, ऋचा, नेहा
3. 5 सितम्बर, 1991
4. 'जादू की सरकार', शरद जोशी, 1993
5. 'काहे की आत्मा और कैसा कथ्य', 'शरद जोशी : एक यात्रा' से उद्धृत (सं0 डॉ0 शशि मिश्र), पृ0 18–19
6. 'शरद जोशी के रचना संसार की विशिष्टताएँ, डॉ0 भगीरथ बड़ोले 'निर्मल', पृ0 87
7. काहे की आत्मा और काहे का कथ्य, दैनिक 'नई दुनिया', 1991, पृ0 5
8. 'शरद जोशीं', रमेश दवे, पृ0 42
9. दैनिक 'नई दुनिया', इन्दौर, 8 सितम्बर, 1991
10. 'क्रिकेट कीर्तन', सं0 बालेन्दु शेखर तिवारी, पृ0 24

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

शरद जोशी का कृतित्व : एक संक्षिप्त परिचय

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
सम्पादक– International Literary Quest एवं World Translation

शरद जोशी के रचना संसार बचपन से लेकर जीवन के अंतिम साँस तक विस्तार लिए हुए है। शरद जोशी ने स्कूली समय में 'बाल साहित्य मण्डल' का गठन किया था। इस मण्डल के तहत 'उगते सितारे' नामक बच्चों के एक कविता–संग्रह का प्रकाशन शरद जोशी ने किया था। इसी मण्डल ने 'हँसोड़' नामक हस्तलिखित पत्रिका शरद जोशी के सम्पादन में निकाली थी। स्कूली समय में ही शरद जोशी ने 'और चाँद छुप गया' अपनी प्रथम कहानी लिखी थी। इस कहानी में एक असहाय महिला की गरीबी का चित्रण था और रोटी की तुलना चाँद से की गई थी। स्कूली समय में शरद जोशी ने अपनी पहली कविता 'मेरे लिए बाजार में, गेहूँ नहीं जुवार में' शीर्षक से लिखा था। इसके अतिरिक्त शरद जोशी स्कूली–पत्रिका में भी लिखते थे। छोटे से अखबार 'अग्रलेख' में जोशी जी का 'चिट्ठा' कॉलम छपने लगा था। स्कूल प्रोग्राम के लिए शरद जोशी ने कुछ नाटक भी लिखे थे। कहने का आशय है कि शरद जोशी स्कूली समय में ही सम्पादक, लेखक तथा प्रकाशक बन गये थे। बाद में इसी प्रतिभा को पूर्ण विस्तार मिला। शरद जोशी के लेान की विधिवत शुरूआत 'नई दुनिया' के 'परिक्रमा' कॉलम से प्रारम्भ होती है, जो पाँच सितम्बर सन् 1991 तक अबाध गति से चलती रही। शरद जोशी ने अपने चालीस वर्षों के लेखन काल में अखबारी कालम लिखा, कहानी–कविता लिखा, निबन्ध लिखे, नाटक लिखे, फिल्मी पटकथा–संवाद लिखे और धारावाहिक लेखन का कार्य किया। शरद जोशी का समस्त लेखन निम्नवत है–

प्रकाशित पुस्तकें

(1) परिक्रमा
(2) किसी बहाने
(3) जीप पर सवाल इल्लियाँ
(4) रहा किनारे बैठ
(5) तिलिस्मि
(6) दूसरी सतह
(7) पिछले दिनों
(10) यथासम्भव
(11) हम भ्रष्ट के भ्रष्ट हमारे
(12) मुद्रिका–रहस्य
(13) जादू की सरकार
(14) मैं, मैं और केवल मैं
(15) नावक के तीर
(16) झरता नीम शाश्वत् थीम

(8) दो व्यंग्य नाटक
(9) मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ
(17) यत्र तत्र सर्वत्र
(18) प्रतिदिन

अप्रकाशित एकांकियाँ

(1) अन्धा युग का क्रिकेट
(2) प्रेयसी होना
(3) बैंगन की नाव
(4) हम कहाँ थे

स्तम्भ–लेखन

(1) 'परिक्रमा'– नई दुनिया
(2) 'और शरद जोशी'– नई दुनिया
(3) 'अधबीज'– नई दुनिया
(4) 'बैठे–ठाले'– धर्म युग
(5) 'नावक के तीर'– रविवार
(6) 'प्रतिदिन'– नवभारत टाइम्स

पत्र–पत्रिकाओं में लेखन

(1) धर्मयुग
(2) साप्ताहिक हिन्दुस्तान
(3) सारिका
(4) रंग
(5) रविवार
(6) नवभारत टाइम्स

सम्पादन

1. 'दैनिक मध्य–प्रदेश' समाचार पत्र भोपाल
2. 'नव लखन' मासिक पत्रिका
3. 'हिन्दी एक्सप्रेस', बम्बई
4. 'सारिका' के कुछ अंकों का अतिथि सम्पादन

फिल्मी पटकथा–संवाद लेखन

(1) चोरनी
(2) छोटी सी बात
(3) गोधूली
(4) क्षितिज
(5) साँच को आँच नहीं
(6) उत्सव
(7) दिल है कि मानता नहीं

धारावाहिक–लेखन

(1) ये जो जिन्दगी है
(2) विक्रम और बेताल
(5) देवी जी
(6) प्याले में तूफान

(3) सिंहासन बत्तीसी (7) दाने अनार के

(4) वाह जनाब (8) ये दुनिया गजब सी

सन् 1958 ई0 में 'परिक्रमा' के प्रकाशन के साथ शरद जोशी की व्यंग्य–यात्रा की शुरूआत होती है, इसमें से चुनी गई 60 रचनाएँ संकलित हैं जिन्हें नटखट लघु निबंध कहा गया है। इस संकलन के समय व्यंग्य विधा जैसे स्थान नहीं पा सका था। 'नई दुनिया' के 'परिक्रमा' कालम में ब्रह्मपुत्र नाम से लिखी गयी रचनाओं का शरद जोशी का यह प्रथम व्यंग्य–संग्रह है। ''पिन से लेकर पेन तक सुराही से लेकर साबुन तक, अखबार से लेकर हाइड्रोजन तक शरद जोशी ने अपनी कलम चलाई है।''[1] इस संग्रह की रचनाएँ गद्य, उत्तेजक ग्राह्य और गाम्भीर गद्य का समन्वित रूप प्रस्तुत करती है। इस संग्रह की पैनी परिक्रमा की एक व्यंग्योक्ति– ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है और ऐय्याशी आविष्कार की बेटी है।''[2]

सत्तर के दशक में जब व्यंग्य की स्वीकारोक्ति साहित्य में हो चुकी थी तो उस समय शरद जोशी का संग्रह 'किसी बहाने' आया। इस संग्रह में शरद जोशी के साहित्यिक–व्यक्तित्व में निखार देखा जा सकता है। कुल 21 व्यंग्यों के माध्यम से शरद जोशी ने अपनी पर्यवेक्षण क्षमता का परिचय दिया है। हिन्दी संसार के कवि, समीक्षक, अनुसंधाता प्राध्यापक आदि इस पर्यवेक्षण क्षमता के आलम्बन बने हैं। इस संकलन की एक विशेषता यह है कि इसमें शैली की विविधता है जिसका विस्तार परवर्ती रचनाओं में दिखाई पड़ता है। 'किसी बहाने' के प्रकाशन वर्ष[3] में ही 'जीप पर सवार इल्लियाँ' का भी प्रकाशन हुआ। इस संग्रह में चुनाव और दलबदल, चाटुकारिता और छल, मूल्यहीनता और अवसरवादिता के दलदल में फंसी जनता के हालत का विवरण है। इस संकलन में 'सरकार का जादू' जैसा तीखा व्यंग्य और 'कस्बे का सिनेमा' जैसी गुदगुदी रचनाएँ भी हैं। राजनीतिक हलचल पर व्यंग्यकार की टिप्पणी है– ''जो इस नगर में रहते हैं वे जानते हैं कि यहाँ राजनीतिक हलचल का मतलब क्या होता है? मतलब है कुछ न करने वाले नेताओं द्वारा कुछ नहीं किया जाता।''[4]

सन् 1973 में प्रकाशित 'तिलिस्म' शरद जोशी का पाँचवाँ व्यंग्य संग्रह है। इसमें शरद जोशी की 14 रचनाएँ संकलित हैं जो मुख्यतः कहानियाँ हैं– फैंटेसी शैली की। इस संग्रह में समाज, शासन, राजनीति आदि पर चुटकी है। इस संग्रह में कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जो प्रतिमान बनाती हैं। जैसे– 'तिलिस्म', 'वर्जीनिया वुल्फ से सब डरते हैं', 'कैसे जादू डाला'। शरद जोशी, इस संकलन में बेहद अहिंसक स्वभाव के दृष्टिगोचर होते हैं। इस संकलन का ऐसा मिजाज बेहद सराहनीय है।

शरद जोशी व्यंग्य रचनाओं का एकीकरण 'मुद्रिका रहस्य' नामक व्यंग्य–संग्रह 1992 ई0 में उनके मृत्योपरान्त प्रकाशित हुई। इनमें मुद्रिका रहस्य के व्यंग्य श्रृंखलाबद्ध व्यंग्य नहीं हैं। इस संग्रह की रचनाएँ पिछले पच्ची–तीस वर्षों की रचनाओं से चुनी गयी हैं। इनमें ज्यादातर वाचिक परम्परा की रचनाएँ हैं।

बीसवीं शताब्दी के मनुष्य को शरद जोशी 'प्रतिदिन' देखते रहे तथा अंतिम साँस तक रचते रहे। इस प्रतिदिन में संसद का प्रतिदिन है, सांसद का प्रतिदिन है, नेता का प्रतिदिन है, उस जनता का प्रतिदिन है जिसे कभी हिन्दू कहकर मारा जाताहै तो कभी मुसलमान कहकर। पूर्व राष्ट्रपति स्व0 शंकर दयाल शर्मा ने 'प्रतिदिन' के आन्तरिक आवरण पर लिखा है– ''शरद जोशी को मैं एक अत्यन्त संवेदनशील रचनाकार मानता हूँ। अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों को उन्होंने अत्यन्त पैनी निगाह से देखा और अत्यन्त सटीक शब्दों में व्यक्त किया। उनकी रचनाओं को अपने समय विसंगतियों पर की गई निर्भीक टिप्पणी मानता हूँ।....उनकी रचनाएँ न तो पाठकों को खिलखिलाने के लिए बाध्य करती हैं और न ही अद्‌भुत व्यंग्यात्मकता के कारण पाठक मन को किसी प्रकार का उदण्डता से भरती हैं। बल्कि इनके स्थान पर पाठक के मन में एक विचित्र किस्म के अवसाद और आक्रोश का मिला–जुला भाव छोड़ जाती है। मुझे लगता है कि इस कारण शरद जोशी की रचनाओं में लोगों को लम्बे समय तक प्रभावित रखने की क्षमता पैदा हो गई है।''[5]

संदर्भ :

1. 'शारदा के व्यंग्य पुत्र : शरद जोशी', डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी, पृ0 79
2. 'परिक्रमा', शरद जोशी, पृ0 53
3. 1972
4. 'जीप पर सवार इल्लियाँ', शरद जोशी, पृ0 49
5. 'प्रतिदिन'– एक के आन्तरिक आवरण पृष्ठ से

ISSN : 23197137, Volume: 11/Issue: 02, January-June : 2020

Voices in the city : A Study in Psychic Instability

Dr. Shuchita Srivastava

Acting Principal & HOD
English Department,
D.A.V. (P.G.) College Azamgarh

Anita Desai is often hailed by the critics as the first psychological novelist of India. Her protagonists are always struggling to define their identities in the world of harsh realities, put in an environment which is not in harmony with their sensibility. They are different from the ordinary people of the world, highly sensitive, lonely and gloomy. They find the world hostile hence misfit in the conventional environment in which they are placed.

Voices in the city is Anita Desai's second novel, published in 1965. It is still considered her best work It is based on the life of a middle-class family, struggling in the city of Calcutta, unable to fulfil their dreams, due to constant pressure. Family members- Nirode, Monisha and Amla, brought-up by an over indulgent mother, caught in the cross- currents of changing social and moral values in a transitional period of India. It's a time in India in which the older elements are not altogether dead, and the emergent ones not fully evolved. The novelist has used Stream of Consciousness technique in the novel to express the inner thoughts of Nirode, Amla and Monisha.

The story of the novel Starts with the picture of Calcutta, at the station where Nirode comes to see his brother off. In the novel the life of Calcutta has been portrayed with all its ugliness, thick dense light and sordidness. Perhaps the descriptions are based on Anita Desai's own experiences of the time spent in Calcutta in the early 1960^{s}. She presents the city as a place where young people are struggling in their jobs and live in constant pressure dissatisfied by the environment and society.

The protagonists of the novel-Nirode, Monisha and Amla suffer from psychic instability because of their childhood experiences, tumult of Calcutta city and the urban mechanical civilization of the metropolis. Images of sordidness and spiritual disintegration focus on the psychic tension of their distraught self. They move from one false to another and finally feel detached from their environment and society. Nirode, the chief protagonist of the novel views Calcutta as on ugly city and finds himself unable to adjust with the voices of the over- crowded city and longs for shadows and stillness. He craves for a life of solitude for-from the madding crowd. The noises and tumult of Calcutta brings in him a dissociation of

sensibility. He even wants to die. It is the death wish of on artist not an ordinary person, Nirode, the artist feels alienation and detachment because he is unable to possess the city. It is not that alienation which people, fed-up of life, generally feel. It is not the alienation between two persons, but between the art and artist, "His psychic instability is the outcome of his 'Janus- like existence in the city reflected through his frequent incursions upon human existence and human valves."[1]

He behaves like a stoic and exhibits detachment from society and his companions. speaks with conceit and malice, considers himself supereon and different from others. He finds himself too sophisticated and refined to understand human reality.

Nirode's problem of psychic instability can be explained and understood through the psychological term 'Oedipus Complex' where a son is attracted towards his mother. It can be analyzed and interpreted by his love-hate relationship with his mother which breeds anxiety and nostalgia. He develops on oedipal affinity with his mother this leads hatred towards his father. After his father's death he wishes to be the protector of his mother, but his mother's relationship with Major Chaddha shocks him His tender heart full of love for his mother is broken and love is turned into hatred and detachment. His very existence is completely shattered and he alienates himself from his mother he appears to be dispossessing his identity as if he is born with his heart emptied out. This leads him to a kind of psychic instability which is described by Amla: "In fact it was easier for him to live hare where he could rest, in such anonymity, upon the heave, swell and drift of great black wave, a part of the crusted flotsam on its crest, allowing it to carry him, in perfect indifference and without any certitude of destiny, moving only because it continued one day it would break on the shore and with it, he would sink quickly, silently into the sand."[2] Another symbol used by the novelist to focus the psychic instability of Nirode is the image of a kite.

"A detached individual strives for freedom. He places a complete check on his inner and outer demands and wants neither love nor mastery over life. He lives in an ivory tower, resents any intrusion on his well-guarded citadel of privacy and feels consciously superior to others in his self-sufficiency, independence and stoicism. This is in fact, a flight from responsibilities and is far from the healthy non-attachment eulogized in scriptures."[3]Nirode craves for freedom. He longs for release from his painful and agitating existence in the city. Every menacing voices of the city is for him both a symbol and reality. He belongs to neither as he puts it, it is an escape from nowhere to nowhere. The muddy stench of river reminds him of "The stench of that office-going bus, the stench of hair, freshly and sweetly oiled, of shoes newly blacked, and then that of office odour of thick white glue and soiled paper."[4]

Nirode's basic needs our not fulfilled. His longing for love and belongingness leads him to his chaotic mental states and creates psychic instability. He rejects everything because his childhood images have taught him negation. He reacts against the "thingness of things

and flashiness of the flesh He moves from one false solution to another. He wants to possess the city: "I will have it, you will see how I get it."[5] But he badly fails in his attempts to belong the city: "I want to move from failure to failure, step by step to rock bottom. I want to explore that depth."[6]

Nirode is ever alone. He shuts others from his life and becomes detached. Nirode, Amla and Monisha are the mute sufferers of their childhood experiences Nirode, of all the three children is the worst sufferer as his "father was imperiously unfair to him" Amla the youngest one affirms. Nirode broods over his unfortunate boyhood: "Only if he had been a promising lad, he would have sailed to England for higher studies instead of Arun; "If his father, while dictating his will to as obese solicitor, had not weighed these distinctions before laying aside a sum of money for the education of one of his two sons. If Arun had not been the favorite and congenital failure."[7]

Nirode feels isolated and unwanted. He cannot compete with Arun either in academic or in other activities hence loses the favors of his father. This personal inferiority later turns in self-deception in his adult life. He seeks solace and comfort in self-conceived world of imagination like the romantic era poets. He considers himself superior and different from others. He does so by rejecting his mother and his companions, Aunt Lila and his friends and looks at himself as a person "for whom aloofness alone was the sole natural condition, aloneness alone the treasure worth treasuring."[8]

Nirode is born and brought up in a middle class traditional Hindu culture of Bengal "the cult of Durga, Shakti and kali govern the psychic development of the child. He learns that the mothers Goddesses are the reservoir of both constructive and destructive energy. His emotional strength resides in his mother. He develops, what psychologists call maternal feminine identity……. This identification has further deeper implications in his unconscious fear that she (His Mother) has killed his father and will kill him, too."[9] His middle class moral and social values are deeply hurt because of his mother's illegal relationship with Major. His mother's behavior violates his moral and social standards. Devoid of motherly security, loving and caring touch of his mother, he experiences extreme loneliness and separation. He feels like an outcast whose heart is fully emptied out. He loses faith in love, life and turns hysteric, "Amla, I know her now. She is Kali, the goddess and demons in one".

Nirode, the well-educated artist. Highly sensitive and introvert man becomes neurotic and suffers from psychic instability because of his childhood experiences and his inability to belong to the overcrowded noisy city of Calcutta. His needs for love and belonging are not fulfilled. He fails in his continuous struggle to find his real self because of the turmoil and pressures of anxieties resulting in a chaotic mental state. His loss of faith in love, life and company fills his heart with a kind of emptiness which creates an emotional wasteland. He

felt nothing significant in life," nothing existed: but this void in which all things appeared equally insignificant, equally worthless." His journey from nowhere to nowhere leads him a kind of mental and psychic instability and he thinks that, "Life is no actual journey, nut a nightmare He dreams to act but fails to execute, though for a brief period in the novel he actualizes himself, communicates his real self in the hour of deep agony.

Monisha is another important character in the novel, representing innumerable suppressed and repressed Indian woman longing for marital happiness, security, love and privacy like her brother, she too is unable to adjust amidst the din and bustle of the noisy city. She is deeply perturbed and vexed by the vivid voices in the city. She is horrified with the painful inner and outer voices. Even the voice of a child preparing for the test appears to her terrifying. She is married to a prosaically dull husband and finds herself unable to adjust with the big family of her in-laws, performing the duties of an ideal wife and daughter in-law with no room left for her. Her incapacity to adjust herself with the existing situations creates anxiety in her. She craves for privacy, "only I wish I were giving some talks I could do alone in privacy, away from the aunts and uncles, the cousins and the nieces and the nephews."

The novelist uses the narrative technique of diary in order to record Manisha's psychic instability and mental state of turmoil. Like her brother Nirode, she too, is victimized by her childhood experiences. She is also taught rejection and negation of everything. "Nirode feels alienated by choice, Monisha by chance." She is estranged from her husband and from her society and from her environment but her estrangement is temperamental. Her engagement with society and environment is only on physical level. Mentally, spiritually and psychologically she remains detached and aloof in her actions and interaction with the surroundings she is searching identity which may fulfil her dreams and provide her solace and recognition. She is in search for infinite solitude which may suppress the horrifying inner voices and give her recognition "The struggle within her is the struggle between her self-identity and other identity, existence and non-existence.

Her quest for identity stems from her failure to comprehend the essence of existence."[13] Alienation to her is a necessity: "everyone in that afternoon audience seemed intensely capable of responding to passion with passion, to sorrow with sorrow. Monisha alone stood apart, unnaturally cool, too perfectly aloof, too inviolable, whole and alone and apart."[14]

Monisha and Nirode both are only physically present in the city. They seemed to be deprived of their normal lives in the stifling environment of the city hence they inhabit it only on the physical plane while mentally they are alienated from it. She disowns the city. She is overpowered by a murky sensation of unreality and feels inner and outer emptiness. She craves for her town, a peaceful place at kalimpong. just as W.B. yeast desires to reach his home in Iyerland 'The lake isle of Innisfree' arising from the foolish hope that he shall ever get peace in the noisy and overcrowded London city, Monisha too craves to reach her home

arising from the foolish hope that she shall ever get peace amidst the horrible voices in the city of Calcutta. She says: "This city, this city of years, it conspires against all who wish to enjoy it, does not it."[15] She resents, why ever did I come to Calcutta? Why did not I stay away in Bombay or go home to Kalimpong?"

Monisha is charged of theft, feels deeply hurt, fails to analyses herself she withdraws herself into a world of her own. Her inability to adjust herself with the existing situations leads her to a world of self-deception. Alienated from the rest of the society, separated from her brother and sister, remote from her home town, she withdraws from all concerns. She begins to live in her ivory – tower where she is different and superior from the mass of women and glorifies herself; "I am different from then all." She feels elevated in her silence because Jiban's family abhors it. She is left with no choice except between a meaningless life and non-existence, and she chooses latter. Though she prized Gita, above all books and calls it my book but she could not understand the real meaning underlying the message of non-attachment of Bhagwat Gita. 'Gita' never advocates running away from the field of action. But the underlying message of non-attachment of 'Gita' is misunderstood and misinterpreted by her. Had she understood the real message, she would have never committed suicide and faced boldly the challenges of life. For Monisha, resignation implies shutting all the windows and door of hope and life. She is drawn towards mental instability because of her neurotic pride. She prefers to live in the world of her own creation. Finding no answer to her life's problems, she fails to accept challenges of life. Terrified by her emotional vacuum she commits suicide.

Amla is the third important character in the novel. She appears to be the strongest among the three- Ninorde Monisha and Amla. Monisha succumbs to the struggle for freedom and existence and commits suicide, Nirode adopts a pessimistic outlook towards life but Amla face all the challenge boldly and strongly, hence most likely to survive, All the three live in constant pressure amidst the voices of the city. Dharma, a painter has great influence on her. She comes to Calcutta to start her career as a commercial artist. She is also overpowered by a sense of hollowness. Allthe three characters struggle against the city of Calcutta, but Amla's perspective to, observe life is different from Nirode and Monisha, though she, too, is disappointed in various ways. She is deeply pained to witness her brother and sister treading the path of self-destruction; she is helped by Dharma, the painter to come out of her suppressed feelings. In Dharma, she finds a person with whom she can share her feelings and talk freely her mind. She falls in love with Dharma who is already married and much older than her. He considers Amla an ideal model for painting.

Amla, like Nirode and Monisha is also overcome by the stifling sense of fear in the city. She yearns for the company of Nirode and Monisha but she fails as both of items are social rebels. She feels home sick as she is deeply attached from kalimpong. The vision of the place still vibrates in her mind. She even recalls the enchanting vison of kalimpong in

monsoon. Her emotional attachment to Dharma, the painter wanes when she discovers his identity and his inhuman treatment of his daughter. She thinks that it is the individual self that has transformed societal values into something ugly and profane. In this materialistic world social and moral values have no meaning and even sacred love degenerates into lust.

Amla stands as a foil to Nirode and Monisha. Monisha's suicides change her perspective of life. She begins to look life with a changed and different perspective. "In Amla's personality, optimism and pessimism, joy and despair work side by side. Two contradictory emotions toss her. On the one hand, she is drawn by the pleasures of Calcutta life, on the other hand she is nauseated and feels that pleasures are the most rotten sensation in the city, it has lost its beauty, freshness and utility."[16]

Amla's uneasiness and despair stem from her fear in which she feels the city as an agent pressing upon the minds of young men and women reducing them into insignificant position of insects, ants and moths as in the panting of dharma. For the time being she, too, suffers from psychic instability like Nirode and Monisha. She thinks that darkness in the true colour of Calcutta.

Amla's profession as a commercial artist is an amalgam of art and commerce. In her profession the aesthetic and the materialistic are juxtaposed. During her moments of despair and uneasiness after the suicide of her sister she struggles to protect her inner life. In the moments of questing for self she realizes her real identity. Her faith and love in Dharma is completely shattered and she thinks if he could reject his daughter, he could also shut her out from his life. She realizesthe truth and stands as an emerging self. This revelation regarding Dharma's life dashes her imaginative world to pieces: "A combinations of all these revelation and inspiration filled her, expanded her, made her rise and float on its drift she left the house."[17] Amla stays Strong; she comes out victorious as she has the power to bid farewell to the struggle and sufferings of life.

Anita Desai is a great psychologist and a true analyst of the human minds. Her characters are the real characters of flesh and blood, bulging with life with all its possibilities. Like ordinary men and women of the realistic life sometimes they compromise with it and sometimes reject and prefer to live in self-imposed solitary confinement. Her voices in the city are the voices of thousands of people, away from home, struggling to earn their livelihood in a metropolis. The central Voice is that of Nirode, rising and falling according to his own experience and consequent reaction. In the city voices of Nirode, Monisha and Amla are heard through various images, symbols and metaphors. Conveying their innermost feelings, the image of Calcutta city is the most mysterious and dominant symbol in the novel. This city is presented as a place where young people are unable to fulfil their dreams. Nirode achieves nothing in the end and remains a drifter who can neither compromise with the world, nor reject it as completely absurd or meaningless. Monisha being terrified by her

emptiness and emotional vacuum succumbs to it and commits suicide. Amla, the strongest among the three overcomes her frustrations, realizes her real identity and stays strong. She stands as an emerging self.

References

1. "Anita Desai's Voices in the City: A Study in Alienation," S.P. Swain and P.M. Nayak; Indian Women Novelists, Set III, Vol.2, ed. R.K. Dhawan, (Prestige Books, New Delhi). P. 86-87
2. Anita Desai, Voices in the City (New Delhi, 1982), PP.185-186
3. Usha Bande: The Novels of Anita Desai (Prestige Books, New Delhi, 2000) P.31
4. Anita Desai, Voices in the City (New Delhi, 1982). P.10
5. Ibid, P.12
6. Ibid, P.40
7. Ibid, PP 7,8
8. Ibid, P.24
9. Usha Bande: The novels of Anita Desai (Prestige Books, New Delhi), P.89
10. Voices in the City: Desai Anita (New Delhi, 1982), P.263
11. Ibid, P.63
12. Ibid, P. 115
13. Indian Women Novelist R.K. Dhawan Set III, Vol.2, New Delhi, PP. 90-91
14. Desai Anita: Voices in the City (New Delhi, 1982), P. 123
15. Ibid, P.153
16. Bande Usha: The Novels of Anita Desai (Prestige Books, New Delhi, 2000) P.132
17. Desai Anita: Voices in the City (New Delhi, 1982), P.227